ISSN-0971-8400

विशेषांक

योजना

जनवरी 2016 | विकास को समर्पित मासिक | ₹ 20

शिक्षा: सफलता का मंत्र

भारत में स्कूली शिक्षा का कायाकल्प: नीतिगत मुद्दे तथा प्राथमिकताएं
आर. गोविंदा

शिक्षा का वित्तीय प्रबंधन
जे.बी.जी. तिलक

शिक्षा में प्रौद्योगिकी: अधीर पीढ़ी की आशाएं व आकांक्षाएं
राजाराम एस. शर्मा

महिला एवं बालिका शिक्षा: भारतीय परिदृश्य
विमला रामचंद्रन

फोकस

एक मूल्य आधारित समाज की ओर: साहचर्य की शिक्षा
जे. एस. राजपूत

विशेष आलेख
भारत में समेकित शिक्षा की रूपरेखा
अनुप्रिया चड्ढा

ज्ञान: संपर्क के लिए पहल का प्रारंभ

ग्लोबल इनिशिएटिव फॉर (जीआईएएन) कार्यक्रम हाल ही मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा एक उत्प्रेरक कार्यक्रम के रूप में प्रारंभ किया गया है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य भारत के उच्च शिक्षा संस्थानों और वैश्विक स्तर पर मान्यता प्राप्त प्रमुख अकादमिक संस्थाओं के बीच संपर्क बढ़ाना और उसे प्रगाढ़ बनाना है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत, विदेशों के श्रेष्ठ संस्थानों के शिक्षक भारत का दौरा करेंगे, यहां के शिक्षकों और छात्रों के साथ संवाद स्थापित करेंगे और सहभागिता करेंगे तथा लगभग अगले साल तक विशिष्ट पाठ्यक्रम कराएंगे।

फिलहाल अमेरिका के 46, ब्रिटेन के 9, जर्मनी और ऑस्ट्रेलिया के 6-6 तथा इजरायल से 2 शिक्षाविदों सहित 38 देशों के शिक्षाविदों का यहां पाठ्यक्रम कराने का कार्यक्रम है। इस सूची में रूस, जापान, सिंगापुर, स्वीडन, स्विटजरलैंड, पुर्तगाल, नीदरलैंड, मलेशिया और दक्षिण कोरिया भी शामिल हैं। उत्कृष्ट शिक्षाविदों का यह समूह 13 विषयों से संबंधित हैं और इस दौरान 68 राष्ट्रीय संस्थानों में 353 पाठ्यक्रम पढ़ाए जाएंगे।

इन पाठ्यक्रमों की अवधि विषय पर निर्भर करते हुए 1 सप्ताह से 3 सप्ताह तक है और ये मेजबान संस्थान के छात्रों को निशुल्क, अन्य छात्रों को नाममात्र के दाम पर उपलब्ध हैं और साथ ही इसका वैबकास्ट के जरिए सीधा प्रसारण भी होता है। वैबकास्टिंग से देशभर के छात्र जरूरत के समय इस बेहतरीन शैक्षिक सामग्री तक पहुंच प्राप्त करके लाभांवित होंगे। संबंधित संस्था पाठ्यक्रम की सामग्री अपनी वैबसाइट पर उपलब्ध कराएगी ताकि उस तक निरंतर पहुंच बनाना संभव बनाया जा सके और इसे प्रोत्साहित किया जा सके।

ये व्याख्यान देशभर के छात्रों को स्वयं और एमओओसी (व्यापक मुक्त ऑनलाइन पाठ्यक्रमों) मंच और राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय के माध्यम से उपलब्ध कराए जाएंगे। इन पाठ्यक्रमों में इलैक्ट्रॉनिक पंजीकरण को स्वीकृति प्रदान करने के लिए आईआईटी खड़गपुर ने वैब पोर्टल (gian.iitkgp.ac.in) डिजाइन किया है।

प्रौद्योगिकीय चुनौतियों से संबंधित अनुसंधान के लिए संयुक्त पहल का प्रारंभ

इंप्रिंट इंडिया, भारत के लिए उपयुक्त 10 प्रौद्योगिकीय क्षेत्रों में प्रमुख अभियांत्रिकी और प्रौद्योगिकी संबंधी चुनौतियों से निपटने के लिए अनुसंधान की योजना तैयार करने हेतु हाल ही में प्रारंभ की गई एक आईआईटी और आईआईएससी के संपूर्ण नेटवर्क के बीच की जा रही संयुक्त पहल है।

इस पहल के उद्देश्य हैं: (1) समाज के तत्काल प्रासंगिकता वाले क्षेत्रों की पहचान करना जहां नवाचार की आवश्यकता है, (2) चिन्हित क्षेत्रों में वैज्ञानिक अनुसंधान का निर्देश देना, (3) इन क्षेत्रों में अनुसंधान के लिए उच्च वित्तपोषण सुनिश्चित करना, (4) ग्रामीण/शहरी क्षेत्रों में रहन-सहन के स्तर पर प्रभाव के संदर्भ में अनुसंधान के प्रयास के निष्कर्षों का आकलन करना।

इंप्रिंट इंडिया के तहत दस विषयों पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा और इनमें से प्रत्येक एक आईआईटी/आईआईएससी द्वारा संचालित होगा, यथा–

1. स्वास्थ्य सेवा: आईआईटी खड़गपुर,
2. कंप्यूटर विज्ञान और आईसीटी- आईआईटी खड़गपुर,
3. एडवांस मैटिरियल्स: आईआईटी कानपुर,
4. जल संसाधान और नदी प्रणालियां: आईआईटी कानपुर,
5. सतत शहरी अभिकल्प: आईआईटी रुड़की,
6. रक्षा: आईआईटी मद्रास,
7. विनिर्माण: आईआईटी मद्रास,
8. नैनो-प्रौद्योगिकी हार्डवेयर: आईआईटी बॉम्बे,
9. पर्यावरणीय विज्ञान एवं जलवायु परिवर्तन- आईआईएससी, बेंगलौर और
10. ऊर्जा सुरक्षा: आईआईटी बॉम्बे

भारत में इनैक्टिवेटिड पोलियो वैक्सीन (आईपीवी) की शुरुआत

भारत में इनैक्टिवेटिड पोलियो वैक्सीन (आईपीवी) की शुरुआत की गई है। यह कदम *वैश्विक पोलियो समापन कार्यनीति* के लिए भारत की प्रतिबद्धता के तहत उठाया गया है।

भारत सरकार आईपीवी को अपने नियमित टीकाकरण कार्यक्रम के अंतर्गत ओरल पोलियो वैक्सीन के साथ शुरू कर रही है और इस प्रकार भारतीय बच्चों को दोहरी सुरक्षा प्रदान करने और पोलियो उन्मूलन संबंधी भारत की उपलब्धियों को सुरक्षित रखने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम उठा रही है। पहले चरण में, यह टीका छह राज्यों यथा- असम, गुजरात, पंजाब, बिहार, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में शुरू किया जाएगा। आईपीवी इंजैक्शन नियमित टीकाकरण सत्रों के दौरान एक साल से छोटे बच्चों को ओरल पोलियो वैक्सीन (ओपीवी) की तीसरी खुराक के साथ निशुल्क दिया जाएगा।

नियमित टीकाकरण में आईपीवी की शुरुआत मई, 2015 में विश्व स्वास्थ्य सभा द्वारा की गई सिफारिशों के अनुरूप है और इसका अनुमोदन वैश्विक पोलियो समापन कार्यनीति ने भी किया है।

योजना

वर्ष:60 • अंक 1 • जनवरी 2016 • पौष-माघ, शक संवत 1937 • कुल पृष्ठ:76

हिंदी, असमिया, बांग्ला, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, तमिल, तेलुगु, मराठी, उड़िया, पंजाबी तथा उर्दू में एक साथ प्रकाशित

प्रधान संपादक: दीपिका कच्छल

संपादक: ऋतेश पाठक

उपसंपादक: भुवनेश

संपादकीय कार्यालय

648, सूचना भवन, सीजीओ परिसर,
लोधी रोड, नयी दिल्ली-110 003
दूरभाष (प्रधान संपादक): 24362971
ईमेल: yojanahindi@gmail.com
वेबसाइट: www.yojana.gov.in
www.publicationsdivision.nic.in
http://www.facebook.com/yojanahindi

संयुक्त निदेशक (उत्पादन): वी.के. मीणा

सहायक निदेशक (प्रसार): पद्म सिंह

(प्रसार एवं विज्ञापन)
ईमेल: pdjucir@gmail.com

आवरण: जी. पी. धोपे

पत्रिका मंगवाने, सदस्यता, नवीकरण, पुराने अंकों की प्राप्ति एवं एजेंसी आदि के लिए मनीऑर्डर/डिमांड ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर 'अपर महानिदेशक, प्रकाशन विभाग' के नाम से बनवा कर निम्न पते पर भेजें:

सहायक निदेशक (प्रसार एवं विज्ञापन)
प्रकाशन विभाग, कमरा सं. 48-53
भूतल, सूचना भवन, सीजीओ परिसर
लोधी रोड, नई दिल्ली-110003
दूरभाष: 011-24367453

सदस्य बनने अथवा पत्रिका मंगाने के लिए हमारे निम्नलिखित विक्रय केंद्रों पर भी संपर्क किया जा सकता है।

इस अंक में

- **संपादकीय** 7
- भारत में स्कूली शिक्षा का कायाकल्प: नीतिगत मुद्दे तथा प्राथमिकताएं
  आर. गोविंदा 9
- शिक्षा का वित्तीय प्रबंधन
  जे.बी.जी. तिलक 13
- शिक्षा में प्रौद्योगिकी: अधीर पीढ़ी की आशाएं एवं आकांक्षाएं
  राजाराम एस. शर्मा 15
- भारतीय शिक्षा: अतीत, वर्तमान और भविष्य
  पवन कुमार शर्मा 19

क्या आप जानते हैं? 24

- **फोकस**
- एक मूल्य आधारित समाज के प्रति: साहचर्य की शिक्षा
  जे. एस. राजपूत 25
- महिला एवं बालिका शिक्षा: भारतीय परिदृश्य
  विमला रामचंद्रन 29

विशेष आलेख

- भारत में समावेशी शिक्षा की रूपरेखा
  अनुप्रिया चड्ढा 33
- मेक इन इंडिया मिशन के आईने में शिक्षा, अनुसंधान एवं विकास
  अशोक झुनझुनवाला 37
- दूरस्थ शिक्षा: भारत और भविष्य के लिए एक प्रणाली
  चन्द्रभूषण शर्मा 41
- डिजिटल इंडिया से बदलेगी शिक्षा की तस्वीर
  संदीप कुमार पांडेय 45
- भारत में शैक्षिक नीतियों एवं कार्यक्रमों से महिला सशक्तीकरण
  दयाशंकर सिंह यादव 49
- किशोरावस्था और विद्यार्थी मन
  जितेन्द्र नागपाल 53
- शैक्षिक गुणवत्ता और शिक्षकीय कौशल
  कौशलेंद्र प्रपन्न 56
- वंचितों के लिए शिक्षा: चिंताएं, चुनौतियां और भावी योजनाएं
  एस श्रीनिवास राव 58
- शिक्षा का स्वरूप: धारणाएं और यथार्थ
  रवि शंकर 61
- वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में मूल्यपरकता की आवश्यकता
  बरुण कुमार सिंह 64
- रेडियो व प्रसारण शिक्षा
  विकास चंद्र 66
- शिक्षण में मातृभाषा की भूमिका और महत्त्व
  अभिनव श्रीवास्तव 69
- शिक्षा के प्रसार के लिए गैर-सरकारी प्रयास
  सुभाष सेतिया 72

प्रकाशन विभाग के विक्रय केंद्र

शहर	पता	पिनकोड	दूरभाष
नयी दिल्ली	सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड	110003	24367260
दिल्ली	हाल सं. 196, पुराना सचिवालय	110054	23890205
नवी मुंबई	701, सी- विंग, सातवीं मंजिल, केंद्रीय सदन, बेलापुर	400614	27570686
कोलकाता	8, एसप्लानेड ईस्ट	700069	22488030
चेन्नई	'ए' विंग, राजाजी भवन, बसंल नगर	600090	24917673
तिरुअनंतपुरम	प्रेस रोड नयी गवर्नमेंट प्रेस के निकट	695001	2330650
हैदराबाद	ब्लॉक सं-4, पहला तल, गृहकल्प, एमजी रोड, नामपल्ली	500001	24605383
बंगलुरु	फर्स्ट फ्लोर, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला	560034	25537244
पटना	बिहार राज्य कोऑपरेटिव बैंक भवन, अशोक राजपथ	800004	2683407
लखनऊ	हॉल सं-1, दूसरा तल, केंद्रीय भवन, सेक्टर-एच, अलीगंज	226024	2225455
अहमदाबाद	अंबिका कॉम्प्लेक्स, फर्स्ट फ्लोर	380007	26588669
गुवाहाटी	के. के. बी. रोड, नयी कॉलोनी, कमान संख्या-7, चेनीकुटी	781003	2665090

- **योजना का लक्ष्य देश के आर्थिक विकास से संबंधित मुद्दों का सरकारी नीतियों के व्यापक संदर्भ में गहराई से विश्लेषण कर इन पर विमर्श के लिए एक जीवंत मंच उपलब्ध कराना है।**
- **योजना में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। जरूरी नहीं कि ये लेखक भारत सरकार के जिन मंत्रालयों, विभागों अथवा संगठनों से संबद्ध हैं, उनका भी यही दृष्टिकोण हो।**
- **प्रकाशित विज्ञापनों की विषयवस्तु के लिए योजना उत्तरदायी नहीं हैं।**

दरें: वार्षिक: ₹ 100 द्विवार्षिक: ₹ 180, त्रिवार्षिक: ₹ 250, विदेशों में वार्षिक दरें: पड़ोसी देश: ₹ 530, यूरोपीय एवं अन्य देश: ₹ 730

आपकी राय

हमारी आवाज 'योजना'

योजना का नवंबर माह का अंक बहुत अच्छा है। इसमें हमें भारत की ग्रामीण प्रावधान और भारतीय रेलवे की जो जानकारी मिली है बहुत अच्छी है इसके साथ ही योजना में हम विद्यार्थियों की बातों का ध्यान भी रखा जाता है और हमारे विचारों को छापा जाता है जिससे ये हमें और भी ज्यादा प्रिय है।

शुभम कुमार
ईमेल: rajashubham91@gmail.com

परिवहन पर बेहतरीन सामग्री

'परिवहन: विकास की जीवनरेखा' पर केंद्रित नवंबर 2015 का अंक पढ़ा। अंक से परिवहन व्यवस्था की समग्र जानकारी मिली। मैं विकास को समर्पित इस मासिक पत्रिका का नियमित पाठक अप्रैल 2009 से हूं। किसी भी राष्ट्र के विकास में सुव्यवस्थित परिवहन व्यवस्था वाहक होती है। उन्नत श्रेणी की सड़कें विकसित राष्ट्र को प्रदर्शित करती हैं। वर्ष 1947 में आजादी मिलने के बाद भारत विकास के पथ पर शनै: शनै: अग्रसर रहा है। केंद्र और राज्य सरकारों ने परिवहन को सुव्यवस्थित बनाने के लिए कई मोर्चों पर काम किया है। केंद्र सरकार ने गांवों और शहरों के बीच की दूरी कम करने और गांवों में बेहतर सुविधा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से वर्ष 2000 में प्रधानमंत्री ग्रामीण सड़क योजना की शुरुआत की। साथ ही तीव्र एवं सुरक्षित रेल यात्रा के लिए *हीरक चतुर्भुज परियोजना* प्रारंभ की गई है, जिसके तहत चार महानगरों– दिल्ली, मुंबई, चेन्नई और कोलकाता तथा विकास केंद्रों को जोड़ने के लिए एक अत्यंत तीव्र रेल नेटवर्क स्थापित किया जाएगा। हमें यातायात व्यवस्था को सुगम बनाने पर अधिक बल देना चाहिए। साथ ही साथ नागरिकों को भी यातायात नियमों का पालन करना चाहिए ताकि दुर्घटनाओं में कमी आ सके क्योंकि अधिकतर दुर्घटनाओं का मुख्य कारण यातायात नियमों का पालन न करना ही रहा है। यातायात नियमों के व्यापक प्रचार-प्रसार की जरूरत है। साथ ही दुर्घटनारहित रेल प्रणाली विकसित करने पर बल दिया जाना चाहिए। अंत में योजना के समस्त टीम को नव वर्ष 2016 की हार्दिक शुभकामनाएं।

अमित कुमार गुप्ता, रामपुर,
नौसहन हाजीपुर, वैशाली, बिहार
ईमेल: kramitkumar2@gmail.com

युवाओं की मार्गदर्शक पत्रिका

योजना का '*परिवहन: विकास की जीवनरेखा*' पर केंद्रित नवंबर अंक पढ़ा। अंक के सभी आलेख सारगर्भित और ज्ञानोपयोगी रहे। संपादकीय मौजूदा समस्या के प्रति ध्यान आकृष्ट कराने वाला रहा। परिवहन विकास की जीवनरेखा मानी जाती है। सुदृढ़ परिवहन व्यवस्था से विकास तीव्र गति से होता है। लोगों को जरूरत की वस्तुएं आसानी से उपलब्ध होती हैं। शहरों और गांवों के बीच की दूरी में कमी आती है। सुदूर क्षेत्रों में निवास कर रहे नागरिकों को बेहतर शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधा एवं रोजगार हेतु उचित वातावरण प्राप्त होता है। सरकार को यातायात व्यवस्था के प्रति लोगों को जागरूक करना चाहिए। नियमित स्तंभ 'क्या आप जानते हैं' से ई-हस्ताक्षर और रेलवे की 'हीरक चतुर्भुज परियोजना' के संदर्भ में जानकारी मिली। अंत में,

जिसका मूल्य है कम,
पर जो कभी न करे
मूल्यों से समझौता,
जो प्रदान करे हमें सर्वव्यापी ज्ञान,
जो कहे हमारे गौरवशाली
देश की विकासगाथा,
जो करे शिक्षित युवा वर्ग का सही
मार्गदर्शन, उस पत्रिका का ही
नाम है योजना,
जो रखे सदैव हमारा मान।

नेहा कुमारी
हाजीपुर, वैशाली, बिहार

जलवायु परिवर्तन एक वैश्विक आपदा

शहरों और गांवों को कैसे स्मार्ट बनाया जाए, इस मुद्दे पर सरकारी खेमे में जबरदस्त मंथन

का दौर चल रहा है। बड़ी-बड़ी बिल्डिंगें कहां होंगी, रिहायशी इलाके कौन से होंगे, कहां बाज़ार बसाना है और कहां मेट्रो का विस्तार होगा इस पर लगातार माथापच्ची चल रही है लेकिन, जब देश के दो प्रमुख महानगर तमाम भौतिक संसाधनों से परिपूर्ण होने के बाद भी मानव जीवन के लिए सबसे बदतर शहर बन जाएं तो उनमें आए बदलाव के कारणों को ढूंढ़ना महत्वपूर्ण हो जाता है। देश के दो प्रमुख महानगर आज अपने-अपने तरह के प्राकृतिक आपदा के थपेड़ों को झेल रहे हैं। एक तरफ 90 लाख की आबादी वाले शहर चेन्नई की 60 फीसदी आबादी पानी से घिरी हुई है, तो वहीं दूसरी ओर 98 लाख की आबादी को अपने दामन में समेटे राजधानी दिल्ली अपने प्रदूषण की वजह से तब राष्ट्रीय बहस का मुद्दा बन गई जब दिल्ली हाई कोर्ट ने उसके पर्यावरण की तुलना गैस चैंबर से कर दी।

दरअसल प्रकृति ने जिस तरह करवट ली है, उसका इशारा किसी नई समस्या की तरफ नहीं है, बल्कि ये वही मुद्दे हैं जो कभी राष्ट्रीय तो कभी वैश्विक बहस का मुद्दा बनते हैं।

दिल्ली, गुडगांव समेत राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र और उसके आस-पास के शहरों में पेड़ों का सफाया और उद्योगों में इज़ाफा जिस तेज़ी में हुआ है उससे ना सिर्फ ज़मीन और जल स्रोत प्रदूषित हुए हैं बल्कि, वायुमंडल पर भी इसका दूरगामी प्रभाव देखने को मिला है। दिल्ली के वायुमंडल में 2005 के हिसाब से आज 7 गुना ज्यादा प्रदूषण की मात्रा पाई गई है।

चेन्नई में आई प्राकृतिक आपदा के पीछे मानवीकृत वजह ही है। इस तरह के असंतुलित वर्षा के लिए वनों का कम होना, अत्यधिक प्रदूषण, वायुमंडल में कार्बन की मात्रा में वृद्धि जैसे कारण प्रमुख हैं।

प्रधानमंत्री जी भले ही पेरिस सम्मेलन में कार्बन उत्सर्जन के लिए विकसित राष्ट्रों को जिम्मेदार ठहराएं पर इन मामलों में भारत के आंकड़े भी संतोषजनक नहीं है। विश्व के 200 देशों के क्रम में पेड़ कटाई में भारत 10वें स्थान पर है तो वहीं जलवायु परिवर्तन के प्रमुख कारण, कार्बन उत्सर्जन में चीन, अमेरिका और यूरोपीय संघ के बाद वैश्विक कार्बन उत्सर्जन के 6.04 प्रतिशत हिस्से पर अपना प्रभुत्व बनाए भारत चौथे स्थान पर खड़ा है।

आज यह जरूरी हो जाता है कि हम अपनी असीमित आकांक्षाओं और जरूरतों को दरकिनार कर आने वाली पीढ़ी के मद्देनज़र प्रकृति के लिए कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाएं। अत्यधिक पेड़ों को लगाना, मोटर गाड़ियों का संतुलित उपयोग समेत उन सभी तरीकों पर अमल कर आने वाली पीढ़ी को एक हरा भरा ओर बेहतर पर्यावरण देना हमारा कर्तव्य है। इसके लिए सरकारी महकमे को भी समझना होगा कि अभी समय की जरूरत 'स्मार्ट इंडिया' के साथ-साथ 'क्लीन इंडिया-ग्रीन इंडिया' भी है।

शुभम श्रीवास्तव
गाजीपुर, उत्तर प्रदेश

पर्यावरण अनुकूल हथकरघा उद्योग

मैं योजना पत्रिका कई वर्षों से पढ़ती आ रही हूं। यह पत्रिका मुझे बहुत अच्छी लगती है क्योंकि इस पत्रिका में मुझे शिक्षा से जुड़ी हुई बहुत सारी जानकारी प्राप्त होती है तथा इससे रोजगार के बारे में में जानकारी प्राप्त होती है।

मैंने अक्टूबर 2015 का अंक पढ़ा। इसमें सभी लेख अच्छे हैं। विशेष आलेख (मोनिका एस गर्ग) विरासत का संरक्षण: हथकरघा उद्योग को सुरक्षा और प्रोत्साहन मुझे विशेष तौर पर अच्छा लगा क्योंकि इस आलेख में हथकरघा उद्योग को बहुत अच्छे तरीके से बताया गया है। हथकरघा से तैयार किया हुआ कपड़ा आज के दौर में दुल्हनें काफी प्रयोग कर रही हैं। दूसरी ओर अगर बात करें तो हथकरघा हमारे सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा माना जाता है। हथकरघा विरासत का संरक्षण है तथा हथकरघा उद्योग की सुरक्षा और प्रोत्साहन प्रदान किया जाता है।

रिंपी कुमारी,
कालिंदी कॉलेज, दिल्ली

कौशल प्रशिक्षण को प्रोत्साहन

मैं ने योजना का अक्टूबर 2015 अंक पढ़ा। कौशल विकास विषय पर केंद्रित प्रस्तुत अंक में प्रकाशित सभी आलेख अद्वितीय, प्रेरणाप्रद, ज्ञानवर्द्धक और हमारे लिए समाज रूप से उपयोगी साबित हुई। वैश्विक आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा के इस आधुनिक युग में कौशल प्रशिक्षण की आवश्यकता विश्वभर के देशों के लिए आर्थिक विकास की एक अनिवार्य व अभिन्न अंग बन चुकी है। कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रमों को प्रोत्साहित कर न केवल देश की अर्थव्यवस्था को नई ऊंचाईयों पर ले जाने एवं विश्वस्तरीय बनाने में मदद मिलेगी बल्कि कौशल प्रशिक्षण प्राप्त कुशल कामगारों व श्रमिकों की कार्यक्षमता और कार्यशैली में अभीष्ट परिवर्तन होने से औद्योगिक उत्पादन स्तर में भारी वृद्धि होने के साथ-साथ शिक्षित-अशिक्षित बेरोजगारों के लिए पर्याप्त मात्रा में रोजगार उपलब्ध हो सकेंगे। हमारी अर्थव्यवस्था के उन्नयन और आर्थिक विकास दर में वृद्धि के लिए कौशल प्रशिक्षण जैसे महत्वपूर्ण रोजगारपरक कार्यक्रमों को प्रोत्साहित किया जाना बेहद जरूरी है।

राकेश रंजन,
मगध कॉलोनी, गया, बिहार

प्राचीनतम माध्यम है जल परिवहन

प्राचीन समय में जब सड़क परिवहन या वायु परिवहन नहीं था तब परिवहन का एकमात्र साधन नौवहन था। अत: कहा जा सकता है कि जल परिवहन सबसे प्राचीन परिवहन है यही कारण है कि प्राचीन सभ्यताओं का विकास नदियों के किनारे संभव हुआ और आज सभी विकसित शहर नदियों के किनारे स्थित हैं। परंतु बढ़ते प्रदूषण की वजह से नदियों ने नालों का रूप ले लिया है और नदियों में जल भी नाममात्र का रह गया है।

नदियों के किनारे अवैध निर्माण ने नदियों के मार्ग को संकरा कर दिया है। इसकी वजह से जब कभी नदियों में जल की मात्रा बढ़ती है तो बाढ़ आ जाती है जिससे अपार जन-धन की हानि होती है। बहुत-सी नदियां मानूसनी होती हैं जिनमें बरसात के दिनों में तो पानी रहता है परंतु उसके बाद पानी न के बराबर रह जाता है। यह कारण जल परिवहन में अवरोध का एक मुख्य कारण है।

इसी तरह गांव में नदियों के ऊपर बने पुल या तो कच्चे होते हैं या तो उनकी ऊंचाई कम होती है जो भी एक मुख्य समस्या है। इसी तरह नदियों का अधिकतर मार्ग जंगलों से गुजरता है जहां पर सुरक्षा भी एक प्रमुख वजह है जिससे जल परिवहन में अवरोध उत्पन्न होगा। इन सभी समस्याओं के हल से जल परिवहन एक सस्ता और सुगम परिवहन बन सकता है।

तनु सिंह
गौसगंज, हरदोई
ईमेल: tanumissworld@gmail.com

दृष्टि The Vision

Most trusted & renowned institute among IAS aspirants

हिंदी माध्यम के IAS/PCS टॉपर्स क्या कहते हैं 'दृष्टि करेंट अफेयर्स टुडे' पत्रिका के बारे में...

निशांत जैन (IAS - राजस्थान कैडर)

'दृष्टि करेंट अफेयर्स टुडे' स्वयं में एक अनूठी और बहुआयामी पत्रिका है। इसका सभी विद्यार्थियों के लिये उपलब्ध होना प्रतियोगिता जगत की एक बड़ी ज़रूरत पूरी करता है। मैंने खुद इस पत्रिका का लाभ उठाया है।

सिविल सेवा परीक्षा पर ही पूरी तरह केन्द्रित यह पत्रिका कई मायनों में विशिष्ट है। इंटरव्यू खंड, निबंध खंड, एथिक्स आदि पर विशेष ध्यान देना इस पत्रिका को बाकी पत्रिकाओं से अलग बनाता है। समसामयिक घटनाओं का सिविल सेवा परीक्षा के नज़रिये से विश्लेषण और फिर उनकी बिन्दुवार प्रस्तुति बेहद उपयोगी और प्रासंगिक है।

'दृष्टि करेंट अफेयर्स टुडे' आपकी सफलता में सार्थक भूमिका निभाएगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

राजेन्द्र पेंसिया (IAS - उत्तर प्रदेश कैडर)

हिंदी माध्यम के अभ्यर्थियों के सामने सबसे बड़ी समस्या यह है कि पत्रिका कौन सी पढ़ी जाए? इसके लिये सबसे अच्छा, श्रेष्ठ, प्रामाणिक और सारगर्भित स्रोत 'दृष्टि करेंट अफेयर्स टुडे' के माध्यम से मिलता है। इंटीग्रेटेड एप्रोच से तैयारी के लिये हिंदी माध्यम में ऐसी किसी पत्रिका का अभाव था जो प्रिलिम्स, मुख्य परीक्षा और साक्षात्कार की ज़रूरतों को पूरा कर सके। विकास सर के मार्गदर्शन में यह पत्रिका निश्चित ही इन सभी मानकों पर खरी उतरती है। हिंदी माध्यम के अभ्यर्थी गूगल ट्रांसलेटेड मैटीरियल पढ़ने की बजाय यह पत्रिका पढ़ें जो पूर्णत: मौलिक व अनुभवी टीम की मेहनत का परिणाम है। मुझे विश्वास है कि यह पत्रिका उनके लिये निश्चित रूप से वरदान साबित होगी। शुभकामनाएँ।

आई.ए.एस, पी.सी.एस. तथा अन्य प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी को समर्पित पत्रिका

वर्ष 1 | अंक 7 | जनवरी 2016

दृष्टि The Vision

करेंट अफेयर्स टुडे

महत्त्वपूर्ण लेख

- सीरिया में शह और मात का खेल
- ईज़ ऑफ डूइंग बिज़नेस में भारत की स्थिति
- नेट न्यूट्रैलिटी का महत्त्व
- सरोगेसी के विनियमन से जुड़े प्रश्न
- करेंसी वॉर : एक नवीन वैश्विक आर्थिक संघर्ष
- सूचना के अधिकार के दस वर्ष
- जी.एम. फसल से उपजे विवाद के पहलू
- भारत में बाल कुपोषण
- ग्रामीण विकास और श्यामा प्रसाद मुखर्जी रुर्बन मिशन

रणनीतिक आलेख

- मुख्य परीक्षा में उत्तर कैसे लिखें?

एथिक्स एवं वाद-विवाद

- कार्ल मार्क्स के नैतिक विचार
- भारत में बढ़ती असहिष्णुता
- क्या उच्च शिक्षा से आरक्षण को समाप्त किया जाना चाहिये?

टॉपर्स से बातचीत

- मनीष कुमार वर्मा - सिविल सेवा 2014 में IPS हेतु चयनित
- डॉ. विभोर अग्रवाल - सातवाँ स्थान, छत्तीसगढ़ पी.सी.एस.

मुख्य परीक्षा विशेषांक

- सामान्य अध्ययन के चारों प्रश्नपत्रों का 12 खंडों में वैज्ञानिक वर्गीकरण एवं प्रत्येक खंड पर इस वर्ष की मुख्य परीक्षा के लिये महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
- इन प्रश्नोत्तरों के माध्यम से सिर्फ 7 दिनों में पूरे सामान्य अध्ययन का त्वरित रिविज़न

₹ 100

और भी बहुत कुछ....

DIP

मनीष कुमार (IPS)

यह पत्रिका (दृष्टि करेंट अफेयर्स टुडे) हिन्दी माध्यम में उपलब्ध पाठ्य सामग्री की कमी को पूरा करने की एक गंभीर कोशिश है। इसके सभी खंडों का व्यवस्थित अध्ययन तैयारी को संपूर्णता प्रदान करता है। पत्रिका के 'समसामयिक मुद्दों पर संभावित प्रश्नोत्तर' खंड से मुझे मुख्य परीक्षा की तैयारी में विशेष मदद मिली थी।

प्रदीप कुमार (IRS)

'दृष्टि करेंट अफेयर्स टुडे' एक मानक पत्रिका है। पिछले दो अंकों में तो इसने 'गागर में सागर' भर दिया है। वस्तुत: बाज़ार में उपलब्ध स्तरहीन सामग्री ने अभ्यर्थियों को दिशा-भ्रमित ही किया है। ऐसे में 'दृष्टि करेंट अफेयर्स टुडे' ने विद्यार्थियों की राह आसान कर दी है।

अंकित तिवारी (IRS IT)

'दृष्टि करेंट अफेयर्स टुडे' एक सारगर्भित एवं विविध आयामी पत्रिका है जो सिविल सेवा परीक्षा के तीनों चरणों- प्रिलिम्स, मुख्य परीक्षा एवं साक्षात्कार के लिये आवश्यक पाठ्य सामग्री उपलब्ध कराती है। हिंदी माध्यम के अभ्यर्थियों के लिये सबसे बड़ी चुनौती समसामयिक मुद्दों पर प्रामाणिक कंटेंट की उपलब्धता की थी परंतु 'दृष्टि करेंट अफेयर्स टुडे' ने इस चुनौती को स्वीकारते हुए उत्कृष्ट एवं प्रामाणिक अध्ययन सामग्री उपलब्ध कराई है, जो सिविल सेवा अभ्यर्थियों के लिये वरदान साबित हो रही है। समसामयिक मुद्दों पर 'प्रश्नोत्तर खण्ड' तो मुख्य परीक्षा की तैयारी हेतु विशेष रूप से उपयोगी है। विकास सर का सम्पादकीय लेख अभ्यर्थियों को निरंतर प्रोत्साहित करता रहता है।

जय प्रकाश (IRTS)

विद्यार्थियों के समक्ष उच्च स्तर की पाठ्य सामग्री का सदैव अभाव रहा है जिसके कारण हिंदी भाषी छात्र हीन भावना का शिकार रहते हैं। यह पत्रिका (दृष्टि करेंट अफेयर्स टुडे) इस मानक पर खरी उतरती है। इसमें परीक्षा के अनुरूप बहुआयामी समसामयिक खंडों को विश्लेषित करने तथा रोचक ढंग से प्रस्तुत करने की क्षमता है। खास तौर पर निबंध, एथिक्स और इंटरव्यू के लिये किया गया प्रयास इसे अन्य पत्रिकाओं से बेहतर बनाता है जो अवश्य ही विद्यार्थियों की सफलता में निर्णायक सिद्ध होगा। मैं दृष्टि परिवार की अनुकरणीय पहल का आभार व्यक्त करता हूँ।

विवेक यादव (UPPCS, I-Rank)

राज्य व संघ लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं की दृष्टि से यह पत्रिका मुझे बहुत उपयोगी लगी। यह पत्रिका समसामयिक घटनाचक्र के विषयों में आपकी समझ बढ़ाने के साथ ही साथ उस विषय पर बहुआयामी दृष्टिकोण का सृजन करती है। इस पत्रिका का निबंध व मॉक इंटरव्यू खण्ड तमाम डाउट्स को क्लियर करने में सहायक है।

आदित्य प्रजापति (UPPCS, II-Rank)

मुख्य व प्रारंभिक परीक्षा के दृष्टिकोण से यह पत्रिका मुझे बहुत उपयोगी लगी। पत्रिका के लेख, निबंध व एथिक्स खण्ड परीक्षार्थियों के लिये निश्चित रूप से बहुत लाभदायक सिद्ध होंगे।

641, Ist Floor, Dr. Mukherji Nagar, Delhi-9 Ph.: 011-47532596, (+91)8130392354, 56, 59
E-mail:info@drishtiias.com, drishtiacademy@gmail.com * Website: www.drishtiias.com

YH-250/2016

संपादकीय

परिवर्तन के लिए शिक्षा

''शिक्षा सबसे ताकतवर हथियार है, जिसका इस्तेमाल आप दुनिया बदलने के लिए कर सकते हैं'' – नेल्सन मंडेला

यह प्रसिद्ध उक्ति बताती कि शिक्षा का कितना अधिक महत्व है। हमारे देश के संदर्भ में यह बात और भी सच है। एक युवा लोकतंत्र के तौर पर भारत शिक्षा के मोर्चे पर बहुत तेजी से प्रगति कर रहा है। राष्ट्र की बुनियाद रखने वालों ने शैक्षिक विकास को पर्याप्त महत्व प्रदान कर जो दूरदर्शिता दिखाई थी, उसका भरपूर लाभ हमें मिला है। शिक्षा का भारत में ऐतिहासिक रूप से ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। प्राचीन भारत में पुरोहित वर्ग ज्ञान प्राप्त करने के लिए अध्ययन करता था, जबकि क्षत्रिय एवं वैश्य विशिष्ट उद्देश्यों के लिए जैसे विमान, युद्धकला अथवा व्यापार सीखने के लिए अध्ययन करते थे। प्राचीन शिक्षा प्रणालियों का उद्देश्य जीविकोपार्जन था। विदेशों से उच्च शिक्षा हेतु आने वाले छात्रों के लिए भी भारत शीर्ष स्थल था। सबसे बड़े शिक्षा केंद्रों में से एक नालंदा में ज्ञान की सभी शाखाएं थीं और अपने चरमोत्कर्ष काल में उसमें 10,000 तक छात्र रहते थे।

स्वतंत्रता के बाद नीति निर्माताओं ने अंग्रेजों द्वारा निर्मित कुलीनतावादी शिक्षा प्रणाली को जन सामान्य की उस शिक्षा प्रणाली में बदलने के लिए कठिन परिश्रम किया, जो समानता एवं सामाजिक न्याय के सिद्धांतों पर खड़ी थी। वर्ष 2009 में शिक्षा के अधिकार का विचार देते हुए इसे मौलिक अधिकार बना दिया गया और राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा भी की गई। उसके बाद से नीति निर्माताओं ने सर्व शिक्षा अभियान और मध्याह्न भोजन योजना जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से सभी को शिक्षा उपलब्ध कराने का प्रयास किया है। आज भारत को तेजी से विकसित होती अर्थव्यवस्था के रूप में ही नहीं बल्कि उपयुक्त एवं शिक्षित व्यक्तियों वाले शक्तिशाली मानव संसाधन के विशाल समूह के रूप में भी अंतर्राष्ट्रीय मंच पर गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। उच्च शिक्षित, तकनीक को समझने वाले और वैज्ञानिक तरीके से प्रशिक्षित भारतीय नागरिक दुनिया के कोने-कोने में विभिन्न प्रकार के काम कर रहे हैं और भारत का मान बढ़ा रहे हैं। साक्षरता के स्तर में वृद्धि पिछले कुछ वर्षों में स्मरणीय उपलब्धियों में शामिल रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत की साक्षरता दर केवल 12 फीसदी थी। 2011 की जनगणना के अनुसार आज हमारी साक्षरता दर 74.4 फीसदी है। 93.1 फीसदी के साथ केरल और 91.58 फीसदी के साथ मिजोरम सबसे आगे हैं और दूसरे राज्यों को भी ऊंचाई तक पहुंचने के लिए प्रेरित करते हैं।

इस यात्रा में चुनौतियां भी रही हैं और कमियां भी रही हैं। शिक्षा प्राप्त करना कई लोगों के लिए अभी तक सपना ही बना हुआ है, विशेषकर सुदूर एवं ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के लिए, जहां स्कूल की इमारत नहीं होतीं अथवा बारिश या बर्फबारी होने पर स्कूल पहुंचने की संभावना भी नहीं होती। आदिवासियों, हाशिये पर धकेले गए लोगों, अनुसूचित जाति एवं जनजाति को शिक्षा की उचित सुविधा उपलब्ध कराना उन्हें राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में शामिल करने का प्रयास कर रहे नीति निर्माताओं के लिए चिंता का बड़ा विषय है। दुर्गम स्थानों पर स्कूल होने के कारण तथा ग्रामीण क्षेत्रों में लड़कियों के लिए शौचालयों की कमी के कारण सुरक्षा संबंधी चिंता पैदा होती है, जिसके परिणामस्वरूप स्कूल छोडने वालों की दर खतरनाक स्तर तक पहुंच गई है। शिक्षा संबंधी योजना बनाते समय उन बच्चों को एकदम भुलाया जाता रहा है, जिन्हें विशेष देखभाल की जरूरत है या जिनकी विशेष आवश्यकताएं हैं। अब इन मामलों को स्वीकार किया जा रहा है और सरकार समाज के इन वर्गों को प्राथमिकता देते हुए उनकी समावेशी वृद्धि के लिए विभिन्न योजनाओं पर काम कर रही है। ज्ञान, स्वयं तथा नेशनल डिजिटल लाइब्रेरी जैसे विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से शिक्षा तक बेहतर पहुंच उपलब्ध कराने के लिए प्रौद्योगिकी का प्रयोग हो रहा है। अंतर्निहित निगरानी एवं प्रभावी मूल्यांकन प्रणालियों की तथा हाईस्कूल एवं कॉलेज के स्तरों पर व्यावसायिक शिक्षा को बढ़ावा दिए जाने की आवश्यकता अनुभव की गई है।

शिक्षा में तेजी ने तथा बेहतर करने की इच्छा ने एक चिंताजनक स्थिति भी उत्पन्न कर दी है, जहां विद्यार्थियों पर उपलब्धियों एवं प्रदर्शन का बड़ा दबाव हो गया है। बच्चे को मशीनी शिक्षा प्रणाली के उत्पाद के रूप में देखे जाने के कारण व्यक्तिगत विकास एवं जीवनोपयोगी कौशल विकास के महत्व को अनदेखा किया गया है। जो व्यक्ति तैयार किए जा रहे हैं, वे स्वयं विचार करने अथवा जिम्मेदारी लेने एवं स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने में असमर्थ हैं। शिक्षा प्रणाली द्वारा स्कूली पाठ्यक्रम में जीवनोपयोगी कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रम का समावेश करते हुए बच्चे को समाज की चुनौतियों के साथ प्रभावी तरीके से निपटने योग्य बनाया जाना चाहिए। सीबीएसई ने 2012 में जीवनोपयोगी कौशल कार्यक्रम को सतत एवं समग्र मूल्यांकन के अंश के रूप में शामिल किया था, जिसका लक्ष्य 10 से 18 वर्ष के बीच की आयु वाले किशोर विद्यार्थी थे। सर्व शिक्षा अभियान की कार्य सूची में भी गुणवत्तापूर्ण प्राथमिक शिक्षा प्रदान कराने के साथ ही उच्च प्राथमिक कक्षाओं की लड़कियों को जीवनोपयोगी कौशलों का प्रशिक्षण देना भी शामिल है। देश के नागरिक के रूप में बच्चे के सर्वांगीण विकास के लिए मूल्य आधारित शिक्षा भी आवश्यक हो गई है, जिसे स्कूल एवं कॉलेज के स्तर पर मूल्य सिखाकर, उनका पोषण एवं विकास कर प्राप्त किया जा सकता है।

मीलों लंबी यात्रा पहले ही की जा चुकी है और सरकार का ध्यान लगातार बना रहा तो देश ऐसे व्यक्तियों के निर्माण में सफल होगा, जो स्वयं में विश्वास करें तथा शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य को पूरा करें अर्थात राष्ट्र का निर्माण करें एवं हमारी भावी पीढियों को गढ़ें। ❑

सामान्य अध्ययन के लिए भारत का सर्वश्रेष्ठ एवं विश्वसनीय संस्थान...

I A S

GS World

P C S

ISO 9001 : 2008 Certified

Committed to Excellence

A Team of Best, Experienced & Renowned Experts...

Ashok Singh

Manikant Singh

Alok Ranjan

R. Kumar

Guest Faculty

Prof. Pushpesh Pant

Prof. Majid Hussain

Niraj Singh
Managing Director

Abhay Kumar

Deepak Kumar

Rajesh Mishra

Dr. V.K. Trivedi

Divyasen Singh
Co-ordinator

Delhi Centre

नया फाउंडेशन बैच

निःशुल्क कार्यशाला

11 Jan. सामान्य अध्ययन **6:30 pm**

Allahabad Centre

सामान्य अध्ययन

(मुख्य परीक्षा बैच) **15 Jan.**

(नया फाउंडेशन बैच) **12 Jan.**

Lucknow Centre

सामान्य अध्ययन (नया फाउंडेशन बैच) द्वारा **21 Jan.** 8.30 AM

भूगोल (Optional) **2 Jan.** 12:15 pm

सामान्य अध्ययन

सामान्य अध्ययन फाउंडेशन बैच: विशेषताएं

- अद्यतन एवं परीक्षोपयोगी अध्यन सामग्री
- उत्तर लेखन एवं संवर्द्धन कार्यक्रम
- समसामयिकी की नियमित कक्षाएं
- नियमित कक्षा टेस्ट

A well organised and managed programme of studies...

सिविल सेवा परीक्षा की नवीन मांग को देखते हुए हमारे संस्थान के द्वारा 'Thinking out of Box series' के तहत कई नये कार्यक्रम आरम्भ किए गए हैं-

- अभ्यर्थियों को आंकड़ों की जकड़ से मुक्त कर विश्लेषण की ओर उन्मुख करना।
- साप्ताहिक स्तर पर समसामयिक विकास की कक्षा का आयोजन तथा समसामयिक विकास को परंपरागत टॉपिक से जोड़ना।
- निबन्ध के महत्व को देखते हुए उसकी तैयारी की दीर्घकालीन रणनीति।

http://www.gsworldias.com http://www.facebook.com/gsworld1

DELHI CENTRE
705, 2nd Floor, Main Road, Mukherjee Nagar, Delhi - 9
PH. 011-27658013, 7042772062/63

ALLAHABAD CENTRE
GS World House, Stainly Road, Near Traffic Choraha, Allahabad
PH. 0532-2266079, 8726027579

LUCKNOW CENTRE
A-7, Sector-J, Near Puraniya Chauraha, Aliganj, Lucknow
PH. 0522-4003197, 8756450894

JAIPUR CENTRE
1-A, Dayal Nagar, Near Narayan Niwas, Gopalpura Bypass, Jaipur.
7240717861, 7240727861,9654349902

YH-252/2016

भारत में स्कूली शिक्षा का कायाकल्प: नीतिगत मुद्दे तथा प्राथमिकताएं

आर. गोविंदा

नई शिक्षा नीति को साथ अध्ययन करना और साथ रहना सिखाने वाले मूल्यों एवं आचरण वाली दुनिया की कल्पना करनी होगी। यदि ऐसी नीति केवल बातों के लिए नहीं होनी है बल्कि उसे स्थायी होना है तो उसे सांस्कृतिक, भाषाई और आर्थिक संदर्भ में व्यापक विविधता वाले इस देश में रहने वाले लोगों के साझे मूल्यों एवं अनुभवों पर आधारित होना चाहिए। वास्तव में पूरे देश में शिक्षा में अभूतपूर्व वृद्धि हो रही है, जो भविष्य के आशा का भाव जगाती है। आशा एवं आकांक्षा के इसी भाव को भविष्य की नीति का आधार बनाना होगा

औपनिवेशिक अतीत से विरासत में मिली कुलीनतावादी शिक्षा व्यवस्था को जनसमान्यवादी एवं समानता तथा सामाजिक न्याय के सिद्धांतों पर आधारित शिक्षा व्यवस्था में बदलने का कार्य आरंभ किए भारत को छह दशक से अधिक बीत चुके हैं। यह कार्य आसान नहीं रहा है। देश को लगातार बढ़ती जनसंख्या का सामना भी करना पड़ा, जिसके कारण बच्चों को स्कूलों तक पहुंचाने और सभी को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करने की दिशा में हुई प्रगति धीमी लगने लगी। छह दशक से भी अधिक समय से जारी यह प्रयास कई महत्वपूर्ण नीतिगत उपायों का साक्षी बना है, जिनके कारण शानदार प्रगति हुई है और स्कूलों में लगभग सभी बच्चों के प्रवेश से यह बात सिद्ध होती है। भारतीय संसद द्वारा 2009 में शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाने के लिए संविधान में संशोधन किया जाना और शिक्षा का अधिकार अधिनियम को पारित किया जाना इस यात्रा में सबसे निर्णायक क्षण रहे। देश सभी को माध्यमिक शिक्षा उपलब्ध कराने एवं सभी को उच्च शिक्षा समान रूप से उपलब्ध कराने के महत्वाकांक्षी मार्ग पर भी चल पड़ा है। इन उपलब्धियों और नीतिगत उपायों के कारण भविष्य के लिए नई अपेक्षाएं खड़ी हो गई हैं।

प्राथमिक शिक्षा में लगभग सभी बच्चों का प्रवेश कराने तथा सभी स्तरों पर शिक्षा की उपलब्धता में व्यापक विस्तार करने के बाद देश गुणवत्ता के मोर्चे पर बड़े कदम उठाने एवं यह सुनिश्चित करने के लिए तैयार खड़ा है कि बच्चे केवल स्कूल नहीं जाएं बल्कि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करें। किंतु इसके लिए विभिन्न नीतिगत उपायों की आवश्यकता है, जो हमारा ध्यान एवं संसाधनों का निवेश कुछ प्राथमिकता वाले क्षेत्रों पर केंद्रित करें। इसके अतिरिक्त समानता के मुद्दे को खतरे में डाले बगैर गुणवत्ता में सुधार सुनिश्चित करना होगा। इस संक्षिप्त आलेख में मैं स्कूली शिक्षा में ऐसे कुछ कदमों पर प्रकाश डालने का प्रयास करूंगा, जो सभी को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराने में और प्रगति करने के लिए बहुत आवश्यक हैं।

सुदृढ़ीकरण की आवश्यकता

केंद्र सरकार एवं राज्य सरकारें सामाजिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों एवं विशेष रूप से स्कूलों की स्थापना में अभी तक आपूर्ति आधारित दृष्टिकोण अपनाती रही हैं। स्कूलों में सभी बच्चों का पंजीकरण या प्रवेश सुनिश्चित करने के लिए यह आवश्यक भी था। किंतु इसके कारण उपलब्ध संसाधनों के वितरण में कई बेतुकी बातें भी शामिल हो गई हैं और उनके कारण शैक्षिक प्रतिष्ठानों में असंतुलन उत्पन्न हो गया है। ऊपर से नीचे की ओर आपूर्ति के मॉडल के कारण प्रतिष्ठानों और सुविधाओं का या तो उपयोग ही नहीं हुआ है या बहुत कम उपयोग हुआ है। छात्रों की संख्या की दृष्टि से छोटे स्कूल पिछले कुछ वर्षों में बड़ी समस्या बनकर उभरे हैं, जिनमें गुणवत्ता वाला बुनियादी ढांचा और पुस्तकालय एवं प्रयोगशाला

लेखक सामाजिक विकास परिषद् में आईसीएसएसआर नेशनल फेलो हैं। वह राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन तथा प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) के कुलपति रह चुके हैं। वह यूनेस्को के पैरिस स्थित अंतर्राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन संस्थान में भी प्रोफेसर रहे हैं। वह शिक्षा का अधिकार अधिनियम तथा अन्य कई नीतिगत पहलों के प्रारूप तैयार करने में सक्रिय रहे हैं तथा स्कूली शिक्षा के विषय पर लगातार लिखते रहे हैं। ईमेल: aar.govinda@gmail.com

जैसी शैक्षिक सुविधाएं उपलब्ध कराया जाना अव्यावहारिक है। वास्तव में देश में अधिकतर प्राथमिक स्कूलों में 100 से भी कम बच्चे पढ़ रहे हैं। बड़ी संख्या में ऐसे स्कूल हैं, जिनमें 50 से कम और कहीं-कहीं तो 25 से भी कम बच्चे पढ़ रहे हैं। उनके विलय एवं सुदृढ़ीकरण की प्रगतिशील नीति बनानी होगी क्योंकि देश के कई भागों में जनसांख्यिकी में तेज परिवर्तन के कारण स्थिति और भी चुनौतीपूर्ण होने जा रही है। जन्म दर में कमी के कारण प्राथमिक स्कूलों में प्रवेश लेने वालों की संख्या घट रही है और आने वाले वर्षों में यह चलन और भी तेज होगा।

विलय एवं सुदृढ़ीकरण की ऐसी नीति में नए स्कूल स्थापित करने एवं वर्तमान स्कूलों को मिलाकर अच्छी गुणवत्ता वाले व्यवहार्य स्कूल तैयार करने का ढांचा तैयार करना होगा। इसके लिए परिवहन एवं आवासीय सुविधाएं उपलब्ध कराकर बच्चों की प्रतिभागिता बढ़ाने के वैकल्पिक साधनों की पड़ताल करने की आवश्यकता भी होगी। इसकी तत्काल आवश्यकता है क्योंकि आम तौर पर गांवों के बाहरी हिस्सों में स्थित छोटे स्कूलों में प्राय: हाशिये पर धकेले गए वर्गों के बच्चे ही पढ़ते हैं, जिसके कारण स्कूल की उपलब्धता के मामले में भी असमानता बढ़ सकती है। इसलिए प्रत्येक स्कूल को पर्याप्त सामग्री एवं मानव संसाधन उपलब्ध कराए जाने के प्रश्न को स्थानीय मानदंडों जैसे स्कूल का आकार एवं स्थान तथा निकटवर्ती रिहायशी स्थानों तक उसकी पहुंच आदि पर आधारित होना चाहिए। इस संबंध में कोई राष्ट्रीय नियम बना देना ठीक नहीं होगा।

स्कूल जाने की उम्र का निकलना

इस बात के अनुभवजन्य प्रमाण बढ़ते जा रहे हैं कि जब तक बच्चे की आयु स्कूल जाने योग्य होती है तब तक कुछ निश्चित प्रकार के बहिष्कारों को रोकना कठिन हो चुका होता है। वास्तव में बड़ी संख्या में तंत्रिका विज्ञान, मनोविज्ञान एवं संज्ञान संबंधी पुस्तकों तथा लेखों में बाल्यावस्था के आरंभ में ही कदम उठाए जाने की बात कही जाती है। विशेष रूप से यह स्पष्टतया सिद्ध हो चुका है कि जीवन के आरंभ में पोषण एवं ज्ञान संबंधी प्रेरणा दीर्घकालिक कौशल विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। कम पोषण प्राप्त करने वाले बच्चों में मृत्यु, संज्ञान एवं स्कूल के मामले में खराब प्रदर्शन की दर बहुत अधिक होती है और उनके द्वारा स्कूली शिक्षा बीच में ही छोड़ दिए जाने की आशंका भी अधिक होती है। इस प्रकार सीखने की प्रक्रिया तो प्राथमिक स्कूल में बच्चे के औपचारिक प्रवेश से पहले ही आरंभ हो जाती है। वास्तव में शिक्षाविदों के बीच यह मत व्यापक और दृढ़ है कि प्राथमिक शिक्षा से भी पूर्व मिली शिक्षा के लाभ प्राथमिक स्कूल में भी प्राप्त होते हैं। विशेष रूप से यह देखा गया है कि शिक्षकों के अनुसार जब बच्चे स्कूल में प्रवेश करते हैं तो शिक्षा संबंधी कौशल उनके लिए सबसे सामान्य बाधा होते हैं। वे यह भी मानते हैं कि कक्षा में होने वाली पढ़ाई का अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए आत्मनियंत्रण एवं समाज में घुलने-मिलने की जो प्रक्रिया आवश्यक है, उसे स्कूल आने से पहले मिली शिक्षा आसान बनाती है।

शिक्षकों के अनुसार जब बच्चे स्कूल में प्रवेश करते हैं तो शिक्षा संबंधी कौशल उनके लिए सबसे सामान्य बाधा होते हैं। वे यह भी मानते हैं कि कक्षा में होने वाली पढ़ाई का अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए आत्मनियंत्रण एवं समाज में घुलने-मिलने की जो प्रक्रिया आवश्यक है, उसे स्कूल आने से पहले मिली शिक्षा आसान बनाती है।

यही कारण है कि हाल के वर्षों में बच्चों को स्कूल जाने योग्य आयु से पहले विशेष रूप से स्वास्थ्य एवं पोषण कार्यक्रमों के संदर्भ में संस्थागत सहायता प्रदान किए जाने पर ध्यान बढ़ा है। लड़कियों को छोटे भाई-बहनों की देखभाल के जिम्मे से मुक्ति दिलाकर शिक्षा के अधिक अवसर प्रदान करने के लिए स्कूल के लिए तैयार करने वाले कार्यक्रम एवं/अथवा प्री-स्कूल कक्षाओं को प्राथमिक स्कूल से जोड़ने आदि को साधन बनाया गया है। छह वर्ष तक की आयु के बच्चों को विकास हेतु सहायता एवं माताओं को प्रसव के उपरांत देखभाल की सुविधा प्रदान करने के लिए एकीकृत बाल विकास योजना के झंडे तले भारत ने बहुत विराट कार्यक्रम चला रखा है। फिर भी प्रगति धीमी है और संसाधनों की उपलब्धता अपर्याप्त है। स्कूली शिक्षा के साथ ही प्री-स्कूल शिक्षा के संबंध में स्वतंत्र नीति तैयार करना लाभप्रद होगा।

कामकाजी बच्चों की समस्या का समाधान

कई गरीबों के लिए पीढ़ियां कर्ज और चाकरी की छोटी सी दुनिया में पैदा होती हैं और वहीं खत्म हो जाती हैं। बुनियादी शिक्षा से वंचित रहने और पीढ़ी-दर-पीढ़ी कर्ज के जाल में फंसे होने के कारण जीवन के कष्टों से मुक्ति का उनके पास कोई रास्ता नहीं होता। ऐसी स्थितियों में फंसे लोगों की प्रतिक्रिया असामान्य तरीके की होती हैं। उनमें से एक तरीका है छोटे बच्चों को कमाऊ श्रम में लगा देना, जिससे उनकी शिक्षा बुरी तरह प्रभावित होती है। फिर भी वे शिक्षा को ही अपने कष्टों से मुक्ति का एकमात्र साधन मानते हैं। बहुत अत्याचारी अथवा संवेदनाहीन माता-पिता को छोड़ दे तो निर्धन से निर्धन परिवारों में भी माता-पिता अवसर मिलने पर अपने बच्चों को काम से हटाना पसंद करेंगे। इसलिए ऐसी स्थितियां तैयार करने पर जोर होना चाहिए, जिनसे माता-पिता अपने बच्चों को स्कूल भेज सकें। महत्वपूर्ण सबक यह है कि बाल श्रम पर प्रतिबंध लगाने का समर्थन करना भर पर्याप्त नहीं है। ऐसी नीतियां बनाना आवश्यक है, जो शिक्षा के ऐसे ठोस वैकल्पिक कार्यक्रम प्रस्तुत कर सकें, जिनसे जिनसे बच्चों को काम से प्रभावी तरीके से हटाया जा सके।

शिक्षक में निवेश: भविष्य के लिए निवेश

गुणवत्ता की समस्या से निपटने में शिक्षक ही केंद्रीय कारक है। शिक्षकों से संबंधित कई मुद्दे हैं, जिनके लिए समुचित नीतिगत उपायों की आवश्यकता है। हाल में शिक्षक अर्हता परीक्षाओं से पता चला है कि शिक्षक बनने की आकांक्षा रखने वालों का एक बड़ा वर्ग पर्याप्त शैक्षिक एवं व्यावसायिक डिग्रियों के बावजूद योग्य नहीं है। इससे पता चलता है शिक्षा के व्यवसाय में आने के इच्छुक लोगों की गुणवत्ता कितनी खराब है। शिक्षकों के लिए नियुक्ति से पूर्व शिक्षा के कार्यक्रमों को सुधार कर एक सीमा तक इसका निवारण किया जा सकता है किंतु वास्तविक समाधन पढ़ा रहे शिक्षकों की व्यावसायिक आवश्यकताओं को लगातार पूरा करने में छिपा है।

नौकरी के दौरान सर्व शिक्षा अभियान अथवा राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान

के अंतर्गत कभी-कभार आयोजित होने वाले प्रशिक्षण कार्यक्रमों से इसका समाधान नहीं किया जा सकता। उनके बजाए स्कूली शिक्षकों के व्यावसायिक विकास के लिए समुचित नीति विकसित करने का समय आ गया है। इस नीति में विषय सामग्री के उन्नयन एवं सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) का प्रयोग करने जैसे कई महत्वपूर्ण घटकों को शामिल किया जाना चाहिए।

इसका उद्देश्य सुधार एवं उन्नयन के लिए आजीवन शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराना होना चाहिए। व्यावसायिक विकास कार्यक्रमों में प्रतिभागिता को करियर के अवसरों से प्रभावी तरीके से जोड़ने का कार्य भी नीति को करना चाहिए। इसके लिए शिक्षक सहायता एवं निगरानी पर एकीकृत दृष्टिकोण प्रस्तुत करना होगा। इन उपायों के अतिरिक्त शिक्षकों में स्वामित्व एवं संस्थागत प्रतिबद्धता का भाव लाने के लिए उन्हें विशेष विद्यालयों में नियुक्त करने की नीति होनी चाहिए। शिक्षकों को शिक्षा व्यवस्था में नियुक्त करने और विद्यालय विशेष में नियुक्त नहीं करने की औपनिवेशिक रीति पर प्रश्न खड़े करने का समय आ गया है। इस विषय पर लगातार बहस होती है किंतु शिक्षकों की नियुक्ति तथा स्थानांतरण पर केंद्रीकृत नियंत्रण राजनीतिज्ञों के लिए इतना शक्तिशाली हथियार है कि कोई भी राज्य सरकार इस पर कार्य करने के लिए तैयार नहीं है।

अंत में शिक्षकों की केंद्रीय भूमिका स्वीकार करने के बाद भी पारंपरिक प्रबंधन ढांचे में शिक्षा अधिकारी, स्कूल शिक्षक और यहां तक कि समुदायों के सदस्य भी शिक्षकों को निष्क्रिय व्यक्ति मानते हैं, जिनकी भूमिका व्यापक व्यवस्था के लिए लिए गए निर्णयों को लागू करने तक सीमित होती है। अध्यापन पर ध्यान केंद्रित करते हुए कक्षा में कामकाज के कायांतरण हेतु शिक्षकों का प्रयोग करने के लिए स्कूलों के प्रशासन में बुनियादी परिवर्तन की आवश्यकता होगी। किंतु यह बदलाव कैसे होगा?

यह बड़ी चुनौती है क्योंकि इसके लिए सभी हितधारकों को नए कौशलों एवं दृष्टिकोण की आवश्यकता होगी। अध्यापक शिक्षा के पारंपरिक कार्यक्रमों एवं प्रधानाध्यापकों तथा प्रशासकों के सेवा के दौरान होने वाले प्रशिक्षण कार्यक्रमों को इस चुनौती से निपटने योग्य बनाया जाना चाहिए। ये महत्वपूर्ण प्रश्न हैं, जिनका तुरंत समाधान किए जाने की आवश्यकता है।

शिक्षा में लैंगिक विमर्श को नया रूप देना

कई लोग मानते हैं कि भारत में सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा की समस्या वास्तव में लड़कियों की शिक्षा की समस्या है। यद्यपि सभी राज्यों में स्कूलों में पंजीकरण के संदर्भ में लैंगिक अंतर में पिछले कुछ वर्षों में कमी स्पष्ट दिख रही है किंतु क्या हम लड़कियों की शिक्षा के मामले में पर्याप्त कदम उठा रहे हैं? लड़कियों की शिक्षा में कई कारक बाधा डाल रहे हैं। बाल्यावस्था में शिक्षा के प्रभावी कार्यक्रम नहीं होने का लड़कियों पर दोहरा प्रभाव पड़ता है क्योंकि छोटे भाई-बहनों की देखभाल करने का दायित्व उनके ऊपर ही डाल दिया जाता है। माध्यमिक स्कूल खोलने के मामले में दूरी का नियम लड़कियों के हितों के विरुद्ध कार्य करता है क्योंकि उन्हें स्कूल के लिए गांव से बाहर जाने की अनुमति नहीं दी जाती। इसके अतिरिक्त स्कूलों में मूलभूत बुनियादी ढांचे एवं महिला शिक्षकों का प्रावधान इस स्थिति को बहुत प्रभावित कर सकता है, जैसा प्राथमिक शिक्षा की विभिन्न परियोजनाओं के माध्यम से हाल में किए गए प्रयासों से पता चला है।

वास्तव में स्कूली शिक्षा से वंचित रखना केवल कोई घटना या आंकड़ा मात्र नहीं है, कोई क्षणिक निर्णय नहीं है बल्कि यह एक जटिल प्रक्रिया है, जिसमें बच्चे के निजी जीवन तथा परिवार के कई कारक कार्य करते हैं। जब कोई लड़की स्कूल छोड़ती है तो पहले घटी कई घटनाएं उसका कारण होती हैं

यह समझना महत्वपूर्ण है कि लड़कियों को स्कूल नहीं भेजना, प्राथमिक शिक्षा पूरी किए बगैर स्कूल छुड़वाना अथवा लड़कियों को बीच में ही स्कूल से हटाने का निर्णय करना अथवा उच्च प्राथमिक स्कूल या माध्यमिक स्कूल नहीं भेजना-आंकड़ों की दृष्टि से घटनाएं मात्र हैं और बच्चों को नामांकन से वंचित, स्कूल छोड़ने वाले आदि जैसी श्रेणियों में डाल दिया जाता है। किंतु वास्तव में स्कूली शिक्षा से वंचित रखना केवल कोई घटना या आंकड़ा मात्र नहीं है, कोई क्षणिक निर्णय नहीं है बल्कि यह एक जटिल प्रक्रिया है, जिसमें बच्चे के निजी जीवन तथा परिवार के कई कारक कार्य करते हैं। जब कोई लड़की स्कूल छोड़ती है तो पहले घटी कई घटनाएं उसका कारण होती हैं - कुछ परिवार से जुड़ी होती हैं, कुछ समुदाय तथा संगी-साथियों से जुड़ी होती हैं और कई घटनाओं का संबंध उस स्कूल से होता है, जहां उस लड़की को पढ़ना था।

स्कूल छोड़ने की घटना को समझने के लिए छोटे बच्चे के निजी जीवन में घटने वाली इन घटनाओं की पड़ताल करनी होगी। इसकी पड़ताल माता-पिता और शिक्षकों अथवा स्वयं बच्चों से प्रश्न पूछने भर से नहीं हो सकती। इसके लिए जब बच्चे स्कूल में आते हैं, अगली कक्षा में जाते हैं या स्कूल छोड़ते हैं, तब तक बच्चे पर व्यक्तिगत रूप से और उसके साथियों पर नजर रखने की आवश्यकता होती है। बाहर जाने की जटिल प्रक्रियाओं की व्याख्या करने के लिए तथा उसमें निहित कारणों को समझाने के लिए ऐसा करना महत्वपूर्ण है। इस प्रक्रिया के लिए बनने वाली नीति को उन स्थानीय गतिविधियों से जोड़ना होगा, जिनसे बच्चियां घरों में, समुदायों में और स्कूल में घिरी रहती हैं। लड़कियों को लंबे समय तक सहायता दिए जाने की आवश्यकता है, जिससे उनके जीवन में होने वाली गतिविधियों का कायाकल्प भी हो सके। कई कार्यक्रम आरंभ किए गए हैं, जिनमें 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' सबसे नया कार्यक्रम है। फिर भी लड़कियों की शिक्षा के लिए अधिक व्यापक नीति बनाए जाने की आवश्यकता है, जो स्कूली जीवन के बाद भी जारी रहे और अपना ध्यान लैंगिक समानता पर ही केंद्रित न रखे। नीति में युवाओं को नए सिरे से ढालने की आवश्यकता भी पूरी होनी चाहिए ताकि जैसे-जैसे वे बढ़ें, उनके दृष्टिकोण पर समाज का प्रभाव पड़ता रहे। नीति को कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाने वाले युवकों और युवतियों की शिक्षा पर भी ध्यान देना चाहिए क्योंकि अंत में वे समाजिक मूल्यों एवं ढांचे पर प्रभाव डालेंगे।

आईसीटी एवं स्कूली शिक्षा

स्कूली शिक्षा के अनुभव की गुणवत्ता को नए सिरे से गढ़ने में आईसीटी की अद्भुत क्षमता पर व्यापक बहस और चर्चा होती हे। किंतु नन्हे विद्यार्थियों के स्कूल संबंधी अनुभव

का प्रभावी कायाकल्प करने वाली नीतियों एवं कार्यक्रमों पर अधिक ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। हमें स्कूलों को हार्डवेयर और किसी के स्वामित्व वाला सॉफ्टवेयर उपलब्ध कराने के वर्तमान प्रचलन से आगे बढ़ना होगा और स्कूली जीवन के सभी पक्षों में आईसीटी का समावेश करना होगा। यह स्वीकारा जाना चाहिए कि आईसीटी पहले ही हरेक बच्चे के जीवन का अंग बन चुका है और स्कूलों में इसका प्रयोग बिल्कुल रोक देने से स्कूल विद्यार्थी के सामान्य जीवन से दूर होता जाएगा। यूनेस्को की 'अवर क्रिएटिव डाइवर्सिटी' शीर्षक वाली रिपोर्ट भी बताती है कि प्रौद्योगिकी से दूर रखे जाने पर संबंधित व्यक्ति को भावी ''सूचना समाज'' में हानि होती है। इससे समाज में गहरी खाई बन जाती है, जिसके एक ओर उच्च प्रौद्योगिकी तथा अभिजात्य वर्ग का आधुनिकीकरण होता है और दूसरी ओर अधिकतर जनसंख्या हाशिये पर चली जाती है। उच्च तकनीक के विकास की तेज गति युवाओं के बीच एक अन्य खाई बना देती है। साधन संपन्न लोग दुनिया भर में संपर्क करने योग्य होंगे। साधनहीन लोगों को सूचना समाज के पार्श्व में चले जाना होगा।

अध्ययन की उपलब्धियों पर हो प्राथमिक ध्यान

अध्ययन सभी शैक्षिक प्रक्रियाओं के केंद्र में होता है। आखिरकार माता-पिता अपने बच्चों को इस अपेक्षा के साथ भेजते हैं कि वे लिखने और पढ़ने में दक्ष हो जाएंगे तथा ज्ञान अर्जित करेंगे। इस मोर्चे पर स्कूलों के खराब प्रदर्शन की अनदेखी करना कठिन है। अध्ययन के खराब स्तर से हाशिये पर पड़े समूह के हितों का दोहरा नुकसान होता है। किंतु सार्वजनिक परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने वालों के प्रतिशत अथवा राष्ट्रीय परीक्षा पर आधारित राष्ट्रीय लीग तालिकाओं में स्थान की प्राप्ति को ही स्कूल की गुणवत्ता का पर्याय मानना ठीक नहीं है। यदि बहिष्कार एवं भेदभाव की समस्या को दूर करने वाली निष्पक्षता के साथ गुणवत्ता ही चिंता का विषय है तो स्कूल की गुणवत्ता केवल अंकों और ग्रेड पर आधारित नहीं हो सकती, जिनमें प्रायः असमानताएं छिप जाती हैं। गुणवत्ता में पक्षपात करने वाले कारकों के दो व्यापक समूहों को पहचानना होगा तथा उनसे निपटना होगा। उनके नाम हैं गुणवत्तापूर्ण स्कूलों की व्यवस्था में असमानता एवं स्कूलों में पक्षपातपूर्ण तरीके तथा भेदभाव।

इसके अतिरिक्त अनुभव एवं शोध के तथ्य संकेत करते हैं कि वृहत् स्तर की सुधार प्रक्रियाओं से स्कूल की गुणवत्ता एक सीमा तक ही सुधार सकती है। व्यक्तिगत स्कूलों की ओर तथा स्थानीय स्तर पर कार्रवाई की ओर ध्यान केंद्रित करना होगा। 'शाला सिद्धि' के झंडे तले हाल ही में आरंभ किए गए राष्ट्रीय कार्यक्रम का केंद्र बिंदु 'विद्यालय सुधार योजना' को संस्थागत विकास के लिए स्थानीय क्षमता का निर्माण करने एवं स्कूलों के कामकाज में स्वामित्व तथा जवाबदेही का भाव भरने हेतु हेतु मुख्य रणनीति के रूप में अपनाते हुए इस संदर्भ में व्यापक राष्ट्रीय नीति तैयार करने का मार्ग प्रशस्त करता है। इस संदर्भ में अपनाई गई एक अन्य रणनीति सार्थक परिवर्तन हेतु स्कूल के भीतर से ही नेतृत्व क्षमता विकसित करना है। स्कूल प्रशासन की नीतियों को सतत विकास के लिए आवश्यक नूतन ज्ञान एवं कौशल प्रदान करते हुए भविष्य के स्कूलों के लिए नेतृत्वकर्ता तैयार करने में जुटना होगा।

समाज विज्ञान एवं इतिहास की पाठ्यपुस्तकों में घटनाओं तथा व्यक्तित्वों के चित्रण पर ही मुख्य रूप से ध्यान केंद्रित रहा है। स्कूली पाठ्यक्रम की रूपरेखा एवं सामग्री निर्धारित करने में इस संकीर्ण चिंता के बजाय अधिक व्यापक नीति को स्थान देना होगा। विज्ञान की शिक्षा को प्रभावी रूप से समेटने पर विशेष ध्यान रहना चाहिए क्योंकि विज्ञान एवं इंजीनियरिंग में दक्ष पेशेवरों को प्राप्त किए बगैर कोई भी देश विकास नहीं कर सकता।

पाठ्यक्रम की बहस पर पुनः ध्यान देना

दी गई शिक्षा की गुणपवत्ता निर्धारित करने के लिए पाठ्यक्रम महत्वपूर्ण होता है। पिछले कुछ वर्षों में स्कूली पाठ्यक्रम के पुनर्निर्माण पर काफी ध्यान दिया गया है। किंतु विमर्श संक्षिप्त ही रहा है क्योंकि समाज विज्ञान एवं इतिहास की पाठ्यपुस्तकों में घटनाओं तथा व्यक्तित्वों के चित्रण पर ही मुख्य रूप से ध्यान केंद्रित रहा है। स्कूली पाठ्यक्रम की रूपरेखा एवं सामग्री निर्धारित करने में इस संकीर्ण चिंता के बजाय अधिक व्यापक नीति को स्थान देना होगा। विज्ञान की शिक्षा को प्रभावी रूप से समेटने पर विशेष ध्यान रहना चाहिए क्योंकि विज्ञान एवं इंजीनियरिंग में दक्ष पेशेवरों को प्राप्त किए बगैर कोई भी देश विकास नहीं कर सकता। वास्तव में पूरी दुनिया नया चलन जोर पकड़ रहा है, जिसमें मेधावी तथा रुचि रखने वाले बच्चों को विज्ञान एवं गणित पढ़ने के लिए विशेष रूप से तैयार संस्थाओं, जिन्हें स्टेम (साइंस, टेक्नोलॉजी, इंजीनियरिंग एवं मैथमैटिक्स) स्कूल कहा जाता है, के माध्यम से विशेष सुविधाएं प्रदान की जाती हैं। दुर्भाग्य से विज्ञान की शिक्षा पर कई वर्षों से बहुत कम ध्यान दिया गया है। कई बार यह देखने में आता है कि विज्ञान एवं गणित के शिक्षकों के पास विज्ञान में व्यावसायिक योग्यता ही नहीं है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम में उच्च प्राथमिक कक्षाओं में विशेषज्ञता वाले शिक्षकों की नियुक्ति को अनिवार्य बताया गया है। किंतु विज्ञान के अध्ययन को सभी स्तरों पर आकर्षक बनाने के लिए और विशेष स्कूली प्रावधानों की सहायता से कम आयु में ही बच्चों को विज्ञान की ओर ले जाने के लिए नीतियों के माध्यम से सुधारात्मक उपाय नहीं किए गए तो यह सपना बनकर ही रह जाएगा। देश में सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक मानस को विज्ञान के नए विद्यार्थियों के साथ जोड़ना और उन्हें ज्ञान तथा अनुसंधान के अग्रिम मोर्चों पर लाना महत्वपूर्ण है। आईआईटी एवं आईआईएसईआर जैसे शीर्ष विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थानों तथा वैज्ञानिक अनुसंधान प्रयोगशालाओं से संबद्ध विशेष स्कूलों की स्थापना कर अथवा इन संस्थानों से वरिष्ठ पेशेवरों को संस्थानों के आसपास ही स्कूली स्तर पर विज्ञान की शिक्षा प्रदान करने की सुविधा उपलब्ध कराकर हम संभवतः इसकी शुरुआत कर सकते हैं।

नागरिक समाज एवं निजी क्षेत्र को जोड़ने के लिए नई रूपरेखा

पिछले दो दशकों में स्कूली शिक्षा में सक्रिय रूप से जुड़े कई गैर सरकारी संगठन (एनजीओ) अस्तित्व में आए हैं। सामान्यतया ये संगठन समुदायों के करीब होते हैं और जमीनी वास्तविकताओं के अनुसार कार्य

(जारी ... पृष्ठ 17 पर)

शिक्षा का वित्तीय प्रबंधन

जे.बी.जी. तिलक

शिक्षा के वित्तीय प्रबंधन की कम से कम 10-20 वर्ष की योजना को विकसित करने की आवश्यकता है, जो देश में शिक्षा के विकास की दीर्घकालीन योजना के अनुरूप हो, शिक्षा के वित्तीय प्रबंधन के युक्तियुक्त सिद्धांतों पर आधारित हो। समुचित, सक्षम और निष्पक्ष हो। ऐसी योजना शिक्षा व्यवस्था के हर स्तर पर 10-20 वर्ष की अवधि तक निधि के सतत प्रवाह को सुनिश्चित करे। साथ ही जिसमें पुरस्कार एवं दण्ड देने के पर्याप्त प्रावधान भी निहित हों

नव स्वतंत्र भारत की विकास परियोजना की शुरुआत के 18 वर्ष बाद प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में बनाई गई। इसके ठीक 18 वर्ष बाद दूसरी राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में बनाई गई, जिसमें 1992 में कुछ संशोधन किया गया। पिछले कुछ वर्षों में, विकास के सभी क्षेत्रों में और विशेषकर शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय ढंग से बदलते परिदृश्य को देखते हुए नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति की आवश्यकता लगातार महसूस की गई है। पिछले कुछ दशकों के दौरान नई नीति की अनुपस्थिति में प्रशासकीय आदेशों और गैर समन्वित कदमों से शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तन किए गए। नई सरकार ने सत्तारुढ़ होने के तुरंत बाद इस बात का संकेत दिया कि वह नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनाएगी। इस संपूर्ण संदर्भ में शिक्षा के वित्तीय प्रबंधन के कुछ मुद्दों का ध्यानपूर्वक परीक्षण करने की आवश्यकता है। अंततः यह बात व्यापक रूप से स्वीकार की जाती है कि निधि की न केवल महत्वपूर्ण भूमिका होती है, बल्कि यह सरकार की उस क्षेत्र के प्रति वरीयता को भी स्पष्ट दर्शाता है।

शिक्षा को व्यापक रूप से महत्वपूर्ण लोकहित और सामाजिक दायित्व माना जाता है। समाज इससे विभिन्न रूपों में लाभान्वित होता है। शिक्षा के लाभ विकास के कई क्षेत्रों तक व्यापक रूप से फैले हुए, दीर्घकालीन और पीढ़ी दर पीढ़ी अनवरत प्रवाहित होते रहते हैं। चूंकि इसका विकास से सीधा संबंध है, और इससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण इसी से उत्पन्न अन्य बाह्य लाभ हैं। इसलिए विश्व के अधिकतर विकसित और विकासशील समाजों में शिक्षा के वित्तीय प्रबंधन की सर्वाधिक प्रमुख पद्धति राज्य निधि ही है। ऐतिहासिक साक्ष्य के साथ-साथ समसामयिक अनुभव इस बात की पुष्टि करते हैं। यूनेस्को शिक्षा को लोकहित के स्थान पर सामूहिक हित के रूप में मानने के लिए तर्क देता है। सरकारी निधि मिलने से शिक्षा का संरक्षण होता है, शिक्षा का लोकहित चरित्र विकसित और पोषित होता है, शिक्षा का अपरिहार्य विस्तार सुनिश्चित होता है और इसमें राष्ट्रीय विकास की आवश्यकताओं को पूरा करने की, सभी नागरिकों के सांझे हितों को प्रोत्साहित करने की व्यापक संभावनाएं हैं। यह आवश्यक है कि राज्य शिक्षा के उदार निधिकरण का दृढ़ संकल्प करे। यह बार-बार दोहराया जाता है कि हमें अपनी सकल घरेलू आय (जीडीपी) का कम से कम 6 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करना है। जैसा कि 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में प्रस्तावित है। इस लक्ष्य पर फिर से चर्चा करने की आवश्यकता है। तत्काल भविष्य के लिए इसे न्यूनतम लक्ष्य के रूप में देखा जाए। संसाधनों को सामान्य और विशेष करों (उदाहरण स्वरूप शिक्षा उपकर) व सरकार के गैर-कर राजस्वों (केंद्र एवं राज्य स्तर पर) से बाहर लाने की आवश्यकता है। वर्तमान में जीडीपी का लगभग 4 प्रतिशत या इससे कम शिक्षा को आवंटित किया जाता है। केंद्र सरकार और राज्य सरकारों दोनों को शिक्षा को जीडीपी के 6 प्रतिशत के लक्ष्य तक पहुंचाने के उत्तरदायित्व को गंभीरता से अनुभव करना चाहिए।

केंद्र और राज्य सरकारों के बीच शिक्षा के निधिकरण की जिम्मेदारियों की समुचित, सुस्पष्ट निर्धारित पद्धति होनी चाहिए। हाल के वर्षों में केंद्र सरकार ने शिक्षा का आवंटन बढ़ाया है, जबकि कई राज्य सरकारें शिक्षा का आवंटन पर्याप्त रूप से नहीं बढ़ा सकीं हैं।

लेखक राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन तथा प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) में प्रोफेसर हैं। ईमेलः jtilak@nuepa.org

शिक्षा क्षेत्र के फैलाव (सबके लिए प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा जैसे गुणात्मक लक्ष्य व उच्च शिक्षा में 30 प्रतिशत सकल नामांकन अनुपात), युवाओं में तकनीक का विकास, व्यावसायिक व अन्य कौशलों, कमजोर वर्गों तक शिक्षा की पहुंच में सुधार, विद्यालय शिक्षा में स्वीकार्य स्तर तक अधिगम के स्तर में सुधार और उच्च शिक्षा में उत्कृष्टता एवं उच्च मानकों को प्रोत्साहन के लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए इस क्षेत्र में पर्याप्त निधिकरण की आवश्यकता है। नये स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के जरिए माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के फैलाव से पहले यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि वर्तमान संस्थान पर्याप्त रूप से विकसित हों, उनमें न केवल वित्तीय संसाधन, बल्कि भौतिक और मानव संसाधनों की भी सुदृढ़ आधारशिला हो। शिक्षा में गुणवत्ता के मानकों को प्रोत्साहित करने के लिए अध्यापक प्रशिक्षण, शिक्षण-अधिगम सामग्री, पारंपरिक और आधुनिक तकनीक आधारित उपकरण, पुस्तकालय, प्रयोगशालाएं और विश्वविद्यालय एवं अन्य उच्च शिक्षण संस्थानों में गुणवत्तापूर्ण शोध जैसे समुचित संसाधनों का आवंटन करना होगा। बजट का तर्कसंगत अनुपात उच्च शिक्षा के शोध और योग्यता और निष्पक्षता के आधार पर छात्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करने के लिए आवंटित करने की आवश्यकता है। शिक्षा संस्थानों में निधि का प्रवाह विभिन्न संस्थानों की अलग-अलग आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिए। एक ओर मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो और दूसरी ओर संस्थानों के प्रदर्शन को पुरस्कृत किया जाए।

चूंकि शिक्षा, जिसमें समाज के समृद्ध वर्ग की उच्च शिक्षा भी शामिल है, संपूर्ण समाज के लिए व्यापक सामाजिक लाभ उत्पन्न करती है, विशेषकर उच्च शिक्षा में विद्यार्थियों की फीस, विद्यार्थी ऋण पर निर्भरता के पक्ष में बहस करने का कोई औचित्य नहीं है। यूजीसी और ऑल इंडिया काउंसिल फॉर टेक्निकल एजुकेशन द्वारा गठित पूर्व समितियों ने इन संस्थानों को बजट आवश्यकताओं का 20 प्रतिशत विद्यार्थियों की फीस और अन्य स्रोतों से पूरा करने सुझाव दिया। सेंट्रल एडवाइजरी बोर्ड फॉर एजुकेशन (2005) की एक समिति ने सुझाव दिया कि इस 20 प्रतिशत को ऊपरी सीमा के रूप में भी देखा जा सकता है ताकि उच्च शिक्षा में निष्पक्ष समझने में दुविधा न हो। स्कूली शिक्षा के संबंध में शिक्षा का अधिकार अधिनियम के अंतर्गत सभी को प्रारंभिक शिक्षा पूर्णत: मुफ्त उपलब्ध करवाई जाए, सरकारी विद्यालयों में फीस के लिए कोई जगह न हो। वहीं इसी के साथ शिक्षा का अधिकार अधिनियम को बढ़ाकर माध्यमिक शिक्षा (वरिष्ठ माध्यमिक) तक करने का तर्क हितकारी है।

विश्व के विकसित क्षेत्रों में सशक्त, सभी के लिए उच्च गुणवत्तापूर्ण शिक्षा व्यवस्था विकसित कर ली गई है। स्कूली शिक्षा पूरी तरह से राज्य निधि से, उच्च शिक्षा में अधिकतर सरकारी निधि और शेष समाज की उदार निधि से विकसित कर ली गई। जिसने सरकारी निधि की संपूरक की भूमिका निभाई। इसमें विशेषकर लोकपरोपकारी अनुदान और सामूहिक क्षेत्र के अनुदान व व्यक्तिगत अनुदान का हिस्सा रहा, जिसमें भूतपूर्व छात्र शामिल रहे। इन समाजों में उच्च शिक्षा निधि में भी विद्यार्थियों की फीस का योगदान अपेक्षाकृत कम ही रहा। भारत में इस तरह की रूपरेखा को विकसित करना आवश्यक है जो निधि के अनुपस्थित स्रोतों को प्रोत्साहित करे- राज्येतर और विद्यार्थीतर क्षेत्र, जिसे लोकपरोपकारी क्षेत्र के नाम से जाना जाता है। इसके अलावा, सामूहिक सामाजिक उत्तरदायित्व अधिनियम के कुछ प्रावधानों को शिक्षा क्षेत्र से जोड़ना, व्यक्तिगत और सामूहिक अनुदान को प्रोत्साहित करने वाले नवप्रवर्तनशील कदम और शिक्षा के लिए अनुदान तलाशने की आवश्यकता। यह भी आवश्यक है कि सरकार गैर-लोकपरोपकारी और लाभ आधारित निजी क्षेत्र को शिक्षा के क्षेत्र में प्रोत्साहित न करे, क्योंकि ऐसे संस्थानों में शिक्षा, गुणवत्ता के निर्धारित संकुचित पैमाने के संबंध में भले ही अच्छी हो, लेकिन मूल्य आधारित राष्ट्र निर्माण में सहायक नहीं होगी। इसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में सार्वजनिक-निजी साझेदारी प्रारूप को लागू करने के संबंध में बहुत सचेत रहना चाहिए। इस तरह के प्रारूप संरचना और अन्य क्षेत्रों के संबंध में भले ही कारगर हो लेकिन शिक्षा की विशेष प्रकृति, विशिष्टताओं, गुणों और कार्यों को देखते हुए

विश्व के विकसित क्षेत्रों में सशक्त, सभी के लिए उच्च गुणवत्तापूर्ण शिक्षा व्यवस्था विकसित कर ली गई है। स्कूली शिक्षा पूरी तरह से राज्य निधि से, उच्च शिक्षा में अधिकतर सरकारी निधि और शेष समाज की उदार निधि से विकसित कर ली गई।

जरूरी नहीं कि शिक्षा के संबंध में संतोषजनक कार्य करें। सारांश के रूप में कई विकसित देशों के ऐतिहासिक और समसामयिक अनुभवों को देखते हुए यह ध्यान रखना आवश्यक है कि शिक्षा के वित्तीय प्रबंधन में सभी स्तरों पर राज्य की प्रमुख भूमिका निभानी होगी। जनकल्याणकारी, अंदरूनी स्रोत, भूतपूर्व छात्रों इत्यादि अन्य स्रोतों से संसाधन जुटाने का कुछ अवसर आवश्य है लेकिन गैर-राज्यीय स्रोतों से संसाधन जुटाने और उन पर निर्भरता की सीमा है। ये केवल संपूरक हो सकते हैं और होंगे। इस बात को गहनता से समझने की आवश्यकता है।

अंतत: शिक्षा के वित्तीय प्रबंधन की कम से कम 10-20 वर्ष की योजना को विकसित करने की आवश्यकता है, जो देश में शिक्षा के विकास की दीर्घकालीन योजना के अनुरूप हो, शिक्षा के वित्तीय प्रबंधन के युक्तियुक्त सिद्धांतों पर आधारित हो। समुचित, सक्षम और निष्पक्ष हो। ऐसी योजना शिक्षा व्यवस्था के हर स्तर पर 10-20 वर्ष की अवधि तक निधि के सतत प्रवाह को सुनिश्चित करे। साथ ही जिसमें पुरस्कार एवं दण्ड देने के पर्याप्त प्रावधान भी निहित हों। ❑

निवेदन

योजना हमेशा द्विपक्षीय संचार में विश्वास रखती है। पाठकों से निवेदन है कि वह अपने राय व विचारों से हमें अवगत कराते रहें। साथ ही, पत्रिका में प्रकाशनार्थ आलेख भी हमें भेजे जा सकते हैं। पाठक हमें डाक द्वारा पत्र भेज सकते हैं। साथ ही आप अपनी सामग्री yojanahindi@gmail.com पर ईमेल के द्वारा हमें प्रेषित कर सकते हैं। आप हमारे फेसबुक पेज **योजना हिंदी** पर भी हमसे जुड़ सकते हैं। आपकी राय, सुझाव व सहयोग का इंतजार रहेगा।

–संपादक

शिक्षा में प्रौद्योगिकी: अधीर पीढ़ी की आशाएं एवं आकांक्षाएं

राजाराम एस. शर्मा

प्रौद्योगिकी का जैसे-जैसे विकास हो रहा है, वैसे-वैसे जीवन के सभी क्षेत्रों में इसकी उपयोगिता और अनिवार्यता बढ़ती जा रही है। इसलिए मौजूदा समय में अध्ययन-अध्यापन के क्षेत्र में भी प्रौद्योगिकी एक आवश्यक उपकरण के रूप में सामने आ रही है तो इसकी स्वीकार्यता से किसी को परहेज होना नहीं चाहिए। दुनिया के कई विकसित और विकासशील समाजों में प्रौद्योगिकी को सहायक उपकरण के रूप में अपनाया गया है। भारत में इसके सीमित प्रयोग शुरू हुए हैं तथापि अगर ठीक तरीके से ये अनुप्रयोग शुरू किया जाए तो जल्द ही सार्थक परिणाम सामने आएंगे

नई प्रौद्योगिकियों से संबंधित आकांक्षाओं में एकाएक उभार पर ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। विशेष रूप से जब यह दिखता है कि ये प्रौद्योगिकियां कुछ दशक पुरानी हैं। क्या कारण है कि ये प्रौद्योगिकियां इतनी लोकप्रिय हो रही हैं, उनकी इतनी कामना क्यों की जा रही है और उनके बारे में इतनी चर्चा होने का कारण क्या है?

रंगीन स्क्रीन इनमें से एक बहुत महत्वपूर्ण कारण है। वे दिन बीत गए, जब सूचना का एकमात्र स्रोत मुद्रित लेख होता था, जो प्राय: श्याम-श्वेत (ब्लैक एंड व्हाइट) होता था। यह तर्क दिया जा सकता है कि हमारे पास रंगीन पत्रिकाएं अथवा सिनेमा का पर्दा था, जो रंगीन था लेकिन अब कोई भी व्यक्ति स्वयं के प्रकाशन की कल्पना कर सकता है, जो उसके पसंदीदा रंगों के साथ उसके ही प्रयासों से तैयार होगा। एकाएक सुहाने दिन आ गए हैं और निस्संदेह इनसे अच्छा अनुभव हो रहा है।

दूसरा अत्यंत महत्वपूर्ण कारण है उपकरणों का पर्सनलाइजेशन होना अर्थात् अपनी पसंद के अनुसार उनमें परिवर्तन किया जाना। जब हम मुद्रण के बारे में सोचते थे तो हमें व्यावसायिक प्रिंटिंग प्रेसों का विचार आता था और उन लोगों के बारे में सोचते थे, जो प्रिंट को एक साथ इकट्ठा करने की कला जानते थे। आज हम कोई भी दस्तावेज तैयार कर लेते हैं, जिसमें हमारी पसंद के फॉण्ट, लेआउट और डिजाइन होते हैं और अपने फोन से ही उन्हें बिना तार के यानी वायरलेस प्रणाली से नजदीकी लेजर प्रिंटर पर भेज देते हैं। जब हम फोटोग्राफी के बारे में सोचते थे तो एक बार फिर हमें बेहद परिष्कृत उपकरणों का खयाल आता था, जिसे चुनिंदा लोग ही चला सकते थे, उसके बाद श्रमसाध्य प्रक्रिया होती थी, जिसके उपरांत फिल्म तैयार होती थी और एक या दो फोटो मिलते थे। यह बात सपने में भी कौन सोच सकता था कि पर्वत की चोटी पर 'सेल्फी' लेकर हजारों मित्रों को भेजी जाएगी, जो कुछ ही सेकंड में उसे लाखों अन्य लोगों तक पहुंचा देंगे और चमकदार पन्नों वाली पत्रिकाओं में वह सेल्फी प्रकाशित भी हो जाएगी।

उपकरण का आकार निस्संदेह तीसरा कारण है। उपकरण जितने पतले होते हैं, उतने ही शक्तिशाली हो जाते हैं, जिन्हें पाने की आकांक्षा कई गुना बढ़ जाती है। साथ ले जाने की सुविधा और विभिन्न उद्देश्य हल कर पाने की क्षमता के कारण ही वे अपरिहार्य हो गए हैं।

नई प्रौद्योगिकी के लिए चौथा और मेरे विचार से सबसे महत्वपूर्ण कारण है वास्तविक उपयोग। जिन्हें मैंने इन आधुनिक उपकरणों के साथ देखा है, उनमें से संभवत: किसी ने भी इसे प्रयोग करने का प्रशिक्षण नहीं लिया है। ये उपकरण जितने परिष्कृत होते गए, उन्हें प्रयोग करना उतना ही आसान होता गया। आयु निश्चित रूप से एक कारक है - व्यक्ति जितनी कम आयु का होता है, उपकरण की क्षमता और विविध उपयोग समझना उसके लिए उतना ही आसान होता है। डिजाइन के अध्ययन में विपुल अनुसंधान के कारण गोरिल्ला ग्लास की पतली परत के पीछे केवल एक स्पर्श की देर है और आपके सामने सॉफ्टवेयर एप्लिकेशनों की वह ताकत खुलकर सामने आ जाएगी, जो अत्यंत शंकालु और मीन-मेख निकालने वालों को भी चमत्कार से कम नहीं लगेगी। एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप में फोन

लेखक राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान परिषद् (एनसीईआरटी) में शिक्षा प्रौद्योगिकी के प्रमुख हैं। वह शिक्षा में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (रेडियो, टीवी, ऑडियो, वीडियो, वेबसाईट तथा इंटरएक्टिव मल्टीमीडिया एप्लीकेशन आदि) के समुचित प्रयोगों की संभावनाएं तलाशने में अग्रणी भूमिका निभा रहे हैं। ईमेल: rajaramsharma@gmail.com

करना हो, मानचित्र देखना हो, फोटोग्राफ लेना हो, गीत सुनना हो या वीडियो देखना हो, यहां तक कि दिशासूचक (कंपास), कदम गिनने वाले पीडोमीटर का काम या रक्त शर्करा मापने का काम भी कूटचिह्नों (कोड) की कुछ पंक्तियों में छिपा है, जिसे अनभिज्ञ व्यक्ति भी प्रयोग कर सकता है।

तो इन सब विशेषताओं को देखते हुए क्या हमें उपकरणों को अपने विद्यालयों में प्रवेश करने की अनुमति दे देनी चाहिए। तर्क दिया जा सकता है कि विद्यालयों में हम जो भी करते हैं, उसे इनकी सहायता से बेहतर तरीके से किया जा सकता है। सीखना और भी रोमांचक हो जाएगा, बच्चे पढ़ाई पसंद करने लगेंगे और विद्यार्थियों, शिक्षकों तथा विद्यालय का प्रदर्शन एकदम सुधार जाएगा। हम इन कथनों पर शीघ्र ही विचार करेंगे लेकिन अपनी कामनाएं इस तथ्य पर आधारित करना हमारे लिए समझदारी होगी कि अपने

विद्यालय मानवीय क्षमता के विस्तार में, विद्यार्थियों को जीवन की गुणवत्ता में सुधार के उद्देश्य से प्राप्त की गई मानवीय उपलब्धियों में वृद्धि के लिए प्रेरित करने हेतु निवेश है। अतः प्रौद्योगिकीगत निवेश इन उद्देश्यों को पूरा करने की हमारी क्षमताओं में सुधार ही करेंगे।

विद्यार्थियों, शिक्षकों और विद्यालयों को हम कौन सी उपलब्धि प्राप्त करते देखना चाहते हैं।

विद्यालयी शिक्षा किसी भी छात्र की सीखने की क्षमता में निवेश जैसी होती है। विद्यालय में बिताए वर्षों में कोई भी व्यक्ति उस सूचना को खोजना, एकत्र करना और उसका प्रयोग करना सीखता है, जो हमारे चारों ओर है। व्यक्ति भाषा के अक्षरों एवं गणित का लाभ उठाना, सूचना का उपयोग करना और आंकड़ों, संबंधों एवं उन घटनाओं का अर्थ समझना सीखता है, जो हमारे जीवन एवं जगत पर प्रभाव डालती हैं। व्यक्ति ज्ञान एवं भौतिक जगत के साथ कुछ रचने की अपनी क्षमताओं को विकसित करना एवं उन्हें कलात्मक रूप से व्यक्त करना भी सीखता है। इस दृष्टिकोण से देखें तो विद्यालय मानवीय क्षमता के विस्तार में, विद्यार्थियों को जीवन की गुणवत्ता में सुधार के उद्देश्य से प्राप्त की गई मानवीय उपलब्धियों में वृद्धि के लिए प्रेरित करने हेतु निवेश है। अतः प्रौद्योगिकीगत निवेश इन उद्देश्यों को पूरा करने की हमारी क्षमताओं में सुधार ही करेंगे।

विकासशील जगत के समाजों ने अपनी आधुनिक यात्राएं बौद्धिक अथवा भौतिक संसाधनों से और कई बार तो दोनों से वंचित रहते हुए आरंभ की हैं। ऐतिहासिक कारणों से उन्होंने अपनी शुरुआत कमियों के साथ की और आधुनिक युग के लाभों का अधिकतम लाभ उठाने के लिए उन्हें कमियों को दूर करना ही होगा। शिक्षा प्राप्त करने का हमारे समाज का कितना ही पुराना लक्ष्य हो, अधिकतर जनसंख्या अब भी उससे वंचित है। प्रौद्योगिकी के प्रयोग से लागत घटानी होगी, क्षमता सुधारनी होगी और दायरा तथा किफायत बढ़ानी होगी। बाधाओं की तीखी चढ़ाई चढ़ने योग्य लगनी चाहिए, जिसे चढ़ने के बाद अधिक लाभों की गारंटी भी मिलनी चाहिए। स्कूल छोड़ने की दर में भी अत्यधिक कमी आनी चाहिए ताकि निवेश न्यायसंगत लगे।

विकसित उत्तरी दुनिया के समान बनने की उन्माद भरी दौड़ में गलत राह चुनते हुए हमने अपनी उच्च शिक्षा में और उसमें भी अंग्रेजी में आवश्यकता से अधिक निवेश कर दिया है। यद्यपि कुछ प्रतिभाशाली लोगों को इससे मिले लाभ का बखान कर इसे उचित ठहराया जाता है किंतु कम क्षमता वाले लाखों लोगों को इसके कारण जो हानि सहनी पड़ी, वह असहनीय है। कठिन परिश्रम, नए आविष्कारों एवं रचनात्मकता को तुच्छ समझने वाला नवजातीय दृष्टिकोण, हमारी जड़, हमारी भाषा, हमारी संस्कृति का शर्मनाक निरादर शिक्षा प्राप्त करने में हमारे युवाओं की प्रतिभागिता को शायद ही बढ़ा सके। भाषा के लोप से सांस्कृतिक पहचान का लोप हो जाता है और उससे उस ताने-बाने के लिए खतरा उत्पन्न हो जाता है, जिस पर हमारा समाज खड़ा है। एक ओर आज की प्रौद्योगिकियां प्रत्येक व्यक्ति के लिए सहभागिता करना आसान बना रही हैं, दूसरी ओर ऊपर बताई गई आज की बाधाएं इसे कठिन भी बना रही हैं। प्रौद्योगिकीगत निवेश का फल प्राप्त हो, इसलिए संभवतः सुधारात्मक रवैये वाले शैक्षिक निवेश आवश्यक हैं।

अतः भारतीय शिक्षा की समस्याओं को गहराई से समझने की आवश्यकता है, जिनमें से कुछ प्रौद्योगिकीगत घटकों के आकार एवं उनकी दिशा को समझने से जुड़ी हैं। प्रौद्योगिकी का कैनवास रंगने के लिए पाश्चात्य जगत के सूक्ष्म उदाहरणों और उनकी सफलताओं को समझने का समय हमारे पास संभवतः नहीं हो। जिस पाश्चात्य जगत में निवेश करना कठिन नहीं है, वहां भी प्रौद्योगिकियों के दुरुपयोग ने दिखाया है कि प्रौद्योगिकी वाले उपकरण स्वयं ही शैक्षिक उद्देश्य प्राप्त नहीं कर पाते। यह कहा जाना चाहिए कि प्रौद्योगिकी ने क्या प्राप्त किया, इसके शानदार उदाहरण हैं। किंतु शोधकर्ताओं का कुल मिलाकर दुख भरा निष्कर्ष यही है कि प्रौद्योगिकी अपना कार्य करने में विफल रही हैं।

इसके कारण हमें अति उत्साह में निवेश करने, विशेष रूप से सभी बच्चों के लिए टैबलेट खरीद लें जैसी बात करने से बचना चाहिए किंतु शिक्षा में अधिक तर्कसंगत रूप से डिजाइन की गई, अधिक समझदारी से बढ़ाई गई एप्लिकेशनों में विश्वास करना संभवतः गलत नहीं हो। वास्तव में भारतीय

विकसित उत्तरी दुनिया के समान बनने की उन्माद भरी दौड़ में गलत राह चुनते हुए हमने अपनी उच्च शिक्षा में और उसमें भी अंग्रेजी में आवश्यकता से अधिक निवेश कर दिया है। यद्यपि कुछ प्रतिभाशाली लोगों को इससे मिले लाभ का बखान कर इसे उचित ठहराया जाता है किंतु कम क्षमता वाले लाखों लोगों को इसके कारण जो हानि सहनी पड़ी, वह असहनीय है।

शैक्षिक परिदृश्य की कुछ विशिष्ट समस्याएं हो सकती हैं, जिन्हें केवल प्रौद्योगिकी से ही दूर किया जा सकता है। प्रौद्योगिकी से जुड़ी कुछ संभावनाएं अत्यंत लाभप्रद प्रतीत होती हैं, जिनसे अत्यंत कटु आलोचक भी इनकार नहीं कर पाते। ऐसी कुछ संभावनाओं एवं प्रयोगों को देखते हैं।

भारत ने विश्व में सबसे बड़ी विद्यालय प्रणाली पर निवेश किया है और उसका विकास किया है। देश में लगभग हर उस स्थान के पास विद्यालय है, जहां लोग रहते हैं। इस व्यापक प्रसार के कारण प्रणाली के सामने समुचित संसाधन जैसे पुस्तकालय उपलब्ध कराने की चुनौती भी उत्पन्न हो गई है।

डिजिटल एवं डिजिटलीकृत संसाधन प्रौद्योगिकी के सबसे लोकप्रिय प्रयोगों में से एक हैं। वेब पोर्टल सामान्य हो चुके हैं और विकिपीडिया जैसे विश्वकोष

(इनसाइक्लोपीडिया) लोकप्रिय हो चुके हैं, लेकिन भारतीय पोर्टल और विश्वकोष भी विकसित हो रहे हैं। वे हमारी संस्कृति पर अधिक केंद्रित हैं, हमारे संदर्भों की बात करते हैं और उनमें स्थानीयता का अधिक पुट है। नेशनल रिपॉजिटरी ऑफ ओपन एजुकेशन रिसोर्सेस (http://nroer.gov.in) विद्यालयों के स्तर पर लोकप्रिय है। विभिन्न भारतीय भाषाओं का प्रतिनिधित्व करते हुए एवं शिक्षकों तथा अन्य लोगों को संसाधन तैयार करने में सहभागिता का अवसर देते हुए यह पहल सभी के लिए सहभागिता के मंच के रूप में उभर रही है। उच्च शिक्षा में भी आईआईटी, खड़गपुर द्वारा आरंभ की गई परियोजना नेशनल डिजिटल लाइब्रेरी और शैक्षिक रिपॉजिटरी ई-ज्ञानकोष इसी प्रकार की पहल हैं।

पाठ्यक्रम को ऑनलाइन उपलब्ध कराना प्रौद्योगिकी का दूसरा लोकप्रिय उपयोग है। सामान्य रूप से एमओओसी (MOOC) के नाम से प्रचलित मैसिव ओपन ऑनलाइन कोर्स की विशालता एवं प्रसार रोचक है। नेशनल मिशन फॉर एजुकेशन थ्रू आईसीटी (एनएमईआईसीटी) के अंतर्गत एनपीटीईएल पाठ्यक्रम (https://onlinecourses.nptel.ac.in/) इसी प्रकार की पहल हैं। मूल रूप से अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी को लक्ष्य बनाने वाले मंच पर पहले ही सैकड़ों पाठ्यक्रम आ चुके हैं और यह अत्यंत लोकप्रिय भी है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) ने भी इसी प्रकार का कार्यक्रम ईपीजी पाठशाला चलाया है, जो विभिन्न विषयों में स्नातकोत्तर स्तर के पाठ्यक्रम विकसित करने पर केंद्रित है।

एमओओसी (MOOC) में शिक्षा के सभी स्तरों पर शिक्षकों की कमी से निपटने की क्षमता है। उनमें विद्यालयी स्तर पर गुणवत्ता की गंभीर समस्या से निपटने की क्षमता भी है। विद्यालयी स्तर पर शिक्षकों को पढ़ाते हुए ही शिक्षक प्रशिक्षण प्राप्त करना होता है, जो संख्या को देखते हुए सोपानी पद्धति से दिया जाता है। कोई विशेषज्ञ कुछ संसाधन संपन्न व्यक्तियों को प्रशिक्षित करता है, जो अन्य संसाधन संपन्न व्यक्तियों को प्रशिक्षण देते हैं, जो बाद में शिक्षकों को प्रशिक्षित करते हैं। प्रत्येक स्तर पर एक समान संसाधन उपलब्ध कराने में व्यवस्थागत अक्षमता के कारण गुणवत्ता कम होती है। इसके अतिरिक्त शिक्षकों की भारी संख्या होने के कारण सभी को सभी विषयों पर पर्याप्त प्रशिक्षण देना संभव नहीं हो सकता। ऑनलाइन अथवा डिजिटल पाठ्यक्रम होने पर ये बाधाएं दूर हो सकती हैं।

भारत ने विश्व में सबसे बड़ी विद्यालय प्रणाली पर निवेश किया है और उसका विकास किया है। देश में लगभग हर उस स्थान के पास विद्यालय है, जहां लोग रहते हैं। इस व्यापक प्रसार के कारण प्रणाली के सामने समुचित संसाधन जैसे पुस्तकालय उपलब्ध कराने की चुनौती भी उत्पन्न हो गई है।

ओपन एजुकेशन रिसोर्सेस के संबंध जागरूकता बढ़ने के साथ ही उनका प्रयोग करने की राह में कानूनी बाधाएं भी कम हो जाती हैं। ओपन का जो विचार है, उसका अर्थ है कि संसाधनों को लाइसेंस इस प्रकार दिया जाए कि उन्हें प्राप्त करना, उनका पुनर्वितरण करना और उनका प्रयोग करना पूरी तरह मुफ्त है अर्थात् उनका मुफ्त प्रयोग किया जा सकता है। भारतीय भाषाओं में अनुवाद के संदर्भ में यह विशेष रूप से प्रासंगिक है, जिसे प्राय: खर्च के कारण अथवा स्थानीय भाषाओं के विशेषज्ञ नहीं होने के कारण छोड़ दिया जाता है। वेब पर भारतीय भाषाओं की सामग्री एवं अनुवाद में रुचि बढ़ती जा रही है। इलेक्ट्रॉनिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी विभाग के डिजिटल कार्यक्रमों से प्रोत्साहित इंडियन लैंग्वेज इनीशिएटिव्स (http://www.tdil-dc.in/) के कारण सॉफ्टवेयर एप्लिकेशन एवं टूल्स की लंबी सूची तैयार हुई है, जो भारतीय भाषाओं में सामग्री तैयार करने एवं उसका प्रबंधन करने में सहायता करते हैं।

ये कार्यक्रम ऐसा वातावरण तैयार करने में पर्याप्त सहयोग करते हैं, जो डिजिटल खाई को पाट सकता है एवं डिजिटल संसाधनों के उपयोग में बाधाओं के विषयों से निपट सकता है। इन कार्यक्रमों का प्रयोग समाज के प्रत्येक वर्ग में उन समस्याओं के प्रति रुचि जगाने एवं बढ़ाने में होना चाहिए, जो समस्याएं ज्ञान, सेवाओं एवं राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि में जन सामान्य की प्रतिभागिता की राह में बाधा उत्पन्न करती हैं। ❑

(पृष्ठ 12 से जारी ...)

करते हैं। वास्तव में वे हाशिये पर डाले गए समुदायों की शिक्षा के पक्ष में सशक्त स्वर बनकर उभरे हैं। इसी दौरान कॉर्पोरेट क्षेत्र ने भी स्कूली शिक्षा को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण रुचि दिखाना आरंभ किया है। यह उस रूढ़िवादी रवैये के विपरीत है, जिसमें गरीबों की आवश्यकताएं पूरी करने वाले सरकारी स्कूलों की पूरी जिम्मेदारी केवल सरकार पर ही रही है। सामान्यतया तीन हितधारकों - सरकार, एनजीओ एवं निजी निकायों - को तीन अलग-अलग घटक माना जाता है। अब एक साझा धरातल तलाशने की व्यापक नीति बनाने का एवं ऐसी रूपरेखा प्रस्तुत करने का समय आ गया है, जिसमें सरकार, एनजीओ तथा निजी स्कूलों को पारस्परिक सहयोग के उद्देश्य से शिक्षा का साझा सार्वजनिक स्थान प्राप्त करें, वे अलग-अलग स्थान न घेरें, जिससे अलगाव उत्पन्न होता है। स्वाभाविक रूप से सरकार को इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी क्योंकि हो सकता है कि बाज़ार की शक्तियां विविधता एवं समानता के प्रति संवेदनशील नहीं हों और न ही उन्हें लंबे समय तक टिकने की चिंता हो।

निष्कर्ष

भारत जैसे विविधता भरे देश के लिए नई नीति बनाना वास्तव में दुरुह समस्या है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम में स्पष्ट रूप से उल्लिखित 'अधिकार के परिप्रेक्ष्य' ने इस कठिन प्रयास में आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त किया है। समान अधिकारों के सिद्धांतों को क्रियान्वित करने के लिए साझे अनुभवों की और असमानताओं के दायरे को कम करने की आवश्यकता है। ऐसी संस्थाओं के बारे में विचार करना आवश्यक है, जो इन लक्ष्यों में सहायता करती हैं अथवा बाधा उत्पन्न करती हैं। इतनी अधिक असमानताओं पर नियंत्रण करने में लगातार अक्षम रहने से समाज में इतने अधिक अनुभव और हित उत्पन्न हो सकते हैं, जो समझ से बाहर होंगे। इतनी अधिक असमानता उसी समाज में हो सकती है, जिसके सदस्य बहुत कम साझा करने के लिए तैयार होते हैं। वे एक दूसरे के दावों और कष्टों को समझ नहीं सकते और उन्हें डर रहता है कि जो लोग बहुत अभिन्न हैं, उनके दावों को स्वीकार करने पर उनका नुकसान होगा। ❑

IAS **IGNITED MINDS** PCS

मुख्य मार्गदर्शक अमित कुमार सिंह

पूरे भारत में हिन्दी माध्यम में सर्वाधिक चयन देने वाला संस्थान। इस वर्ष भी कुल 50+ चयन

ध्यान दें ये परीक्षा परिणाम साक्षात्कार एवं मॉक इंटरव्यू के नाम पर जुगाड़ से नहीं जुटाये गये हैं। ये सभी हमारे कक्षा कार्यक्रम में शामिल रहे हैं।

Name	Rank
NISHANT JAIN	13
ANIL DHAMELIA	23
MIHIR PATEL	27
RAJENDER K PATEL	70
KAVAN NARESH K.	198
PRADIP SINGH	310
RAJENDER PENSIYA	345
DHARMVIR SINH	357
RAJTANIL	367
SHASHIKANT SHARMA	384
AMIT KR. SINGH	396
SHREYANSH MOHAN	465
ISHANI	502
ALPESH	537
GHANSHYAM MEENA	539
NIVEDITA GUPTA	591
HITESH KUMAR	634
MEHULKUMAR	704
DEEPAK	717
NIRVKUMAR	751
BHOYAR HARSHAL	791
ANIRUDHA	804
SANTOSH KUMAR	850
KARTIK	871
PULKESH	1050
UTSAV	1075
KIRNEDU	1106
AMIT VASAVA	1114
AVINSH KUMAR	1132

ETHICS

(G.S. PAPER-IV)

ETHICS में हमारे संस्थान से 70 से अधिक विद्यार्थियों को 100+ अंक

ANIL DHAMELIA
RANK-23
अंक 109

Thanks a very much to Amit Kumar Singh Sir (Ignited Minds) who has personally guided me for ethics and interview preparation. I never forget his contribution in my success.
Anil Dhamelia

दर्शनशास्त्र

एक बार फिर हिन्दी माध्यम का सर्वश्रेष्ठ विषय

लगातार 7वें वर्ष दर्शनशास्त्र में (गैर अंग्रेजी माध्यम) सर्वोच्च रैंक एवं सर्वोच्च अंक हमारे संस्थान सें

मैं अपनी सफलता का पूरा श्रेय अमित कुमार सिंह सर (Ignited Minds) को दूँगा। विद्यार्थी के तौर पर मेरी यात्रा दर्शनशास्त्र और एथिक्स में सर के प्रशिक्षण से प्रारम्भ हुई और इसका सुखद अन्त IAS बनने के साथ हुआ। आभार अमित सर।
मिहिर पटेल
रैंक 27
CSE-2014

सबसे युवा टॉपर
आयु – 24 वर्ष

अंक 311

MIHIR PATEL
RANK-27

हमारे कक्षा कार्यक्रम

दिल्ली केन्द्र

दर्शनशास्त्र | ETHICS (G.S. Paper-IV)
3 Jan 3:15 pm
नया बैच प्रारम्भ

निबंध | Polity & I.R. (Module)
अति शीघ्र बैच प्रारम्भ

इलाहाबाद केन्द्र

दर्शनशास्त्र
सा० अध्ययन (Pre-cum-Mains)
ETHICS (G.S. Paper-IV)
रक्षा अध्ययन
समाजकार्य
निबंध
भूगोल
Polity & I.R.
इतिहास

सफलता की कहानी जारी...... अब आपकी बारी......

A-2, 1st Floor, Comm. Comp., Near Mukherjee Nagar, Delhi-09
Ph. 8744082373, 9643760414

H-1, First Floor, Madho Kunj, Katra, Allahabad
Ph. 9389376518, 9793022444

Ph.: 011-27654704, 0532-2642251

Website: www.ignitedmindsias.com

YH-251/2016

भारतीय शिक्षाः अतीत, वर्तमान और भविष्य

पवन कुमार शर्मा

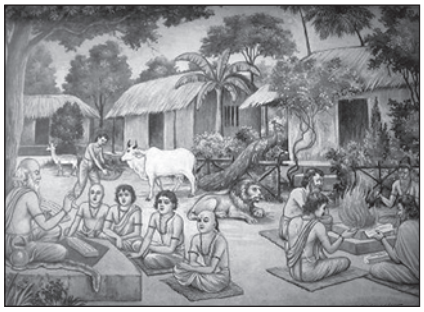

भारतीय शिक्षा के अतीत पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो यह समझ में आता है कि शिक्षा का दायित्व प्रायः समाज के द्वारा ही निर्वहन किया जाता था, कुछेक विषयों को छोड़कर वैदिक काल से लेकर 18वीं सदी तक शिक्षा व्यवस्था का संचालन समाज के हाथों ही होता रहा है, किंतु कालांतर में यह व्यवस्था परिवर्तित हुई, उसके अनेक कारण हैं उसकी मीमांसा इस आलेख में की जा रही है

वेदों से लेकर श्रुति-स्मृति तथा पुराण काल तक का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा जैसा गूढ़ दायित्व समाज के हाथों ही नियंत्रित और संचालित होता था। शिक्षा पूर्ण रूप से स्वायत्त थी। शिक्षा के कार्यों में या तो राज्य का हस्तक्षेप बिल्कुल नहीं था या फिर नाम मात्र का था और वह भी आर्थिक रूप से मदद करने तक। प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा और अनुसंधान कार्यों तक शिक्षा के समस्त दायित्वों की पूर्ति समाज के द्वारा ही की जाती थी। राज परिवार के बच्चे भी इसी शिक्षा व्यवस्था का भाग होते थे। शिक्षा के केंद्र नगरों से प्रारंभ होकर अरण्यों तक जाते थे। प्राथमिक शिक्षा के केंद्रों की उपस्थिति नगरों में रहती थी और बाद में ये केंद्र उच्च शिक्षा के दृष्टिकोण से अरण्यों में स्थानांतरित हो जाते थे। शिक्षा केंद्रों को गुरूकुल कहा जाता था। इन गुरूकुलों में बालक और बालिकाओं दोनों को ही समान भाव से शिक्षा प्रदान की जाती थी। सह शिक्षा एवं अलग-अलग शिक्षा दिए जाने के प्रमाण भी इतिहास में उपलब्ध हैं। अध्यापन के दृष्टिकोण से लिंग भेद नही था, स्त्री और पुरुष दोनों ही प्रकार के आचार्यों के प्रमाण देखे जा सकते है। स्त्री और पुरूष गुरूकुलों की व्यवस्था प्रचलन में थी। ये विद्यार्थी अपने गुरूओं के नाम से अपने चरणों का संचालन करते थे। शिक्षा व्यवस्था का स्वरूप बहुत ही व्यवस्थित था। पाठ्यक्रम को इहलौकिक और पारलौकिक दृष्टिकोण से विभाजित किया गया था। जिसको जैसा अध्ययन पूर्ण करना हो वैसी व्यवस्था उपलब्ध थी।

इस परंपरा में शिक्षा का प्रारंभ उपनयन संस्कार से होता था। विद्यार्थी का पिता या विद्यार्थी स्वयं शिक्षा के प्रति जिज्ञासु भाव लेकर गुरू के सम्मुख उपस्थित होता था और उस गुरू का शिष्य बनने की जिज्ञासा प्रकट करता था। विद्यार्थी की बुद्धिलब्धता से प्रसन्न या संतुष्ट होने के उपरांत ही विद्यार्थी का उपनयन संस्कार किया जाता था। गुरू व्यक्तिगत, सामूहिक या पिता के रूप में भी विद्यार्थी को ज्ञान प्रदान करते थे। शिक्षार्थी शिक्षा प्राप्ति के काल में गुरूकुल में ही निवास करता था। इस प्रक्रिया से उसके व्यक्तित्व में अलग प्रकार का निखार या आत्म विश्वास जागृत होता था जो जीवन पर्यंत उसके लिए सहयोगी होता था। बालकों के साथ-साथ बालिकाओं के भी उपनयन संस्कार किए जाते थे। व्यवहार में या आज के समय के अनुरूप समझें तो उपनयन संस्कार गुरूकुल का पंजीकरण जैसा था। शिक्षा सभी के लिए समान भाव से उपलब्ध थी।

जीवन के सभी क्षेत्रों से संबंधित पाठ्यक्रमों का निर्माण कर लिया गया था और शिक्षार्थी जो भी विषय चयन कर के पढ़ना चाहता था उसको पढ़ाने की व्यवस्था गुरूकुलों के द्वारा की जाती थी। लगभग 64 विद्याएं (संकायो) प्रचलन में थीं, किंतु निषेधकारी शिक्षाओं का पाठ्यक्रम उपलब्ध होने के बाद भी उनसे संबंधित कार्यक्रम में प्रवेश लेने की जिज्ञासा विद्यार्थियों के द्वारा प्रकट नहीं की जाती थी। भारतीय परंपरा में पाठ्यक्रमों का निर्माण इस प्रकार से किया गया था कि उसमें से विद्यार्थी अल्पकालिक कार्यक्रम से लेकर दीर्घकालिक कार्यक्रमों तक का चयन अपनी सुविधानुसार कर सकता था। अंतर्विषयक कार्यक्रम भी प्रचलन में थे। आज ही की भांति क्रेडिट स्थानांतरण के भी प्रमाण उपलब्ध हैं। एक गुरू से लेकर अनेक गुरूओं तक के गुरूकुल

लेखक अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) के समाज विज्ञान संकाय में के अधिष्ठाता हैं। समाजशात्रीय सेमिनारों में इनकी सक्रिय उपस्थिति रही है। ईमेलः pawan_sharma1967@yahoo.co.in

प्रचलन में थे। शिक्षकों के भी अनेक प्रकार व्यवहार में देखे जाते थे। समाजजीवी एवं श्रमजीवी गुरू भी विद्यमान थे किंतु व्यवहार में श्रमजीवी गुरूओं का बहुत अधिक सम्मान नहीं था। रामायणकाल में सुधन्वा और महाभारत काल में द्रोणाचार्य श्रमजीवी गुरूओं की ही श्रेणी में आते थे और उपाध्याय कहलाते थे। ऐसे गुरू बहुत कम मात्रा में थे किंतु थे और हेय समझे जाते थे। दूरस्थ शिक्षा के रूप में भी शिक्षा प्रदान की जाती थी किंतु उसका महत्व नहीं था। दूरस्थ माध्यम से ही प्राप्त शिक्षा के भी कई उदाहरण हैं। कौटिल्य ने इस प्रकार की शिक्षा की तुलना व्यभिचार से गर्भधारण करने के समान की है। सही अर्थों में उपनिषदीय शिक्षा यानि गुरू के सम्मुख उपस्थित होकर ज्ञान प्राप्ति को ही श्रेष्ठ माना जाता था।

गुरूकुल का संस्थागत स्वरूप

सभी गुरूकुलों की प्राय: विद्वत परिषद् होती थीं। परिषद् के सभी सदस्य अपने-अपने विषयों के निष्णात आचार्य होते थे। शिक्षा का प्रारंभ अक्षर ज्ञान से होता था और व्याकरण को शिक्षा का मूल आधार माना जाता था, तदोपरांत वेद का अध्ययन किया जाता था। कालांतर में यह कर्मकांड के अभ्युदय के कारण परिवर्तित हो गया। अधिकांश व्यक्ति सीधे स्वयं ही वेद पढ़ने लगे, किंतु पाणिनी ने इस व्यवस्था को परिवर्तित किया और अध्ययन के आधार के रूप में पुन:व्याकरण के महत्व को प्रतिष्ठापित किया। पाणिनी इसी कारण व्याकरणिक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। जीवन से संबंधित सभी विषयों के लिए अलग-अलग अध्ययन शालाओं का भी उल्लेख मिलता है। यथा- वास्तु से संबंधित विद्यार्थियों के लिए अलग अध्ययन शालाएं थी। शल्य चिकित्सा से संबंधित अध्ययन शाला को उसके प्रवर्तक सुश्रुत के नाम से जाना जाता था, मेडिसिन से संबंधित अध्ययन शाला को चरक के नाम से जाना जाता था। जनरल फिजीशियन के रूप में अश्विनी कुमारों और औषधि विज्ञान दृष्टिकोण से धन्वंतरि के नाम से अध्ययन शालाएं प्रचलन में थीं। औद्योगिक एंव व्यावसायिक पाठ्यक्रम के आधार पर भी कार्यक्रमों का संचालन होता था। सामान्यत: इस प्रकार की शिक्षा गुरूओं की अपेक्षा सामाजिक आधार पर पैतृक पेशे के रूप में बालक को परिवार के माध्यम से ही प्राप्त हो ऐसी व्यवस्था वेद काल के अंतिम चरणों में स्थापित होने लगी थी। जातियों के रूढ़ होने का सिद्धांत यहीं से अस्तित्व में आया। शिक्षा सामाजिक सद्भाव का भी आधार था। ब्रहम विद्या और यज्ञ विद्या भी व्यवहार में प्रचलित थीं। प्राय: यह देखने में आया कि यज्ञ विद्या के निष्णात ब्राह्मण माने जाते थे और ब्रह्म विद्या पर क्षत्रियों का अधिकार था।

कालांतरों में इस व्यवस्था में परिर्वतन हुआ और सभी विद्याओं पर ब्राह्मणों का वर्चस्व स्थापित हुआ। राजाओं की भी विद्वत परिषदें हुआ करती थीं। विद्वानों की विद्वत्ता का मूल्यांकन सामान्यत: इन्हीं विद्वत परिषदों में होता था। अनेक ब्राह्मण विद्वान भी इन्हीं परिषदों में आकर अपने-अपने पांडित्य को प्रदर्शित कर के समाज में श्रेष्ठ विद्वान के रूप में प्रतिष्ठापित होते थे। विश्वपति, जनक आदि की विद्वत परिषदें जगविख्यात थीं। छोटे गुरूकुलों में आचार्यों की और बड़े गुरूकुलों के अधिपति के रूप में कुलपति की प्रतिष्ठा थी। गौ गुरूकुल की भारी संपत्ति मानी जाती थीं। आचार्य और कुलपति को अपने सामर्थ्य के अनुरूप अपने गुरूकुलों की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होती थी। कुलपति के विषय में यह बात प्रचलन मे थीं कि कुलपति वही हो सकता था जो कि दस हजार विद्यार्थियों और एक हजार शिक्षकों की शारीरिक एवं मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। शिक्षा का व्यावसायीकरण व्यवहार में नहीं था।

भारतीय परंपरा में पाठ्यक्रमों का निर्माण इस प्रकार से किया गया था कि उसमें से विद्यार्थी अल्पकालिक कार्यक्रम से लेकर दीर्घकालिक कार्यक्रमों तक का चयन अपनी सुविधानुसार कर सकता था। अंतर्विषयक कार्यक्रम भी प्रचलन में थे। आज ही की भांति क्रेडिट स्थानांतरण के भी प्रमाण उपलब्ध हैं। एक गुरू से लेकर अनेक गुरूओं तक के गुरूकुल प्रचलन में थे। शिक्षकों के भी अनेक प्रकार व्यवहार में देखे जाते थे। समाजजीवी एवं श्रमजीवी गुरू भी विद्यमान थे।

यद्यपि पाणिनी ऐसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने शिक्षा को गुरूकुलों के परंपरागत ढांचे से बाहर लाकर अलग प्रकार की व्यवस्था का संचालन किया था। किंतु व्याकरण को पुन: प्रतिष्ठित करने के कारण शिक्षा जगत में उनका विशेष सम्मान था। इसी सम्मान के कारण वे अनेक गुरूकुलों की विद्वत परिषदों के सदस्य थे। पाणिनी के बाद यह व्यवस्था पतंजलि और कात्यायन ने आगे बढ़ाई। इस प्रकार से यह ध्यान में आता है कि प्राचीन काल की शिक्षा व्यवस्था का अभ्युदय, विकास विज्ञान और नियमन समाज की वास्तविक आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखकर समाज स्वयं करता था। राज्य उसमें सहयोगी मात्र होता था। शिक्षा के आधार के रूप में भौतिक और पराभौतिक दोनों ही प्रकार की शिक्षा मानी जाती थीं। परीक्षा को आधुनिक परीक्षा प्रणाली की भांति संरचनाबद्ध नहीं किया गया था। व्यक्ति की विद्वत्ता का मूल्यांकन विद्वत परिषदों के द्वारा विभिन्न मापदंडों के आधार पर किया जाता था। तब विद्यार्थी स्नातक या आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित होता था। इस प्रकार की व्यवस्था का प्रमाण अंग्रेजों के आने के पहले तक था। 18वीं सदी तक सभी वर्ण/वर्ग के व्यक्तियों को शिक्षा दिए जाने के प्रमाण मिलते हैं। बुद्धकाल के बाद शिक्षा के संरचनाबद्ध एवं संहिताबद्ध किए जाने के भी प्रमाण हैं किंतु शिक्षा का मूल आधार वही बना रहा जो कि अति प्राचीन काल से व्यवहार में था।

प्राचीन शिक्षा का संबंध रोजगार से कम बल्कि जनकल्याण से अधिक माना जाता था। यद्यपि भर्तृहरि सदृश विद्वान विद्या को यशकरी, अर्थकरी और लाभकरी के रूप में निरूपित करने लगे थे। किंतु उपनिषद और पुराणों ने विद्या को मुक्ति का माध्यम माना। यहां पर मुक्ति से अभिप्राय सभी प्रकार की वासनाओं से मुक्ति है। ये वासना ही मनुष्य को दुख: और सुख के मध्य जकड़े रखती है। इसलिए विद्या इन वासनाओं से मुक्ति प्रदान करके मनुष्य को अंतिम सुख की अनुभूति प्रदान करने में सहायक हो यह इसका मुख्य हेतु था। किंतु कालांतर में सुख की परिभाषा में भौतिक सुख सम्मिलित कर लिया गया और शिक्षा की परिभाषा बदल गई। बाद में इन्हीं सब बातों ने शिक्षा को द्वंद के रूप में स्थापित किया और इसे बंधनकारी बना दिया।

आधुनिक शिक्षा का अभ्युदय और विकास

आधुनिक शिक्षा के विकास में अंग्रेजों का योगदान है ऐसा माना जाता है। भारत का संबंध

यूरोप और शेष विश्व के साथ प्राचीन काल से ही रहा है। किंतु उसने कभी भी बलपूर्वक किसी भी परंपरा को अपने प्रभाव में लेने का प्रयास नहीं किया। तभी तो ''एक सद् विप्रा बहुधा वदंति'' सदृश विचारों का यहां पर प्रगटीकरण होता रहा और इसी के आधार पर श्रेष्ठ लोकतांत्रिक विचार ''वादे-वादे जायते तत्वबोध'' प्रचलन में रहा जिसने सभी प्राणियों और उनके विचारों का सम्मान करने का भाव भारतीयों के मन में जाग्रत किया; किंतु अन्य परंपराओं में यह भाव दृष्टिगोचर नहीं होता, क्योंकि उनकी परंपरा इतनी उदार नहीं रही जितनी कि भारत की। भारत और यूरोप के प्राचीन संबंधों के आधार पर यूरोप भारत की समृद्धि की ओर आकृष्ट होकर व्यापारिक लाभ की दृष्टि से इसके साथ व्यापारिक संबंध बनाने के लिए भारत आ तो पहुंचा और भारत आकर इसने व्यापारिक संबंध भी 17 सदीं के प्रारंभ में स्थापित कर लिए; किंतु भारत के औदार्य को इंग्लैंड आत्मसात न कर सका। स्वयं को स्थापित करने के लिए इंग्लैंड ने रणनीतिक रूप से भारत में व्यापारिक गतिविधियों को बढ़ाकर और बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि से यहां के सामाजिक ताने-बाने को समझने की पहल की। जब तक भारत में केंद्रीय सत्ता मजबूत रही तब तक ये विनम्र रहे, जैसे ही 1707 में औरंगजेब की मृत्यु के बाद यह तंत्र कमजोर होने लगा वैसे ही इन्होंने अपने मंसूबों को पूरा करना शुरू कर दिया।

1757 में प्लासी के युद्ध में नवाब सिराजुद्दौला की सेना के समर्पण के बाद इन्होंने भारत को अपने एक उपनिवेश के रूप में स्थापित करने की रणनीति को अमली ज़ामा पहनाना प्रारंभ कर दिया। इसके लिए इन्होंने शिक्षा-संस्कृति को सबसे सशक्त आधार माना। वारेन हेस्टिंग के 1772 में बंगाल का गवर्नर और बाद में 1774 में भारत का गवर्नर जनरल बनने के बाद अंग्रेजी शिक्षा *भारत में कैसे लागू हो?* इस विषय पर, अंग्रेजों ने विचार करना प्रारंभ किया। भारत में शिक्षा समाज का दायित्व रहा है, ये विषय इनके ध्यान में आ गया था। इसलिए भारत की शिक्षा समाज के ही सहयोग से परिवर्तित हो सकती है इसके लिए इन्होंने समाज को ही प्रोत्साहित करने की नीति का अनुसरण किया। भारत का आर्थिक शोषण करने के बाद इन्होंने भारतीयों को ब्रिटिश नौकरियों की ओर आकर्षित करने के लिए शिक्षा को मुख्य अस्त्र के रूप में व्यवहार में प्रयुक्त किया। इस रणनीति में अंग्रेज सफल रहे। भारतीयों (जो आर्थिक रूप से शोषित बनाए जा चुके थे) ने नौकरी के लिए अंग्रेजी शिक्षा को अनिवार्य माना और अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा उनको प्रदान की जाए इसके लिए कंपनी के अधिकारियों पर दबाव बनाना शुरू किया। इस प्रथा को सर्वाधिक व्यवस्थित रूप से राजा राममोहन राय ने परिणाम तक पहुंचाया।

1816 में राय ने सर्वप्रथम कलकत्ता में अंग्रेजी माध्यम का विद्यालय खोला, जबकि अंग्रेजों ने 1813 में अपने वार्षिक बजट में 1,00,000 रुपये की राशि शिक्षा के लिए निर्धारित की थी किंतु 1820 तक यह रकम शिक्षा के मद में व्यय नही की गई, क्योंकि अंग्रेजी शिक्षा के क्रियान्वयन के लिए जितना आग्रह वे भारतीय जन मानस से चाहते थे उतना हो नहीं रहा था। राय के 1816 में अंग्रेजी माध्यम के विद्यालय की स्थापना ने इस कार्य को परिणाम तक पहुंचा दिया। अंग्रेजी शिक्षा की वकालत करते हुए 11 दिसंबर 1823 को राय ने लार्ड एमहर्स्ट को बहुत ही भावोत्तेजक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने अंग्रेजो की शिक्षा पद्धति और उदारता की बहुत प्रशंसा की। भारतीयों को वे अंग्रेजी शिक्षा प्रदान करेंगे ही इस बात की भी आशा की। राय सदृश अनेक व्यक्तियों के इसी प्रकार के आग्रह को ध्यान में रखकर अंग्रेजों ने संपूर्ण भारत में अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों को खोलने की मूक सहमति दे दी।

कंपनी के अधिकारियों ने 19वीं सदी में जो शिक्षा के सर्वे भारत की चारों प्रेसीडेंसी में (पंजाब, बंगाल, मद्रास एवं बंबई) करवाए थे वे अत्याधिक चौंकाने वाले थे। इन के आधार पर भारत का कोई भी गांव ऐसा नहीं था जहां पर विद्यालय न हो तथा कोई भी बच्चा ऐसा नहीं था जो पढ़ा लिखा न हो। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा थी या संस्कृत थी। इसीलिए 18 वीं सदी तक संपूर्ण भारत में सैंकड़ों देशी रियासतें होने के बावजूद राष्ट्रभाव अक्षुण्ण था।

1828 में इन्हीं प्रयासों के मद्देनजर अंग्रेजी को राज काज की भाषा बना दिया गया। लार्ड मैकाले 1834 में भारत आया जो कि एक कुशाग्र बुद्धि का अंग्रेज था तथा कंपनी के हित साधन ही इसके मुख्य उद्देश्य थे, ने अपनी प्रथम कंपनी के अधिकारियों की मीटिंग में, जो भारत में हुई थी में अंग्रेजी शिक्षा भारतीयों को दी जाने के संबंध में सहमति बना ली और इसके लिए उन्होंने राय के पत्र को आधार बनाया। इस निर्णय से 1834 के बाद संपूर्ण भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार-प्रचार के समस्त मार्ग प्रशस्त हो गए। क्योंकि, अब कंपनी भी ऐसा ही चाहती थी और भारतीय जनमानस भी। यद्यपि, 1833 में राय का इंग्लैंड में देहावसान हो चुका था किंतु 18 वीं सदी में उनके द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज के अनेक नेताओं ने उनके विचार के आधार पर अंग्रेजी शिक्षा पद्धति का न केवल समर्थन किया बल्कि उसे आगे बढ़ाने के पुरजोर प्रयास भी किए। राय स्वयं ब्रिटिश शासन को भारत के लिए एक वरदान से कम नहीं मानते थे।

इस प्रकार भारतीय सहयोग, अनुनय-विनय के आधार पर भारत की श्रेष्ठ शिक्षा पद्धति के स्थान पर कमतर शिक्षा पद्धति का विकास किया जाने लगा। यह शिक्षा पद्धति मौलिकता के स्थान पर मात्र नकलचीपन और रट्टू वर्ग तैयार कर रहीं थी जो अंग्रेजों की गुलामी कर सकता था और गुलामी कैसे सुदृढ़ हो यह सोच सकता था। यही हुआ भी। स्वयं इंग्लैंड 18वीं सदी के मध्य तक अशिक्षा के बियाबान में भटक रहा था किंतु भारतीय स्वयं को शिक्षित करने के लिए उसके आगे अनुनय-विनय कर रहे हैं। कंपनी के अधिकारियों ने 19वीं सदी में जो शिक्षा के सर्वे भारत की चारों प्रेसीडेंसी में (पंजाब, बंगाल, मद्रास एवं बंबई) करवाए थे वे अत्याधिक चौंकाने वाले थे। इन के आधार पर भारत का कोई भी गांव ऐसा नहीं था जहां पर विद्यालय न हो तथा कोई भी बच्चा ऐसा नहीं था जो पढ़ा लिखा न हो। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा थी या संस्कृत थी। इसीलिए 18 वीं सदी तक संपूर्ण भारत में सैंकड़ों देशी रियासतें होने के बावजूद राष्ट्रभाव अक्षुण्ण था, कोई भी सांप्रदायिक, भाषाई या जातिय दंगों के प्रमाण नहीं मिलते; किंतु अंग्रेजी शिक्षा के प्रचलन में आने के बाद ये सभी समस्याएं दृष्टिगोचर होने लगी।

1857 की क्रांति और शिक्षा व्यवस्था के राजनीतिक लक्ष्य

1857 में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का मुख्य कारण यह माना गया कि भारत में उच्च

शिक्षा अंग्रेजी प्रकार की नहीं थी, इसलिए यह विद्रोह हुआ। परिणामत:, तीन विश्वविद्यालय मद्रास, कलकत्ता एवं बंबई की स्थापना हुई। इन तीनों विश्वविद्यालयों का मुख्य हेतु भारत के युवा वर्ग को अंग्रेजी और अंग्रेजीयत में दीक्षित करके सरकार के प्रति वफादार बनाना था। सन् 1858 में शासन कंपनी के हाथों से निकलकर रानी के हाथों में आने के बाद इस दिशा में तेजी से प्रयास किए जाने लगे। सही अर्थों में यह वह कालखंड था जिसमें ही पूर्णतया शिक्षा व्यवस्था समाज के हाथों से निकलकर राज्य के हाथों में और बाद में राज्य के हाथों से निकल बाज़ार के हाथों में हस्तांतरित हो गई। क्योंकि, पुस्तकों का निर्माण मातृभाषा के स्थान पर अंग्रेजी में किया जाने लगा। इसलिए भाषा को समझने के लिए पुस्तकों की बिक्री बढ़ने लगी और इस सब में राय के अनुयायियों ने खूब कमाई की। अंग्रेजी भाषा की पुस्तकें तैयार होने के कारण एक तो विद्यार्थी पर आर्थिक बोझ बढ़ा, दूसरे वह मानसिक रूप से कमजोर तथा अमौलिक समझ का स्वामी बनने लगा। उसे अंग्रेजी भाषा में जो अंग्रेजी ज्ञान दिया जाने लगा, उसके लिए वही अंतिम सत्य हो गया; इस प्रकार से विद्यार्थियों को भारतीय संस्कृति से विलग करने का षड्यंत्र अब खुले रूप से सामने आने लगा। मातृभाषा के अभाव में दोयम दर्जे के छात्र सामने आने लगे। इस बात का प्रभाव न केवल भारत की राजनीतिक परिस्थितियों को प्रभावित कर रहा था बल्कि संस्कृति और आर्थिक दृष्टिकोण से भी भारत पिछड़ रहा था।

अंग्रेजों के आने के पूर्व भारत की विश्व व्यापार में सहभागिता 34 प्रतिशत थी जो अब घटकर 10 प्रतिशत से भी कम रह गई थी। इन बातों से कुछ अंग्रेज भी चिंतित थे, इसलिए उन्होनें कुछ सर्वेक्षण करवाए थे। जिनसे ये तथ्य उजागर हुए कि जो विद्यार्थी मातृभाषा में पढ़ाई करते हैं वे मानसिक तौर पर ज्यादा उत्कृष्ट होते हैं। इस सर्वेक्षण से प्रभावित होकर बाद में हरदास शास्त्री, गुरूदास बैनर्जी रविंद्रनाथ टैगोर आदि ने पढ़ाई के लिए मातृभाषा पर जोर दिया। बाद में 1929 तथा 1937 की हार्टिंग कमेटी तथा बूडएबॉट कमेटी ने भी मातृभाषा में अध्यापन पर जोर दिया; किंतु अब तक बहुत देर हो चुकी थी। क्योंकि, अनेक राष्ट्रवादी नेता ही इस बात का विरोध करते थे। इसलिए समिति की सिफारिशें मातृभाषा में ही अध्ययन किए जाने की वकालत कर रही थीं किंतु व्यवहार में इसका क्रियान्वयन असंभव था; क्योंकि नौकरी प्राप्त करने माध्यम तो अंग्रेजी ही था। वह समाज जो देशज ज्ञान के आधार पर संपूर्ण विश्व का अगुआ बना हुआ था वह अंग्रेजी शिक्षा के व्याह-मोह में पड़कर अंग्रेजों की गुलामी को छोड़ने को तैयार ही नहीं होता था।

इस मुद्दे पर सुनीति कुमार चटर्जी जो कि प्रसिद्ध भाषाविद के रूप में विख्यात हैं, अपने विचारों को कुछ इस प्रकार व्यक्त करते हैं ''अंग्रेजी में शिक्षा पर ध्यान केंद्रित करने के फलस्वरूप एक ऐसी अंग्रेजीदां जाति बन गई जो जनता से अलग कटी हुई थी। शिक्षा का फायदा आम जनता तक नहीं पहुंच सका क्योंकि यह विदेशी भाषा में बंद था।'' चटर्जी उस समाज की दशा का वर्णन कर रहे थे जो कि अंग्रेजों की शिक्षा पद्धति लागू करने के पूर्व पूर्ण तथा शिक्षित था, क्योंकि शिक्षा का माध्यम उनकी अपनी मातृभाषा थी। इस प्रकार से अंग्रेजों ने अपने शासन के दौरान भारत में एक ऐसा प्रभु वर्ग खड़ा कर दिया जो कि रंग-रूप में तो देशी ही था किंतु विचार और व्यवहार की दृष्टि से अंग्रेजों से भी ज्यादा अंग्रेज था। मैकाले भी यही चाहता था। उसने 1935 में कुछ इसी प्रकार की भावनाएं अपने पत्र में व्यक्त की थीं। चटर्जी आगे लिखते हैं कि मैं समझता हूं कि कुल मिलाकर जल्दबाजी में अंग्रेजी पढ़ाने का निर्णय बौद्धिक विकास के लिए बुरा नतीजा निकला है। समस्या का अध्ययन करने वालों का स्पष्ट विचार है कि जीवन के आरंभ में द्विभाषी पढ़ाई बुरी है यह सामान्य मानसिक विकास रोक देता है।

बाज़ारवाद की भूमिका आज शिक्षा के भारतीयकरण में सबसे वही बाधा है। बाज़ार का तंत्र आज सरकारी तंत्र के साथ मिलकर शिक्षा की बाज़ार उन्मुखी नीतियों का ही पोषण करता है। अंग्रेजी शासन की सबसे बड़ी उपलब्धि यही है कि उसने समाज के ऊपर बाज़ार को स्थापित कर दिया है। भारतीय समाज चाहते हुए भी राज्य और बाज़ार के गठजोड़ में चलते शिक्षा के भारतीयकरण को रोपित करने में असफल हो रहा है।

अंग्रेजों ने इन सब बातों पर ध्यान ही नहीं दिया क्योंकि उन्हें तो एक ऐसा ही समाज निर्मित करना था जो कि मानसिक रूप से पंगु हो और मात्र उन्हीं के इशारों को समझे। इसी अनुरूप उन्होंने व्यवहार भी किया और शिक्षा तंत्र भी विकसित किया। 1947 के बाद जब देश स्वतंत्र हो गया तो भारत को अपनी शिक्षा के दृष्टिकोण से विचार करना था किंतु ऐसा नहीं हुआ। यद्यपि कुछ आयोग और समितियां इसके लिए बनाई भी गई, जिनमें डॉ. राधाकृष्ण आयोग, मुदालियार समिति तथा कोठारी आयोग प्रमुख हैं। इन सभी समितियों ने भारतीय शिक्षा का आधार प्राचीन शिक्षा व्यवस्था को बनाए जाने की पुरजोर वकालत भी की, क्योंकि अनेक देशों ने भारत की शिक्षा व्यवस्था को ही व्यवहार में लाकर विकास के सोपन पार किए। किंतु, भारत में यह स्वीकार नहीं हुआ और इसे भारत को पीछे ले जाने वालों की शिक्षा के रूप देखा गया। कारण, आप भी अंग्रेजी तंत्र की क्रियाशीलता है जो शिक्षा नीतियों का क्रियान्वयन करता है, वह मानने को तैयार ही नहीं है कि भारत की भी कोई शिक्षा नीति थी जो कि भारत को उन्नत अवस्था तक पहुंचा सकी थी। दूसरे, बाज़ारवाद की भूमिका आज शिक्षा के भारतीयकरण में सबसे वही बाधा है। बाज़ार का तंत्र आज सरकारी तंत्र के साथ मिलकर शिक्षा की बाज़ार उन्मुखी नीतियों का ही पोषण करता है। अंग्रेजी शासन की सबसे बड़ी उपलब्धि यही है कि उसने समाज के ऊपर बाज़ार को स्थापित कर दिया है। भारतीय समाज चाहते हुए भी राज्य और बाज़ार के गठजोड़ में चलते शिक्षा के भारतीयकरण को रोपित करने में असफल हो रहा है। यद्यपि कुछ छुटपुट प्रयास हो रहे हैं किंतु वे ऊंट के मुंह में जीरा सदृश ही है।

भविष्य की शिक्षा

भारत की अर्थव्यवस्था आज नई ऊंचाइयों की ओर अग्रसर है। भारत की विदेश नीति का भी इस दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण योगदान है। प्रथम बार भारत के सिद्धांतों के आधार पर भारत की विदेश नीति की दिशा और दशा तय की जाने लगी है। आज भारत न केवल अपने निकटवर्ती राष्ट्रों के साथ संबंधों की मधुरता स्थापित करने की ओर अग्रसर है बल्कि सुदूर पश्चिमी और पूर्वी राष्ट्रों के साथ भी अपने संबंधों को प्रगाढ़ कर रहा है। विदेश नीति

के जितने भी आयाम, राजनीतिक, आर्थिक, खेल या सांस्कृतिक आदि हो सकते हैं, वह सभी को व्यवहार में लाकर विदेश नीति का एक सुदृढ़ आधार तैयार करनें में संलग्न है। ऐसा इसलिए हो पा रहा है कि ज्ञान की दृष्टि से आज भारत अपने देशज ज्ञान का सम्मान करने लगा है। भारत की भावी शिक्षा नीति के निर्माण में भी उपरोक्त तत्वों का समावेश होना चाहिए। कोई भी देश अपने मूल ज्ञान के अभाव में स्थाई तरक्की नहीं कर सकता। आज भारत की शिक्षा नीति को मात्र 5 -10 वर्षो के दृष्टिकोण से निर्मित नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि भारत इक्कीसवीं सदी में किस प्रकार से संपूर्ण विश्व का मार्गदर्शन कर सकने में सफल हो सकता है, को ध्यान में रखना चाहिए। भारत जितने देशों को आज अपने नागरिकों के माध्यम से सेवा प्रदान कर रह रहा है, का आकलन करके यह निर्धारित करना चाहिए कि किन किन क्षेत्रों में सेवा के लिए कितने कुशल व्यक्तियों की आवश्यकता होगी।

भारत का अधोसंरचनात्मक विकास जिस तेजी से बढ रहा है, को ध्यान में रखकर उसी के अनुसार कुशल व्यक्ति तैयार करने चाहिए। चिकित्सक, कृषि वैज्ञानिक, अध्यापक/प्राध्यापक/अभियंता, वैज्ञानिक सेवा क्षेत्र में काम करने वाले तथा अन्य क्षेत्र जिन पर हम आज तक दृष्टिपात नहीं कर पा रहे हैं या आज हमारे लिए अनुपयोगी होंगे, का भी ध्यान करें और उसी के अनुरूप नीतियों का निर्माण करें। अनुसंधान के क्षेत्र में भारतीय ज्ञान को दृष्टिगत रखकर संस्थान विकसित करें और गंभीर अनुसंधान को प्रोत्साहन दें जिससे कि भारत का देशज ज्ञान न केवल देश के विकास में उपयोग हो बल्कि वह विश्व का भी मार्गदर्शन कर सकें।

शिक्षानीति इस प्रकार की हो जो योग्यता का सम्मान करे तथा अनेक प्रकार के बंधन जो कि शिक्षा और अनुसंधान के मार्ग में बाधक है उनको शिथिल करे या बिल्कुल समाप्त करने की दिशा में ठोस पहल करे। आज भारत स्वतंत्र है, हमें किसी भी क्षेत्र में बिचौलियों की आवश्यता नहीं है जैसी की अंग्रेजी कालखंड में थी। अत: हमें स्थानीय दृष्टिकोण से मात्र भाषा में अध्ययन/अध्यापन एवं अनुसंधान को बढ़ावा देना चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेजी के महत्व को समझते हुए उसकी भी व्यवस्था एक निश्चित आयु तथा कक्षा के बाद करने की व्यवस्था हो। बालक के मस्तिष्क का सहज विकास मातृ भाषा के चलते होने के बाद अंग्रेजी का अध्ययन किया जा सकता है। इस दिशा में वैज्ञानिक अनुसंधान की मदद से कदम उठाने चाहिए। भारत की शिक्षा को लेकर अभी तक जो भी आयोग बने है, कि अनुशंसाओं को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए सार्थक पहल करने की महती आवश्यकता है।

हम आज के भारत को 250-300 वर्ष पूर्व नहीं ले जा सकते किंतु 250-300 वर्ष पुराने भारत को तो आज ला सकते हैं और दोनों में क्या संबंध हो सकता है, विचार कर सकते हैं। यदि इससे भारत और संपूर्ण मानवता को लाभ होता है तो यह विचार बुरा नहीं है। यही, सही समय है इस ओर सोचने का और सोच को क्रियान्वित करने का। पश्चिमी देशों ने वही सब किया जो उनके देश, काल और परिस्थिति के लिए उपयोगी था।

भारत की शिक्षा व्यवस्था लंबे समय तक विश्व के अनेक देशों का मार्गदर्शन करती रही है। फिर ऐसा क्या हुआ वह आज मार्गदर्शन नहीं कर सकती? आवश्यकता है इस दृष्टिकोण से सोचने की और उस सोच के आधार पर संरचना खड़ा करने की, जिसमें शिक्षा के दृष्टिकोण से समाज की भूमिका सुनिश्चित हो बाज़ार की नहीं। हम आज भारत 250-300 वर्ष पूर्व नहीं ले जा सकते किंतु 250-300 वर्ष पुराने भारत को तो आज ला सकते हैं और दोनों में क्या संबंध हो सकता है, विचार कर सकते हैं। यदि इससे भारत और संपूर्ण मानवता को लाभ होता है तो यह विचार बुरा नहीं है। यही समय है इस ओर सोचने का और कदम उठाने का। पश्चिमी देशों ने वही किया जो उनके देश, काल और परिस्थिति के लिए उपयोगी था। अतीत में हमनें भी एसा ही किया था, किंतु आज हम व्याहमाह में फंसकर समुचित कर्मों को उठाना भूलकर पश्चिम का अनुसरण करने लगे हैं। आज आवश्यकता है भारत की सनातनी परंपरा को अपनाने की जिसमें नितनुतन चिर पुरातन का सिद्धांत महत्वपूर्ण रहा है। आज शिक्षण संस्थाओं पूर्ण स्वायत्तता देकर समाज उन्मुखी कार्य करने को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। भारत में जिन संस्थाओं हमनें पूर्व में यह स्तर प्रदान किया है उन संस्थाओं ने विश्व में अपना एक स्थान बनाया है। इसलिए समस्त बंधनों से मुक्त एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था प्रचलन में आए जो अतीत पर गर्व करना सिखाए और उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर सके। ❑

संदर्भ

1. एजुकेशन इन एन्शियण्ट इण्डिया, ए. एस. अल्तेकर
2. दी एजुकेशन सिस्टम ऑफ एन्शियण्ट हिन्दूज, संतोष कुमार दास
3. एन्शियण्ट इण्डियन एजुकेशन-राधा कुमुद मुखर्जी
4. सांस्कृतिक साम्राज्य और शिक्षा-मार्टिन कॉरनाय
5. देशज शिक्षा औपनिवेशिक विरासत और जातिय विकल्प, परमेश आचार्य
6. केस फॉर इंडिया, विल डयूरन्ट
7. भर्तृहरि शतकत्रयी
8. ब्यूटीफुल ट्री-धर्मपाल
9. भारतीयता की और-पवन कुमार वर्मा
10. अष्टाध्यायी-पाणिनी
11. अर्थशास्त्र-कौटिल्य

योजना

आगामी अंक

फरवरी 2016

स्वास्थ्य क्षेत्र

क्या आप जानते हैं?

सबके लिए शिक्षा विकास सूचकांक

शिक्षा विकास सूचकांक (ईडीआई) यूनेस्को द्वारा हर वर्ष तैयार की जाने वाली *सबके लिए शिक्षा* वैश्विक निगरानी रिपोर्ट के तहत लाया जाने वाला एक संयुक्त सूचकांक है। यह वर्ष 2015 तक समस्त बच्चों और प्रौढ़ों के लिए बुनियादी शिक्षा के लक्ष्य की दिशा में हुई प्रगति का आकलन करता है। यह सूचकांक सबके लिए शिक्षा (ईएफए) के छह लक्ष्यों में से चार का उपयोग करता है, जिनका चयन आंकड़ों की उपलब्धता के आधार किया जाता है। ये चार लक्ष्य हैं: 1. संपूर्ण (या सार्वभौमिक) प्राथमिक शिक्षा (यूपीई), 2. प्रौढ़ साक्षरता, 3. शिक्षा की गुणवत्ता और 4. लड़के-लड़कियों में समानता। समग्र सूचकांक में प्रत्येक ईडीआई संघटक पर समान बल दिया गया है।

चारों ईएफए लक्ष्यों में से प्रत्येक के लिए, एक संकेतक का उपयोग वैकल्पिक या प्रॉक्सी उपाय के रूप में किया गया है। संपूर्ण (या सार्वभौमिक) प्राथमिक शिक्षा के लिए संकेतक प्राथमिक तौर पर समायोजित शुद्ध नामांकन अनुपात (एएनईआर) है, जो प्राथमिक अथवा माध्यमिक स्कूलों में दाखिला लेने वाले प्राथमिक स्कूल जाने की उम्र वाले बच्चों के प्रतिशत का आकलन करता है। इसके परिमाण का दायरा 0 से 100 प्रतिशत तक हो सकता है। 100 प्रतिशत एएनईआर का आशय है कि सभी पात्र बच्चों का दाखिला स्कूल में कराया गया है।

प्रौढ़ साक्षरता के लिए, 15 वर्ष या उससे ज्यादा उम्र वालों के लिए प्रौढ़ साक्षरता दर, उसकी प्रगति का आकलन करने के लिए विकल्प के रूप में उपयोग में लाई जाती है। शिक्षा की गुणवत्ता के लिए, 5वीं कक्षा तक पढ़ाई जारी रखने की दर ईडीआई के गुणवत्ता संघटक का आकलन करने के उपलब्ध बेहतरीन विकल्प है। आखिर में, लड़के-लड़कियों के लिए, प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा और प्रौढ़ शिक्षा-लड़के-लड़कियों की समानता संबंधी तीन सूचकांकों (जीपीआई) की साधारण औसत, प्रत्येक पर समान महत्व देते हुए ली गई है।

ईडीआई परिमाण को प्रतिशत में व्यक्त किया गया है, इसलिए ये 0 से 100 प्रतिशत तक घट-बढ़ सकता है। अनुपात के रूप में व्यक्त किए जाने पर, इसका दायरा 0 से 1 तक हो सकता है। इस तरह, किसी देश के लिए ईडीआई परिमाण, चार वैकल्पिक संकेतकों की अंकगणितीय निरूपण है। ईडीआई परिमाण अधिक होने का आशय है कि वह देश सबके लिए शिक्षा का लक्ष्य हासिल करने के करीब है।

सारांश: स्कूलों और अभिभावकों के लिए समग्र स्वयं समीक्षा टूल

सारांश छात्र के प्रदर्शन और प्रगति के समग्र स्व-मूल्यांकन और विश्लेषण का एक ऑनलाइन प्लेटफॉर्म है। यह एक डिजिटल इंटरफेस है, जो शिक्षकों और छात्रों के अभिभावकों के बीच प्रत्येक के लिए अलग-अलग संपर्क का मंच उपलब्ध कराता है। यह आंकड़ों के आधार पर निर्णय लेने में सहायक प्रणाली पर कार्य करता है ताकि अभिभावकों को अपने बच्चों के कमजोर और मजबूत पक्षों को जानने में मदद मिल सके और वे उनकी पसंद और नापसंद से अवगत हो सकें। इससे अभिभावक उनके भविष्य के बारे में सही फैसले लेने में सक्षम होते हैं।

सारांश को हाल ही में मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने 'डिजिटल इंडिया' अभियान के तहत की गई अनेक डिजिटल पहलों के तहत प्रारंभ किया है, ताकि सीबीएसई से संबद्ध स्कूलों में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों को बढ़ावा दिया जा सके और भारत में मौजूदा शिक्षा प्रणाली में पारदर्शिता लाई जा सके। यह प्रतियोगिताओं और उपस्थिति के बारे में सूचना प्रदान करता है, जो इस डिजिटल मंच के लिए अभिभावकों के साथ सीधे साझा की जा सकती है। यह सभी कक्षाओं और विषयों की ई-बुक्स भी उपलब्ध कराता है। स्कूल इस उपकरण का इस्तेमाल विषय विशेष में सभी छात्रों के प्रदर्शन का विश्लेषण करने में कर सकता है और उन क्षेत्रों की पहचान कर सकता है, जिनमें बच्चे को सुधार की जरूरत है। इस पोर्टल में सभी स्कूलों के पिछले 3 वर्षों के आंकड़े दर्ज हैं। इस प्रकार छात्र के अच्छे प्रदर्शन वाले और ज्यादा सुधार की आवश्यकता वाले क्षेत्रों का पता लगाने के लिए सालाना आधार पर तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

प्रस्तुति: वाटिका चंद्रा, उपसंपादक (योजना, अंग्रेजी) ईमेल: vchandra.iis2014@gmail.com

लेखकों से अनुरोध

- 'योजना' विकास संबंधी विषयों पर केंद्रित मासिक है। पत्रिका में हर माह आगामी केंद्रीय विषय प्रकाशित किया जाता है। अनुरोध है कि प्रकाशन हेतु केंद्रीय विषय के अनुसार ही रचनाएं भेजें।
- सामान्यत: रचनाएं वापस नहीं भेजी जातीं। रचना की वापसी के लिए यथोचित मूल्य के टिकट और पता लिखा लिफाफा भेजें।
- रचनाएं Microsoft Word में Kruti Dev Font 010 में टाइप करके yojanahindi@gmail.com पर भेजी जा सकती है।
- **संपादकीय पत्र व्यवहार** का पता है: संपादक (योजना), प्रकाशन विभाग, कमरा नं. 648, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003, फोन: 011-24365920

एक मूल्य आधारित समाज के प्रतिः साहचर्य की शिक्षा

जे. एस. राजपूत

''यदि ज्ञान केवल ज्ञान ही रह जाए तो व्यक्ति के पास जीने की कोई उम्मीद नहीं रह जाती लेकिन यदि वह ज्ञान को बुद्धि में बदल दे तो न केवल वह जीवित रहेगा बल्कि उपलब्धियों की नई से नई ऊंचाइयों को प्राप्त करने के योग्य हो जाएगा'' जीबी शॉ

सजीवों में केवल मनुष्य ही पता लगाने, कल्पना करने, निश्चय करने, विकसित करने, रचना करने, परिष्कृत करने, उपयोग करने तथा बेहतर जीवन के प्रति सुधार और अधिक ज्ञान व बुद्धि प्राप्त करने के लिए प्रयासरत रहने की अद्वितीय, सहज और आजीवन वृत्ति से युक्त है। जैसे-जैसे मानव सभ्यता विकसित होती जाती है, मिले अनुभवों और प्राप्त ज्ञान को अगली पीढ़ी को हस्तांतरित करने की जरूरत एक स्वतः जिम्मेवारी बन जाती है। उसी के मुताबिक सभी सभ्यताओं में युवाओं को 'शिक्षित' करने के तरीके और साधन के साक्ष्य उपलब्ध हैं

कई बार यह कल्पना करना थोड़ा मुश्किल हो जाता है कि बिना किसी कागज और कलम की सहायता के केवल मौखिक शिक्षा परंपरा में किस प्रकार से इतने महान ग्रंथ पूरी शुद्धता, जो कि आज मौजूद हैं, के साथ दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित किए गए। अतीत के वर्तमान मोड़ पर, ज्ञान के प्रसार, रचना, सृजन, संवर्धन और उपयोग की प्रक्रिया को शिक्षा और शोध के अंतर्गत सम्मिलित किया जाता है। यह संवाद, विनिमय, तकनीकी सहायता और सूचना प्रौद्योगिकी के शोधन के माध्यम से मजबूत होती जा रही है। पुनः ये सभी सतत मानवीय प्रयोगों और पहलों के परिणाम हैं। यहां तक कि पचास वर्ष पूर्व, मौजूदा आई-पैड या लैपटॉप का वर्तमान स्वरूप अधिकांश लोगों के लिए कपोल कल्पना थी। मानव को प्राप्त संचित ज्ञान, समझ और बुद्धि से जो भी लाभ और सुविधाएं प्राप्त हैं, ये सभी ऐसे समर्पित और तत्पर लोगों जिनके जीवन का प्रमुख लक्ष्य मानव हित था, के सतत प्रयासों का नतीजा है। विभिन्न स्थानों और परिस्थितियों में जैसे-जैसे ज्ञान के आधार में उतरोत्तर वृद्धि होती गई और मानव गतिशीलता का विकास हुआ, प्राप्त ज्ञान की सार्वभौमिकता का एहसास हुआ, उसे स्वीकारा गया और ज्ञान को समृद्ध करने की गति को बढ़ाने के लिए इसका उपयोग किया गया। आज, मनुष्य को प्रकृति की ताकत का एहसास है, वे जानते हैं कि धरती माता के पास उपलब्ध खजाने का मानव की बेहतरी के लिए कैसे उपयोग किया जाना चाहिए। वे यह भी समझते हैं कि सभी मनुष्यों का एक समान और साझा भविष्य है। अस्तित्व को बनाए रखने और आने वाली पीढ़ियों के लिए इसे और बेहतर करने हेतु वे मानव जाति की शाश्वत एकता से सहज रूप से उत्पन्न साझेदारी और देखभाल के महत्व को भी समझते हैंः अंततः दुनिया एक परिवार है।

अतीत में इस बात के भी प्रमाण हैं कि ज्ञान का उपयोग नकारात्मकता के प्रसार और संवर्धन में किया गया है। उदाहरण के लिए जब मानव महाद्वीपों में गया, उसने वहां उपनिवेशवाद, गुलामी, रंगभेद और इसी प्रकार की अन्य अमानवीय प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया। जब मनुष्य को परमाणु शक्ति का ज्ञान हुआ उसने हिरोशिमा और नागासाकी की त्रासदी को भी जन्म दिया। आज पूरी मानव सभ्यता कट्टरता, आंतकवाद और साइबर आक्रमण के डर से त्रस्त है। मानव पूरी तरह से यह जानते हुए कि प्राकृतिक संसाधन सीमित हैं और इसे छोड़कर अन्य किसी ग्रह पर इस जीवन को कायम रखना संभव नहीं है, वैश्विक प्राकृतिक संसाधनों के घोर शोषण में लिप्त है। जब लालच मानव चेतना से ऊपर उठ जाता है तब हिंसा के लिए अनुकूल वातावरण और परिस्थितियां तैयार हो जाती हैं, जिसके परिणामस्वरूप युद्ध होते हैं

लेखक राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी) के पूर्व निदेशक हैं। वह स्कूली शिक्षा, शिक्षक शिक्षण और संस्थागत प्रबंधन में अपने योगदानों के लिए पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित हो चुके हैं। वह राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षण परिषद् (एनसीटीई) के चेयरमैन भी रहे हैं तथा शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए पाठ्यचर्या रूपरेखा तैयार करने वाली समितियों के प्रमुख भी रहे हैं। वह यूनेस्को तथा अन्य अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के साथ लगभग तीन दशकों से जुड़े हैं और उनके योगदान के लिए यूनेस्को की ओर से उन्हें प्रतिष्ठित जान आमोस कॉमेनियस पदक से भी सम्मानित किया गया है। ईमेलः rajput_js@yahoo.co.in

और मानव तथा प्राकृतिक संसाधनों की घोर बर्बादी रोजमर्रा के कार्य बन जाते हैं। इससे पहले कभी भी मानव ने आज की तरह इतनी निर्दयता से संवेदनशील मानव-प्रकृति संबंध को बाधित नहीं किया था। सूखती नदियां, प्रदूषित हवा और संदूषित जल एक आम आदमी को भी सारी कहानी कह देते हैं। स्वास्थ्य संरक्षण और उपचार के क्षेत्र में व्यापक प्रगति भी, भौतिक सुखों की चाहत में प्रकृति के घोर शोषण के परिणामस्वरूप निश्चित रूप से आने वाली आपदाओं से मानव निर्मित स्वास्थ्य समस्याओं के निराकरण में नाकाम साबित हो रही है। आज, 'यदि गंभीरता और ईमानदारी से उपचारात्मक उपाय नहीं शुरू किए गए तो पृथ्वी ग्रह कब तक जीवित रह पाएगा?', पर वैज्ञानिक तौर पर अंदाजा लगाया जा रहा है। व्याधि का पता है, उपचार भी पता है लेकिन अधिक से अधिक जमा करने और पाने का मोह और लिप्सा देशों और उनके नेताओं को आपदाओं को रोकने में सक्षम नीतियों को लागू करने से रोकती हैं। ये आपदाएं हर वक्त हमारे सिर पर मंडरा रही हैं और पृथ्वी ग्रह के अस्तित्व पर संकट बन चुकी हैं। इन नेताओं और लोगों को क्या हुआ है? क्यों मानव अपने ही आवास को उजाड़ने, अपने ही भाइयों को मारने और सभी मनुष्यों के लिए शांतिपूर्ण, सम्मानजनक और सभ्य दुनिया को असुरक्षित व रहने के अयोग्य बनाने पर तुले हैं? इन प्रश्नों के उत्तर की खोज भी शाश्वत हो सकती है। वेदों में इसे बहुत पहले ही किया जा चुका है। जो कोई भी वेदांत से अपरिचित हैं, उन्हें प्लेटो को याद करना उपयुक्त होगा। अपने गणतंत्र में प्लेटो अपने लोगों से यह समझने की आशा करते हैं कि 'एक उत्तम जीवन केवल कुछ महत्वपूर्ण करने की बजाए कुछ महत्वपूर्ण बनना है'। प्लेटो के अनुसार उत्तर 'मुझे क्या करना चाहिए' से 'मुझे किस तरह का व्यक्ति होना चाहिए' के बदलते स्वरूप में मिलते हैं। और इससे हमें शिक्षक और शिक्षा मिलती है। शिक्षक एक निर्दोष व्यक्ति को व्यक्तित्व में परिवर्तित कर देता है। शिक्षक उसे मानवता से देवत्व की ओर ले जाता है। उस उद्देश्य की पूर्ति हो जाने पर, चारों ओर सत्य, अहिंसा और शांति का महत्व दिखाई देने लगेगा। प्यार और भाईचारे का प्रसार होगा और प्रेम एक अदृश्य आकांक्षा नहीं रह जाएगी। यह शिक्षा का सुदृढ़ीकरण होगा जिसमें शिक्षक से मूल्य प्राप्त होंगे, जिन्हें एक तरफ आदर्श होने और दूसरी और राष्ट्र निर्माता होने का भान होगा। उसकी भूमिका केवल पाठ्यक्रम लागू करने से कहीं अधिक होगी।

भौतिकवादी वैश्विक रुझान विविध क्षेत्रों और प्रत्येक को प्रभावित करते हैं, जिसमें शिक्षकों और शिक्षा तंत्र को भी शामिल किया जाता है। मानव जाति के लिए शिक्षा हमेशा ही आशा की एक किरण होनी चाहिए। ज्ञान और ज्ञान की खोज जरूरी है लेकिन केवल यही पर्याप्त नहीं है। मानव जाति के जीवित रहने के लिए बुद्धि और विवेक महत्वपूर्ण घटक होते हैं। जब महात्मा गांधी ने कहा कि सभी की जरूरतों को पूरा करने के लिए प्रकृति के पास पर्याप्त संसाधन है लेकिन किसी एक के भी लालच को पूरा करने के लिए कम है, उन्होंने वास्तव में, इन शब्दों में मानव जाति के पूरे भविष्य को रेखांकित कर दिया है। इससे मनुष्य-प्रकृति के रिश्ते की संवेदनशीलता और पारस्परिकता का पता चलता है और इसमें प्राकृतिक संसाधनों के दोहन को तुरंत रोकने की चेतावनी छिपी है।

इससे पहले कभी भी मानव ने आज की तरह इतनी निर्दयता से संवेदनशील मानव-प्रकृति संबंध को बाधित नहीं किया था। सूखती नदियां, प्रदूषित हवा और संदूषित जल एक आम आदमी को भी सारी कहानी कह देते हैं। स्वास्थ्य संरक्षण और उपचार के क्षेत्र में व्यापक प्रगति भी, भौतिक सुखों की चाहत में प्रकृति के घोर शोषण के परिणामस्वरूप निश्चित रूप से आने वाली आपदाओं से मानव निर्मित स्वास्थ्य समस्याओं के निराकरण में नाकाम साबित हो रही है।

जब भारतीय दर्शन में अपरिग्रह का विकास हुआ, यह एक चेतावनी और मूल्य दोनों था, जिसे सुने जाने और अपनाने की जरूरत थी। आज हम नियमित अंतराल पर आयोजित होने वाले पृथ्वी सम्मेलन, जलवायु सम्मेलन एवं अन्य बैठकों में जाहिर वैश्विक चिंता के बारे में सुनते हैं। इन बैठकों से अब तक कोई प्रभावी निर्णय निकलकर सामने नहीं आए हैं। 'मूल्य ह्रास' जिसमें वे सभी नुकसान शामिल हैं जिन्हें मनुष्य पूरी जानकारी और समझ होने के बाद भी, स्वयं पर ही इनको थोप रहा है, पर सभी बात कर रहे हैं। मानव मस्तिष्क को इसका हल तुरंत निकालना चाहिए। इसके लिए एकमात्र उपाय शिक्षा है- स्कूलों, कॉलेजों और उच्च शिक्षण संस्थानों को प्रमुखता से मूल्य प्रदान करने, पोषण और विकास पर ध्यान देना होगा।

अन्य सभ्यताओं के इस क्षेत्र में पदार्पण से बहुत पहले ही भारतीय परंपरा में, निपुण और सुशिक्षित लोगों ने न केवल इस ग्रह पर जीवन को समझने का, बल्कि इस ग्रह से अंतिम विदाई के बाद शरीर के साथ क्या होता है समझने का प्रयास किया। इस जिज्ञासा में उन्होंने अपने तरीके से सृजन के परम उद्देश्य को जाना। जिसके परिणामस्वरूप दर्शन का विकास हुआ और अध्यात्म का अभ्यास आरंभ हुआ, जिसे बाद में पूरी दुनिया ने स्वीकार किया। इस आध्यात्मिक जिज्ञासा के साथ-साथ सांसारिक जीवन के बारे में बेहतर समझ विकसित हुई। शिष्टाचार, दूसरों के लिए चिंता, शाश्वत मानव एकता, जीवन में शांति इत्यादि के महत्व समझ आए और उनकी प्रासंगिकता महसूस हुई। भारतीय ग्रंथों में इस बात पर चर्चा की गई है कि मानव-प्रकृति संबंध किस प्रकार से पूरी संवेदनशीलता के साथ कायम रहने चाहिए। इनमें यह जिम्मेदारी मनुष्यों को दी गई है, क्योंकि वे सोचने, आगे के बारे में कल्पना करने, योजना बनाने और जरूरत पड़ने पर नई रणनीति अख्तियार करने की क्षमता से संपन्न होते हैं। सुपरिचित डेरोल्स कमिशन रिपोर्ट (यूनेस्को, 1996) जो 21वीं सदी की शिक्षा पर एक दृष्टि प्रस्तुत करता है, में आज मनुष्यों द्वारा झेले जाने वाले निम्नलिखित सात तनावों को चिन्हित किया गया है–

• वैश्विक और स्थानीय, • सार्वभौमिक और व्यक्तिगत, • परंपरा और आधुनिकता, • दीर्घावधि और लघु-अवधि निर्णय विवेचन, • प्रतिस्पर्धा और अवसर की समानता, • ज्ञान विस्फोट और उसे समाहित करने की क्षमता, • आध्यात्मिक और वस्तुवादी

पृथ्वी पर इन तनावों के परिणामों की जद में अब न केवल एक बल्कि सभी हैं, अतः विभिन्न क्षेत्रों में यथाशीघ्र सुरक्षात्मक पहल करने की जरूरत है। एक तरफ ग्लोबल वार्मिंग का मुद्दा है तो दूसरी ओर वर्तमान पीढ़ी को बढ़ती हिंसा, कट्टरता और आतंकवाद से लड़ना है। ये सभी मानव प्रगति और विकास के साथ-साथ नहीं चल सकते हैं। इससे आगे बढ़ें तो आज व्यावहारिक रूप से सभी देश आर्थिक मंदी का सामना कर रहे हैं। विकासशील देश

आर्थिक सहयोग, तकनीकों में समर्थन और विभिन्न अन्य क्षेत्रों में प्रौद्योगिकीय प्रगति के लिए विकसित देशों की तरफ देख रहे हैं। ये सभी चीजें मुफ्त में नहीं मिलती हैं और ये चीजें एक देश के अनुकूल और दूसरे के प्रतिकूल हो सकती हैं, इस तरह अक्सर विकास की विचारधारा पर ये संकट उत्पन्न करते हैं। ये सभी 'नैतिक संकट के कुछ उदाहरण' के जीवंत रूप में प्रकट होते हैं, जो आज प्रत्येक राष्ट्र झेल रहा है।

एक 'मानवीय' व्यक्तित्व का निर्माण

प्रत्येक सभ्यता और प्रत्येक धर्म ने अपनी-अपनी परंपरा, नियम और जीवन पद्धति का विकास किया है, जो लोगों को उनके जीवन और आजीविका की पद्धति, व्यवहार के मानदंडों और मानव समाजीकरण के सूत्र में एकसाथ बांधे रखता है। सभी स्थान पर यह आसानी से पहचान की जा सकती है कि यहां के लोग किस धर्म के अनुयायी हैं। आवाजाही में वृद्धि होने के बाद, समुदायों का तीव्र विकास हो रहा है जिसमें विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों के अनुयायियों को एक साथ रहना और काम करना पड़ रहा है।

2001 के दोहरे टावर त्रासदी में पता चला था कि 60 देशों के पेशेवर युवा लड़के-लड़कियां इन दोनों टावरों में कार्यरत थे। उनकी जातीय, सांस्कृतिक, भाषाई और सामाजिक पृष्ठभूमि में भारी अंतर था लेकिन उन्होंने जान लिया था कि कल का संसार किस प्रकार से नया आकार लेगा और प्रगति व विकास के रास्ते पर चलने के लिए कैसे एक साथ जीने की कला सिखनी होगी। संस्कृतियों, धर्मों और भाषाओं या राष्ट्रीयता की विविधता मानव प्रगति में तब कोई बाधक नहीं बनती जब मानव जाति की जरूरी एकता और बराबरी को महसूस किया जाता है और उसे हर किसी के साथ अंतरसंबंधित किया जाता है। यह सबसे अधिक प्रभावी तरीके से बच्चों के बड़े होने की प्रक्रिया के दौरान और युवाओं में शिक्षा व समझ विकसित होने के दौरान होता है।

कोई देश अपने यहां लागू करने वाली शिक्षा के स्वरूप का निर्धारण कैसा करता है? अब यह व्यापक रूप से स्वीकारा जाता है कि प्रत्येक राष्ट्र की शिक्षा उसकी संस्कृति में निहित होनी चाहिए जो और अधिक प्रगति के लिए प्रतिबद्ध होनी चाहिए।

यह भारत का अपना अनुभव है कि शिक्षा का प्रत्यारोपित ढ़ांचा विदेशी धरती पर सफल नहीं हो सकता है। आजादी के बाद भारत ने पहले से चली आ रही शिक्षा व्यवस्था, जिसे विदेशी शासकों ने शासन के निचले पायदान पर अपने सहयोग के लिए श्रम बल तैयार करने हेतु शुरू किया था, को जारी रखने का निर्णय लिया। यह विदेशी व्यवस्था उन्होंने सभी के लिए नहीं की थी, इसका संस्कृति, इतिहास और ज्ञान की खोज की भारतीय परंपरा से काई संबंध नहीं था। जबकि कुछ निश्चित शाश्वत मानव मूल्य, संस्कृति और परंपराएं हैं जिनका अपना विशेष लक्ष्य है जो अपने लोगों को मजबूती और प्रोत्साहन प्रदान करता है। ये सुंदरता की भावना फैलाते हैं जिसकी विविधता सभी महाद्वीपों, धर्मों और क्षेत्रों में पहुंचती हैं। अत: परस्पर संवाद तथा प्रसार, सुदृढ़ीकरण और परिष्करण की प्रक्रिया के जरिये इन्हें सुरक्षित और सुदृढ़ करना होगा। इन सभी के लिए और एक बेहतर तथा अत्यधिक समृद्ध मानव जीवन के लिए वर्तमान समय का सबसे महत्वपूर्ण जरिया शिक्षा है। शिक्षा का उद्देश्य, चाहे जिस किसी भी तरीके से इसे तैयार किया गया हो, उसका सार एक ही होता है, यह मनुष्य बनाने वाली शिक्षा होनी चाहिए! जब स्वामी विवेकानंद कहते हैं कि 'शिक्षा मनुष्य में पहले से ही उपलब्ध पूर्णता की अभिव्यक्ति है', तब वे थोड़े से शब्द में ही मानव जीवन की समग्रता, इसके लक्ष्यों, उद्देश्यों, प्रक्रिया और उत्पाद की बात कहते हैं, जो महान आलेख भी नहीं कह पाते हैं। रवींद्रनाथ टैगोर शिक्षा का अपना पाठ मानव और प्रकृति के बीच संबंध के रूप में इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं: ''उच्चतम शिक्षा वह है जो न केवल हमें सूचनाएं देती है बल्कि बाकी दुनिया के साथ हमारे जीवन का तालमेल बिठाती है।''

शिक्षा का उद्देश्य, चाहे जिस किसी भी तरीके से इसे तैयार किया गया हो, उसका सार एक ही होता है, यह मनुष्य बनाने वाली शिक्षा होनी चाहिए! जब स्वामी विवेकानंद कहते हैं कि 'शिक्षा मनुष्य में पहले से ही उपलब्ध पूर्णता की अभिव्यक्ति है', तब वे थोड़े से शब्दों में ही मानव जीवन की समग्रता, इसके लक्ष्यों, उद्देश्यों, प्रक्रिया और उत्पाद की बात कहते हैं, जो महान आलेख भी नहीं कह पाते हैं।

1909 में महात्मा गांधी ने 'हिंद स्वराज' लिखी थी और उसमें उन्होंने शिक्षा की परिभाषा दी थी, उसमें भी मानव निर्माण को ही शिक्षा का उद्देश्य बताया गया है। उन्होंने लिखा है: ''मैं सोचता हूं कि मनुष्य की शिक्षा उदार होनी चाहिए। युवाओं में उसका विकास इस प्रकार से किया जाना चाहिए कि उसका शरीर उसकी इच्छाओं के अधीन हो और एक संरचना के तौर पर वह सहजता और खुशीपूर्वक वे सभी कार्य करे जिनके लिए वह सक्षम हो, जिसकी बुद्धि एक ऐसी स्पष्ट, शांत, तर्क इंजन हो, जिसके सभी पुर्जे समान रूप से मजबूत हों और सही प्रकार से कार्य करते हों... जिसका मस्तिष्क प्रकृति के आधारभूत सत्यों के ज्ञान से भरा हो... जिसके जोश को सशक्त इच्छाओं को पूरा करने के लिए प्रशिक्षित किया गया हो, नवीन चेतना का अनुयायी... जिसने सभी तरह की दुष्टता से घृणा करना और अपनी तरह ही दूसरों को सम्मान देना सीखा हो। मैं मानता हूं कि केवल ऐसे ही व्यक्ति के पास उदार शिक्षा है, दूसरे किसी और व्यक्ति के पास नहीं, जिसके लिए वह प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करता है। ऐसे स्त्री और पुरुष एक दूसरे को बेहतर बनाने का प्रयास करेंगे।'' इस प्रकार की शिक्षा की खोज पूरी दुनिया में लगातार की जा रही है और यह अपने आप में सभ्यता के प्रगति और विकास को एक बहुत ही प्रोत्साहित करने वाला लक्षण है।

हक्सले ने शिक्षा में श्रेष्ठता के क्या लक्षण होंगे, को रेखांकित किया है: ''इस संसार को पूर्ण रूप से जानने के बाद हम पाते हैं कि सुविकसित और सुगठित व्यक्तित्व विकास का सर्वश्रेष्ठ उत्पाद है।'' वह इससे आगे इस बात पर जोर देता है, ''मानव प्रकृति और इसकी संभावनाओं का अन्वेषण मुश्किल से शुरू हुआ है। अनछुए संभावनाओं के एक वृहत नए संसार को अभी भी अपने कोलंबस का इंतजार है।'' डॉ. राधाकृष्णन ने जिन शब्दों में इसे स्पष्ट किया है उससे शिक्षा की पूर्णता का पता चलता है, ''शिक्षा का अंतिम उत्पाद एक ऐसे स्वतंत्र रचनात्मक व्यक्ति का निर्माण होना चाहिए जो ऐतिहासिक परिस्थितियों और प्रकृति की विपत्तियों से जूझ सके।'' वैश्वीकरण, फैलते संपर्क, सांस्कृतिक मेलजोल और आर्थिक अंतरनिर्भरता से उत्पन्न वर्तमान शब्दावली में कहा जा सकता है कि

केवल वे लोग जो अपनी ज्ञात पूंजी को बढ़ाते हैं, निश्चित रूप से ऐसी दुनिया में आगे रहेंगे जहां लोग अपनी ज्ञात पूंजी के संबंध में जागरूक नहीं हैं और केवल वित्तीय संसाधनों को सृजित करने पर केंद्रित हैं, अक्सर प्रकृति ने मानव को जो प्रदान किया है उसके अति शोषण में लिप्त रहते हैं। यह वह अंध शोध और शोषण है जिससे उत्तराखंड में प्राकृतिक आपदाएं आईं, मुंबई और चेन्नई में बड़े पैमाने पर मुश्किलें खड़ी की। दिल्ली के वासिंदे और यहां के आगंतुक जिस हवा में सांस लेते हैं वह बहुत खतरनाक है और बच्चों के लिए नुकसानदायक है लेकिन इसे और अधिक प्रदूषित करने का कार्य अबाध रूप से जारी है। यह एक मूल्यहीन विकास है जिसने व्यावहारिक रूप से प्राकृतिक जलाशयों, नदियों को समाप्त कर दिया है और इस धरती पर नदियों में सबसे अधिक पूजनीय मां गंगा को भी नहीं छोड़ा है। क्या यह मूल्यों के क्षरण की ओर इशारा नहीं करता है जो कि अब मानव जाति के अस्तित्व पर ही संकट बन गया है? परिस्थिति की विडंबना यह है कि यह सब तब घटित हो रहा है जब विश्व और भारत बढ़ी हुई साक्षरता दरों और प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण में बड़ी उपलब्धियों की बातें कर रहे है। परिस्थिति, शिक्षा को समग्र रूप से अपने उद्देश्यों को पाने के लिए उपचारात्मक कदम उठाने की गारंटी देता है। नेल्सन मंडेला ने इसे बहुत व्यापकता से इस तरह व्यक्त किया है, ''शिक्षा सबसे शक्तिशाली हथियार है जिसे आप दुनिया को बदलने के लिए प्रयोग कर सकते हैं।'' उस दिशा में शिक्षा को 'शरीर, मस्तिष्क और भावना' से सर्वश्रेष्ठ निकालकर बाहर लाना होगा। सोच, क्रिया और कार्य के जरिए विकास के मार्ग पर समग्र व्यक्तित्व विकास के लिए परिवार, समुदाय और शिक्षा के स्तर पर पहल की जरूरत होती है।

हम क्या कर सकते हैं?

भारत की आजादी का संघर्ष कई प्रकार से अद्वितीय था, सबसे उत्कृष्ट व्यक्ति के रूप में महात्मा गांधी की उपस्थिति और सत्य की खोज में उनकी परम श्रद्धा से वह सब मिला जो मिल सकता था। उन्होंने इस सब को केवल एक वाक्य में स्पष्ट कर दिया, ''मेरा जीवन ही मेरा संदेश है''। अपने स्वयं के उदाहरण और कार्यों से, उन्होंने करोड़ों भारतीयों को मूल्यपरक जीवन जीने, जरूरतमंदों की सेवा के लिए उनकी जरूरतों को समझने और अंततः देश और देशवासियों के लिए सर्वस्व न्यौछावर कर देने के लिए तैयार रहने के लिए प्रोत्साहित किया। निम्न साक्षरता और संचार के लघु साधनों तथा प्रिंट मीडिया की अल्प उपस्थिति के उन दिनों में कैसे गांधीवादी विचारों और मूल्यों को देश के प्रत्येक कोने तक तेजी से फैलाया जाए, इसमें लोगों को रुचि थी। इससे उन लोगों के साथ व्यक्तिगत संवाद का जन्म हुआ जिन्हें गांधी जी के साथ स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने की उत्कट इच्छा थी। ऐसे में गांधी जी के विचारों को फैलाने में स्कूल के शिक्षकों की भूमिका वास्तव में बहुत ही महत्वपूर्ण थी। उन्होंने खादी के उपयोग को प्रचारित किया और इससे अपरिग्रह के सिद्धांत को बल मिला। अपरिग्रह का अर्थ था कोई भी ऐसा व्यक्ति जो अपनी जरूरतों और आवश्यकताओं को सीमित करता है, निश्चित रूप से भ्रष्टाचार नहीं करेगा क्योंकि इसमें केवल वही फंसते हैं जो अधिक से अधिक की चाहत करते हैं। महात्मा गांधी जिस प्रकार के महान द्रष्टा थे, वह देख सकते थे कि यदि शासन तंत्र और विशेष तौर पर लोगों के द्वारा जरूरी कदम नहीं उठाए गए तो भविष्य में मूल्य क्षरण के क्या परिणाम हो सकते हैं। यंग इंडिया में 1925 में उन्होंने सात सामाजिक पापों को प्रकाशित किया था:

यह एक मूल्यहीन विकास है जिसने व्यावहारिक रूप से प्राकृतिक जलाशयों, नदियों को समाप्त कर दिया है और इस धरती पर नदियों में सबसे अधिक पूजनीय मां गंगा को भी नहीं छोड़ा है। क्या यह मूल्यों के क्षरण की ओर इशारा नहीं करता है जो कि अब मानव जाति के अस्तित्व पर ही संकट बन गया है? परिस्थिति की विडंबना यह है कि यह सब तब घटित हो रहा है जब विश्व और भारत बढ़ी हुई साक्षरता दरों और प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण में बड़ी उपलब्धियों की बातें कर रहे है।

- नैतिकता के बिना व्यापार, • चरित्र के बिना शिक्षा, • चेतना के बिना खुशी, • सिद्धांत के बिना राजनीति, • मानवता के बिना विज्ञान, • कार्य के बिना धन, • सेवा के बिना पूजा

ये सात प्रत्येक देश के योजनाकर्ता और क्रियान्वयनकर्ता के लिए व्यापक दिशानिर्देश प्रस्तुत करते हैं। भारत को यह स्वीकार करने की जरूरत है कि जब तक वह कार्यरूप में मूल्य-आधारित समाज का मॉडल प्रस्तुत नहीं करता है, तब तक अध्यात्म के क्षेत्र में विश्व का नेतृत्व करने का उसका सपना दूर का सपना बना रहेगा। उपरोक्त सातों पापों को 'सात व्यक्तिगत क्रिया कलापों' में बदलने, इन वाक्यों में 'के बिना' के स्थान पर 'साथ' रख देने से आश्चर्यजनक बदलाव देखने को मिलेगा। यदि एक बार गंभीर पहल और प्रयास से लोगों को इन संकेतकों के आधार पर जीवन जीने के लिए शिक्षित और निर्देशित किया जाए तो, कार्य स्थलों पर कार्य की संस्कृति के आयामों में, शैक्षिक संस्थानों के वातावरण में बदलाव की भांति परिवर्तन देखा जा सकता है। प्रत्येक आदमी, प्रत्येक पेशेवर, प्रत्येक माता-पिता को भारत को बदलने में उनकी भूमिका का एहसास कराया जाना चाहिए। दिनचर्या के आधार पर सभी अपना मूल्यांकन करें कि आज हमने दूसरों के लिए क्या किया है, समुदाय और अपने देश के लिए मैंने क्या किया है और आज मैंने कौन-सी गलती की है जिससे सत्य के मार्ग की अवहेलना होती है? इसमें लोगों को उनके जन्मजात क्षमताओं से युक्त होने देने का और एक निर्णायक भूमिका निभाने का सामर्थ्य है। हां, प्रत्येक व्यक्ति दूसरे के लिए आदर्श बन सकता है। यह घर से स्कूल और स्कूल से कार्य स्थल तक अत्यधिक, रचनात्मक और सहयोगात्मक जीवन के लिए एक वातावरण तैयार करेगा। शिक्षा को, प्रत्येक व्यक्ति को एक व्यक्तित्व में बदलने पर केंद्रित व्यक्तिगत कार्य योजना के लिए वातावरण तैयार करने में सहायता हेतु इस चुनौती को स्वीकार करने देना चाहिए। ❑

संदर्भ

1. लर्निंग: द ट्रेजर विदिन, यूनेस्को पब्लिशिंग, पेरिस, 1996
2. सेवन सोशल सिन्स, जे. एस. राजपूत, एलाईड पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2014
3. प्लेटो, रिपब्लिक, वड्र्सवर्थ क्लासिक्स ऑफ वर्ल्ड लिटरेचर, लंदन, 1987
4. इंस्टीट्यूशनल लीडरशीप एंड एकेडमिक एक्सिलेंस, जे. एस. राजपूत, भावनगर यूनिवर्सिटी, 2015
5. एजुकेशन शुड एम फॉर सोशल कोहेशन, रिलिजियस अमिटी, जे. एस. राजपूत, न्यू इंडियन एक्सप्रेस, 1 नवंबर, 2015
6. यंग इंडिया, 22 अक्टूबर, 1925
7. फ्रूडेंस इन प्रिज्म, इजेकिल इस्साक मलेकर, 2015, विविड एक्सप्रेशन्स पब्लिशर्स, नोएडा

महिला एवं बालिका शिक्षा: भारतीय परिदृश्य

विमला रामचंद्रन

पाठ्य-पुस्तकों में पुरुषों, महिलाओं तथा जाति विशेष के लिए विशेष काम-काज के बारे में दकियानूसी विचार अब भी जारी हैं और चित्रों, वाक्यों तथा उदाहरणों में झलकते हैं। शहरी और ग्रामीण रूढ़ियों को बढ़ावा ही नहीं दिया जाता बल्कि शहरी रूढ़ियों को ग्रामीण रूढ़ियों से और गैर आदिवासी को आदिवासी की अपेक्षा बेहतर दिखाया भी जाता है। अधिकतर उदाहरण शहर केंद्रित होते हैं। नायक एवं नेता पुरुष ही होते हैं और देख-भाल करने एवं घर संभालने वाली हमेशा महिला ही होती हैं जबकि शिक्षा उन व्यवस्थाओं का अटूट अंश है, जो बच्चों के जीवन को तय करती हैं

सर्वविदित है कि शिक्षा में लैंगिक समानता और बालिकाओं को प्राथमिक शिक्षा की उपलब्धता को प्रोत्साहन दिए जाने पर तीन अंतर्संबंधित मुद्दों: शिक्षा एवं अर्थव्यवस्था, समाज एवं संस्कृति की सर्वांगीणता, सामग्री एवं प्रक्रिया का प्रभाव होता है (जैसा नीचे ग्रिड में दिखाया गया है)। इस मुद्दे को अब दोहराने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि अब यह मुख्यधारा के विश्लेषण का अटूट अंग बन चुका है।

इस तथ्य को लगभग एकमत से स्वीकार किया जाता है कि लैंगिक अंतराल को एक श्रेणी के रूप में वृहत्तर सामाजिक, क्षेत्रीय एवं स्थानिक संदर्भ में देखे जाने की आवश्यकता है। भारत प्रचुर विविधता वाली भूमि है और अत्यधिक विषमता वाला देश भी है। सामाजिक-आर्थिक असमानताओं एवं लैंगिक संबंधों का अंतर्निहित संबंध एक जटिल जाल तैयार करता है, जो स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने की बालिकाओं की क्षमता को या तो बढ़ाता है या उसमें बाधा उत्पन्न करता है। यद्यपि आर्थिक विषमताएं एवं सामाजिक असमानताएं निश्चित रूप से महत्वपूर्ण हैं किंतु कई शोधकर्ता तर्क देते हैं कि सांस्कृतिक विश्वास एवं रीतियां तथा क्षेत्रीय विशेषताएं महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं (कॉक्लो एवं अन्य, 2000)।

इसलिए भारत में गरीबी, सामाजिक असमानता एवं लैंगिक संबंधों के अंतर्जाल को समझना महत्वपूर्ण है। ये तीनों देश के अलग-अलग हिस्सों में अलग-अलग तरीके से एक दूसरे के संपर्क में आती हैं- कहीं इनमें से एक घटक दूसरे को बढ़ावा देता है और कहीं वह उसके प्रभाव को कम करता है। इसे समझना और सुलझाना आज की सबसे बड़ी चुनौती है। इस संदर्भ में निम्नलिखित बातों को स्वीकार करने की आवश्यकता है–

- नामांकन, उपस्थिति एवं शिक्षा पूर्ण करने के मामले में शहरों एवं गांवों का अंतर पुरुष-महिला अंतर से अधिक है।
- पिछड़े-अगड़े इलाकों के अथवा क्षेत्रीय अंतर लैंगिक एवं सामाजिक समूहों के अंतर की तुलना में कहीं अधिक हैं।
- अत्यंत गरीब परिवारों (गरीबी की रेखा से नीचे) एवं उच्चतम तबके के बीच विषमता लैंगिक, सामाजिक तथा क्षेत्रीय अंतरों की अपेक्षा बहुत अधिक है।
- सामाजिक समूहों विशेषकर जनजातीय समुदायों, मुसलमानों एवं अनुसूचित जातियों के विशेष उपसमूहों और अगड़ी जातियों/ईसाइयों एवं अन्य धर्मों के बीच बहुत अधिक अंतर है।
- समुदायों के बीच अंतर अक्सर समुदायों के भीतर व्याप्त अंतरों जितने गंभीर हैं। उदाहरण के लिए कुछ जनजातियों में साक्षरता का स्तर अन्य से बेहतर है और कुछ दलित समूहों में यह स्तर अन्य दलित समूहों से बेहतर है।

1990 के दशक में शिक्षा में लैंगिक अंतर का अधिकतर विश्लेषण स्कूलों के प्रावधान (उपलब्धता/आपूर्ति) एवं ''मांग'' को मापने से अर्थात् यह जानने से आरंभ हुआ था कि परिवार अपने बच्चों विशेषकर लड़कियों को

लेखिका प्राथमिक शिक्षा, बालिका शिक्षा और महिला सशक्तीकरण पर काम कर रही है। वह मानव संसाधन विकास मंत्रालय की परियोजना *महिला सांख्य* की प्रथम राष्ट्रीय परियोजना निदेशक रहीं। उन्होंने शिक्षा विषय पर काम करने वाले शोधकर्ताओं व पेशेवरों का एक नेटवर्क एजुकेशनल रिसोर्स यूनिट के नाम से स्थापित किया है। वह राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन एवं प्रसारण विश्वविद्यालय (न्यूपा) में शिक्षक प्रबंधन की प्रध्यापिका तथा नेशनल फेलो रही हैं। ईमेल: erudelhi@gmail.com

स्कूल भेजने के लिए कितने तैयार हैं। किंतु जैसे-जैसे समय बीता, यह अनुभव किया गया कि शिक्षा के लिए आपूर्ति एवं मांग को अलग नहीं किया जा सकता, जब भी स्कूल पहुंच के भीतर होते हैं और वे स्कूल नियमित होते हैं एवं अच्छी तरह काम कर रहे होते हैं तो मांग बढ़ जाती है (रेखा वजीर)। इसी तरह जहां स्कूल गड़बड़/घटिया थे, जिनमें ज्यादा शिक्षण नहीं होता था और जहां समुदायों को यह विश्वास नहीं था कि स्कूल उनकी बेटियों के लिए सुरक्षित हैं, वहां मांग एकदम कम हो गई। यह माना गया कि अच्छी तरह कार्य करने वाले स्कूल पारिवारिक निर्णयों को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण घटक हैं (रामचंद्रन एवं अन्य, (स्नेक्स एंड लैडर्स) 2004, सुब्रमण्यन, 2002, प्रोब 1999)। स्कूल के भीतर होने वाली घटनाओं का अनुसंधान एवं शिक्षकों तथा अपेक्षाकृत अगड़े सामाजिक समूहों से आने वाले बच्चों के रवैये एवं व्यवहार संबंधी तथ्य

शिक्षा में लैंगिक अंतराल की समस्या का समाधान आसान नहीं है। असमानता की परतों एवं जाति तथा समुदाय आधारित लामबंदी की बढ़ती घटनाओं को देखते हुए नामांकन एवं बदलाव के मानक सूचकों से परे जाने एवं स्कूलों में बच्चों के अनुभव को गहराई से देखने की आवश्यकता है।

इस बात को प्रभावित करते हैं कि सामाजिक रूप से वंचित वर्गों के बच्चे स्कूल में रहने के लिए कितने तैयार होते हैं (रॉबर्ट जेनकिंस, 2005, गीता नांबिसन 1996, 2000 एवं 2001, विमला रामचंद्रन तथा तारामणि नौरेम, 2013)। एमवी फाउंडेशन जैसे गैर सरकारी संगठनों के अनुभव उत्पादक तथ्यों पर प्रकाश डालते हैं और पिछले कई वर्षों में यह जांचने की जरूरत महसूस की गई है कि कक्षा के भीतर होने वाले व्यवहार, शिक्षकों/प्रशासकों के रवैये एवं पूर्वग्रह तथा पाठ्यक्रम से सामाजिक भेदभाव/पक्षपात की गतिविधियों एवं लैंगिक रूढ़ियों को बढ़ावा तो नहीं मिल रहा (एनसीएफ पोजीशन पेपर 3.2, एनसीईआरटी 2005, विमला रामचंद्रन, 2004)। जोमतिएन (थाईलैंड) में 1990 के ईएफए सम्मेलन के 24 वर्ष बाद अब यह माना जाता है कि शैक्षिक उपलब्धियों में व्याप्त लैंगिक अंतर काफी अधिक है, जो नीचे दी गई तालिका से स्पष्ट होता है।

शिक्षा में लैंगिक अंतराल की समस्या का समाधान आसान नहीं है। असमानता की परतों एवं जाति तथा समुदाय आधारित लामबंदी की बढ़ती घटनाओं को देखते हुए नामांकन एवं बदलाव के मानक सूचकों से परे जाने एवं स्कूलों में बच्चों के अनुभव को गहराई से देखने की आवश्यकता है। शिक्षा में लैंगिक अंतर/लैंगिक समानता की प्रगति मापने वाले उपकरण समाज में व्याप्त तथा वर्तमान शिक्षा व्यवस्था द्वारा बढ़ाई जा रही असमानताओं की बनावट के बारे में बहुत कम बताते हैं। शिक्षा में लैंगिक तथा सामाजिक समानता के मुद्दों को ऐसे ढांचे की आवश्यकता है, जो विषमांगी लैंगिक यथार्थों एवं विविध दोषों को प्रदर्शित कर सके। भारत में लैंगिक असमानता का मुद्दा जटिल सामाजिक एवं संस्थागत ढांचे में उलझा है। इसलिए शिक्षा में लैंगिक असमानताओं को एक ओर सामाजिक, आर्थिक एवं स्थान विशेष संबंधी असमानताओं और दूसरी ओर वर्तमान स्कूल व्यवस्था के व्यापक ढांचे में देखे जाने की आवश्यकता है।

भारत में हम क्या कर सकते हैं?

इस पर सभी सहमत हैं कि अधिक संख्या में स्कूलों, बेहतर बुनियादी ढांचे, सार्वभौमिक नामांकन एवं बेहतर पीटीआर की आवश्यकता है किंतु हम कक्षा में हो रहे वास्तविक शिक्षण एवं पठन के मुद्दे की गहराई नहीं भांप पाते। सार्थक उपलब्धता का अर्थ औपचारिक शिक्षा प्रणाली में भागीदारी के लिए भौतिक साधन उपलब्ध कराना भर नहीं है बल्कि सभी बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर प्रदान करना अधिक महत्वपूर्ण है। बच्चे को स्कूल लाने या स्कूल को बच्चे तक ले जाने से लेकर शिक्षा प्रदान करने की प्रणाली के प्रत्येक चरण में सार्थक उपलब्धता की आवश्यकता है। किसी भी सामाजिक समूह के बच्चों के लिए स्कूल की उपलब्धता सुनिश्चित करने के साथ ही यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि आड़े-तिरछे कौशल सीखने के बजाय यह बच्चों के सीखने एवं अपनी क्षमता को प्राप्त करने के लिए सीखने एवं विकास करने का सुरक्षित स्थान हो। सार्थक उपलब्धता में शिक्षक उपलब्धता भी आवश्यक है, जो सीखने की शैलियों के अनुसार अलग-अलग प्रकार से सहायता करेंगे और उन बच्चों पर विशेष ध्यान देंगे, जिन्हें आगे बढ़ने के लिए सहारे की आवश्यकता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि सार्थक उपलब्धता का अर्थ ऐसा सुरक्षित लैंगिक वर्ग आधारित स्थान प्रदान करना है, जहां किसी को भी मखौल एवं भेदभाव के डर के बगैर अपने सामाजिक समूह के अनुसार निर्मित अपने व्यक्तित्व को तलाशने एवं अभिव्यक्त करने की आजादी मिल सके।

तालिका 1: साक्षरता दरों में विषमता

	2001	2011
अजजा ग्रामीण महिलाएं	32.4	46.9
अजा ग्रामीण महिलाएं	37.6	52.6
सभी ग्रामीण महिलाएं	46.13	57.9
अन्य ग्रामीण महिलाएं	50.2	61.1
अजजा ग्रामीण पुरुष	57.4	66.8
अजजा शहरी महिलाएं	57.5	68.6
अजा शहरी महिलाएं	59.9	70.3
अजा ग्रामीण पुरुष	53.7	72.6
सभी ग्रामीण पुरुष	70.7	77.1
सभी शहरी महिलाएं	72.86	79.1
अन्य ग्रामीण पुरुष	74.3	79.9
अन्य शहरी महिलाएं	75.5	81.0
अजजा शहरी पुरुष	77.8	83.2
अजा शहरी पुरुष	77.9	83.3
सभी शहरी पुरुष	86.27	88.8
अन्य शहरी पुरुष	87.6	89.7

स्रोत: मैरी लाल एवं एस श्रीनिवास राव 2011 से विमला रामचंद्रन द्वारा रूपांतरित

तालिका 2: स्कूल छोड़ने की दरों में श्रेणीवार विषमता, 2011-12

प्राथमिक कक्षा 1 से 5		प्राथमिक कक्षा 1 से 8		माध्यमिक कक्षा 1 से 10	
अजजा लड़के	37.2	अजजा लड़कियां	55.4	अजजा लड़कियां	71.3
अजजा लड़कियां	33.9	अजजा लड़के	54.7	अजजा लड़के	70.6
अजा लड़के	29.8	अजा लड़के	46.7	अजा लड़के	57.4
सभी लड़के	28.7	सभी लड़कियां	41	अजा लड़कियां	54.1
सभी लड़कियां	25.1	सभी लड़के	40.3	सभी लड़के	50.4
अजा लड़कियां	23.1	अजा लड़कियां	39	सभी लड़कियां	47.9

स्रोत: एसईएस, भारत सरकार 2012

सार्थक उपलब्धता से स्कूल छोड़ने की दरें कम हो सकती हैं, शिक्षा, उच्च शिक्षा के विभिन्न स्तरों तक आराम से पहुंचा जा सकता है और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि सभी बच्चों को उत्कृष्ट शिक्षा प्राप्त करने के लिए समान मंच प्रदान किया जा सकता है।

सुरक्षित एवं भेदभाव रहित वातावरण

कहा जाता है कि स्कूल उस समाज का सूक्ष्म रूप होता है, जिसमें हम रहते हैं। समाज में प्रचलित अंतर्वैयक्तिक एवं अंतर्सामूहिक चलन अक्सर स्कूल में भी दिखाई देते हैं। यदि शिक्षकों को पर्याप्त संवेदनशील नहीं बनाया गया है और पर्याप्त प्रशिक्षण नहीं दिया गया है तो उनका व्यवहार और पूर्वाग्रह स्कूल में भी आ सकते हैं। शैक्षिक प्रशासक एवं राजनेता स्कूलों में व्याप्त भेदभाव के लिए इसे बहाना बनाते रहते हैं। इस मामले में हमें उन देशों से बहुत कुछ सीखने की जरूरत है, जिन्होंने इस प्रवृत्ति का सफलतापूर्वक मुकाबला किया है और इस बात पर जोर दिया है कि स्कूलों तथा सार्वजनिक वित्त पाने वाले संस्थानों को संविधान में निर्दिष्ट अधिकारों तथा बाध्यताओं का पालन करना पड़ेगा। भारत के संविधान में स्थापित समानता के अधिकार तथा भेदभाव के विरुद्ध अधिकार को देखते हुए शिक्षकों एवं सभी शिक्षा प्रशासकों का यह कर्तव्य है कि स्कूलों में भेदभाव रहित वातावरण सुनिश्चित हो। शिक्षकों एवं प्रधानाध्यापकों को जाति, धर्म, लिंग, क्षमता एवं आर्थिक स्तर के आधार पर भेदभाव करने की आजादी नहीं है।

भारत के संविधान को निर्देशक तत्व मानते हुए शिक्षकों, प्रशासकों और सामुदायिक नेताओं को यह बताए जाने की आवश्यकता है कि असमानता के अधिकार और भेदभाव के विरुद्ध अधिकार का उल्लंघन किए जाने पर कठोर दंडात्मक कार्रवाई होगी। उन सभी को बिना समझौते वाली आचार संहिता समझाए जाने की आवश्यकता है, जो स्कूली शिक्षा से जुड़े हैं। यह काम में लिखित में होना चाहिए और सभी स्कूलों तथा शिक्षा संस्थानों में प्रमुखता से प्रदर्शित किया जाना चाहिए। इसके साथ ही बच्चों विशेषकर लड़कों को ऐसी गतिविधियों में शामिल किया जाना चाहिए, जिनसे उन्हें विविधता को समझना और सराहना, असहमति का आदर करना आ सके तथा अन्य बच्चों और लड़कियों के प्रति व्यवहार के स्कूली नियम बनाना आ सके। समतामूलक वातावरण तैयार करने में बच्चों को शामिल करने से शिक्षकों, प्रशासकों एवं स्थानीय नेताओं पर भी भेदभाव नहीं करने का नैतिक दबाव पड़ सकता है (रामचंद्रन एवं नौरेम, 2014)।

आज शिक्षकों का अनुकूलन एवं प्रशिक्षण प्रशासनिक जरूरतों एवं विषय के ज्ञान तक सीमित रहता है। शिक्षकों में प्रशिक्षण की अति और थकान हो जाने के प्रमाण भी बढ़ रहे हैं। इसके साथ ही कम अवधि के प्रशिक्षण कार्यक्रम विषय की मौलिक जानकारी एवं अध्यापन कला से जुड़े मुद्दों के साथ न्याय नहीं कर पाते हैं। स्कूलों को भेदभाव मुक्त बनाने के लिए शिक्षकों एवं सामुदायिक नेताओं के बीच बातचीत हेतु वैकल्पिक मंच बनाना अच्छा कदम साबित हो सकता है। वास्तव में हमें धरातल पर स्थाई परिवर्तन लाने के लिए स्कूलों में भेदभाव पर गंभीरता से विचार करने और सभी स्तरों पर कार्य करने की आवश्यकता है। कोई छोटा रास्ता नहीं है और सरकार तथा नागरिक समाज के संगठनों को इस मुद्दे पर गंभीरता से विचार करने एवं प्रत्येक संदर्भ में इस पर कार्य करने की आवश्यकता है (रामचंद्रन एवं नौरेम 2013)।

भारत के संविधान को निर्देशक तत्व मानते हुए शिक्षकों, प्रशासकों और सामुदायिक नेताओं को यह बताए जाने की आवश्यकता है कि असमानता के अधिकार और भेदभाव के विरुद्ध अधिकार का उल्लंघन किए जाने पर कठोर दंडात्मक कार्रवाई होगी। उन सभी को बिना समझौते वाली आचार संहिता समझाए जाने की आवश्यकता है, जो स्कूली शिक्षा से जुड़े हैं। यह काम लिखित में होना चाहिए और सभी स्कूलों तथा शिक्षा संस्थानों में प्रमुखता से प्रदर्शित किया जाना चाहिए।

पूर्वाग्रह मुक्त पाठ्यक्रम व लैंगिक संवेदनशीलता पर आधारित ज्ञान विकास

''अपनी स्कूली किताबों में मैंने जाना
कि पुरुष ही होते हैं राजा और सिपाही।
जब तक मैंने वह किताब नहीं पढ़ी,
जिसमें मशहूर रानी करती थी राज
और लड़ती थी दुश्मनों से।
अपनी स्कूली किताबों में मैंने पढ़ा
कि पुरुष ही होते हैं डॉक्टर।
जब मैं डॉक्टर के पास गई
तो देखा कि वह थी एक महिला।
अपनी स्कूली किताबों से मैंने जाना
कि मेरे देश में पुरुष ही करते हैं खेती,
तब तक,
जब तक मैंने ट्रेन में सफर करते हुए
महिलाओं को नहीं देखा था
खेतों में काम करते हुए।
मैंने सीखा है कि मुझे
देखकर ही पता चलेगी असली बात।''

(वडोदरा में कक्षा 7 के विद्यार्थी पूजा, रम्या, अनुज और उत्कर्ष की पंक्तियां शिक्षा में लैंगिक असमानता मसलों पर एनसीएफ 2005 फोकस समूह में उद्धृत की गईं। एनसीईआरटी, 2005)

हमारी पाठ्यपुस्तकों को खुल्लम-खुल्ला और गुपचुप पूर्वाग्रहों एवं रूढ़ियों से मुक्त कराने के मुद्दे पर दो दशकों से शोरशराबा हो रहा है लेकिन वास्तविकता यही है कि हमारी पाठ्यपुस्तकें लैंगिक असमानताओं एवं सामाजिक ऊंच-नीच की बातों को बढ़ावा देती हैं। पुरुषों के योग्य और महिलाओं के योग्य तथा जाति विशेष के योग्य काम-काज के बारे में दकियानूसी विचार अब भी जारी हैं और हमारी पाठ्यपुस्तकों में चित्रों, वाक्यों तथा उदाहरणों में झलकते हैं। शहरी और ग्रामीण रूढ़ियों को बढ़ावा ही नहीं दिया जाता बल्कि शहरी रूढ़ियों को ग्रामीण रूढ़ियों और गैर आदिवासी को आदिवासी की अपेक्षा बेहतर दिखाया भी जाता है। विभिन्न विषयों में अधिकतर उदाहरण शहर केंद्रित होते हैं। नायक एवं नेता पुरुष ही होते हैं और देख-भाल करने एवं घर संभालने वाली हमेशा महिला ही होती हैं। इस यथार्थ को देखते हुए एनसीएफ 2005 फोकस समूह ने तर्क दिया कि, शिक्षा उन व्यवस्थाओं का अटूट अंश है, जो बच्चों के जीवन को तय करती हैं।

इसीलिए स्थाई एवं समान नागरिकता प्राप्त करने हेतु पाठ्यक्रम एवं अध्यापन कला संबंधी विशेष रणनीतियां तैयार करनी होंगी ताकि बच्चों विशेषकर लड़कियों को कमियों से उबरने एवं अपने अधिकारों तथा पसंदों का प्रयोग करने की क्षमता विकसित करने का मौका मिल सके। लक्ष्य यह है कि व्यवहार में औपचारिक समानता भर न हो बल्कि स्थाई समानता प्राप्त हो। वास्तव में हमें व्यवहार में असमानता की आवश्यकता भी पड़ सकती है अर्थात् सामाजिक

रूप से वंचित छात्रों को विशेष सुविधाएं देनी पड़ सकती हैं ताकि वे समानता के स्तर तक पहुंच सकें। (एनसीएफ 2005, शिक्षा में लैंगिक असमानता मुद्दों पर फोकस समूह)

इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु शिक्षकों एवं पाठ्यक्रम बनाने वालों, पाठ्यपुस्तकें लिखने वालों, शिक्षकों को प्रशिक्षण देने वालों एवं स्कूलों की निगरानी करने वालों को समानता के स्थाई एवं सटीक रवैये को अपनाना होगा। व्यवहार की समानता एवं परिणाम की समानता पर जोर देने की ही आवश्यकता नहीं है। पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकें समतामूलक मूल्यों एवं विविधता तथा असहमति के सम्मान और भेदभाव के प्रति सतर्क रहना सिखा भर सकती हैं। लड़कों को यह सिखाए जाने की आवश्यकता है दूसरों का सम्मान करना चाहिए और किसी के इनकार का सम्मान करना चाहिए। यौन दुर्व्यवहार (जिसे छेड़छाड़ का अनुचित नाम दिया गया है) की घटनाओं से लड़ने के लिए यह आवश्यक है। इसके साथ ही मर्दाना (पुरुष संबंधी) एवं जनाना (महिला संबंधी) के फर्क पर भी सवाल खड़े करने की आवश्यकता है।

ऐसे रवैये से शिक्षकों को यह समझने में मदद मिलेगी कि लड़कियों और लड़कों के बीच लिंगभेद कोई पूर्वानुमान नहीं है और इससे उन्हें ''इसके पीछे के विचारों का पता लगाने, इसके कारण होने वाले नुकसान समझने तथा उन नुकसानों को खत्म करने वाले ''अलग'' प्रकार के व्यवहार को विकसित करने में मदद मिलेगी। लड़कियां भी लैंगिक समाजीकरण के घेरे में रहती हैं, जो जातियों, जनजातियों एवां समुदायों तथा शहरी-ग्रामीण भेद के अनुसार अलग-अलग होता है। इससे अलग प्रकार की आकांक्षाएं, क्षमताएं एवं आत्मविश्वास का स्तर तैयार होता है। समानता का यह प्रयास सीखने वालों को कमियों से उबरने, अपनी अलग क्षमताओं का मूल्य समझने तथा अपना सर्वांगीण विकास करने में मदद करने वाले तरीकों में अंतर को दूर करता है...'' (एनसीएफ 2005, शिक्षा में लैंगिक असमानता मसलों पर फोकस समूह)

निष्कर्ष

काफी कुछ और कहा जा सकता है तथा उन मुद्दों की और लंबी सूची बनाई जा सकती है, जिनसे शिक्षा में महिलाओं की प्रतिभागिता

लड़कियां भी लैंगिक समाजीकरण के घेरे में रहती हैं, जो जातियों, जनजातियों एवं समुदायों तथा शहरी-ग्रामीण भेद के अनुसार अलग-अलग होता है। इससे अलग प्रकार की आकांक्षाएं, क्षमताएं एवं आत्मविश्वास का स्तर तैयार होता है। समानता का यह प्रयास सीखने वालों को कमियों से उबरने, अपनी अलग क्षमताओं का मूल्य समझने तथा अपना सर्वांगीण विकास करने में मदद करने वाले तरीकों में अंतर को दूर करता है।

तय होती है। पिछले पचास वर्षों में विभिन्न आयोगों और समितियों ने मुद्दों और चिंताओं की सूची तैयार की है और तमाम तरह की रणनीतियां भी बताई गई हैं। जब मैंने विचार किया कि ये सिफारिशें और रणनीतियां लागू क्यों नहीं हो सकीं तो मुझे महसूस हुआ कि सबसे पहले हमें कुछ सूत्रों और सिद्धांतों पर सहमत होना पड़ेगा, जिनसे समझौता नहीं किया जाएगा। यदि उन पर टिका गया तो अन्य घटकों के भी सही होने की संभावना बढ़ जाएगी। इसी को ध्यान में रखते हुए मैंने केवल तीन मुद्दों पर जोर दिया: शिक्षा की सार्थक उपलब्धता, भेदभाव से मुक्ति तथा ज्ञान के विकास में लैंगिक संवेदनशीलता को प्रमुख स्थान देना। यदि हम इन तीनों पर जोर दे सके तो संभवत: हम व्यापक लैंगिक समानता एवं सामाजिक न्याय की ओर बढ़ना आरंभ कर सकेंगे। ❑

संदर्भ

''विषमांगी लैंगिक वास्तविकताएं एवं विविध हानियां'' वाक्यांश एनसीईआरटी की रिपोर्ट 3.2 - नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क 2005, पोजीशन पेपर ऑन जेंडर इश्यू इन एजूकेशन, नई दिल्ली, 2005 से लिया गया है। इस पेपर में एनयूईपीए द्वारा 2007 में आरंभ किए गए ईएफए मध्य दशक आकलन तथा देवकी जैन एवं सी पी सुजय द्वारा संपादित इंडियन विमेन रिविजिटेड में प्रकाशित जेंडर्ड इनइक्वैलिटी इन एजुकेशन का मिला-जुला रूप है। इसे भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के प्रकाशन विभाग ने 2014 में प्रकाशित किया।

i ''भारत में विभिन्न सामाजिक समूहों में खुशी का अर्थ बहुत अलग होता है... पूरे भारत में अनुसूचित जाति/जनजाति की प्रति व्यक्ति औसत आय अन्य वर्गों की अपेक्षा एक तिहाई कम है। अन्य (1999/2000 में गैर वंचित वर्गों) में गरीबी 16 प्रतिशत थी, अल्पसंख्यकों (मुसलमानों) में 30 प्रतिशत, अनुसूचित जाति में 36 प्रतिशत तथा जनजाति में 44 प्रतिशत थी।... वंचित वर्गों में साक्षरता भी अन्य वर्गों से कम थी।... सामाजिक रूप से बहिष्कृत वर्गों में नवप्रसूता, प्रसवोपरांत, नवजात तथा पांच वर्ष से कम उम्र के बच्चों की मृत्यु दर अन्य सूचकों (जैसे अनुसूचित जाति एवं जनजाति में वंचित वर्गों के लिए शिशु मृत्यु दर लगभग 84 और 62 हैं) के समान ही थी।'' अर्जन डी हान: डिसपेयरिटीज विदइन इंडियाज पुअरेस्ट रीजन्स: व्हाई डू द सेम इंस्टीट्यूशन्स वर्क डिफरेंटली इन डिफरेंट प्लेसेज?, इक्विटी एंड डेवलपमेंट: वर्ल्ड बैंक डेवलपमेंट रिपोर्ट 2006 बैकग्राउंड पेपर्स, विश्व बैंक, वाशिंगटन डीसी, 2004।

ii **सी कोलक्लो, पी रोज एवं एम टेंबन:** जेंडर इनइक्वैलिटीज इन प्राइमरी स्कूलिंग: दि रोल्स ऑफ पॉवर्टी एंड एडवर्स कल्चरल प्रैक्टिसेज: इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशनल डेवलपमेंट, अंक 20, 2000, पृष्ठ: 5-27

iii **लैला कबीर और रम्या सुब्रममण्यम** ने ''लिंग के कारण हानियों'' पर जोर दिया, जिनमें ''विशेष नुकसान होते हैं, जिनका सामना लड़कियां करती हैं, लड़के नहीं और कहा कि उन्हें स्वीकार करना महत्वपूर्ण है और ये नुकसान नुकसान श्रम के लिंग आधारित विभाजन के कारण लड़कियों के हिस्से आने वाली भूमिकाओं, उनके प्रजनन चक्र तथा उनको यौन हिंसा के खतरे के अनुमान से संबंधित होते हैं। इन लिंग आधारित नुकसानों कबीर एवं सुब्रमण्यम, 1999) को पहचाने जाने की तथा उन लिंग आधारित नुकसानों से अलग करने की आवश्यकता है, जिन नुकसानों का उपयोग समुचित सामाजिक नीतियां बनाने में किया जाता है।...'' रम्या सुब्रममण्यम, यूएनआरआईएसडी, 2002।

iv **रेखा वजीर,** 2000

v **रम्या सुब्रममण्यम:** अ रिव्यू ऑफ इश्यूज फॉर सोशल पॉलिसी, यूएनआरआईएसडी, जिनेवा, 2002, प्रोब, 1999)

vi **गीता बी नांबिसन, 1996:** इक्विटी इन एजूकेशन? स्कूलिंग ऑफ दलित चिल्ड्रन इन इंडिया, इकनॉमिक एंड *पॉलिटिकल वीकली*, अंक 31 (16-19): 1011-1024, 20-27 अप्रैल, 1996। गीता बी नांबिसन (2000): 'डीलिंग विद डेप्रिवेशन', सेमिनार, सितंबर, संख्या 493, पृष्ठ 9। गीता बी नांबिसन (2001): ए वैद्यनाथन एवं पी आर गोपीनाथ नायर द्वारा संपादित एलीमेंट्री एजूकेशन इन रूरल इंडिया: अ ग्रासरूट व्यू, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली में प्रकाशित 'सोशल डाइवर्सिटी एंड रीजनल डिसपेयरिटी इन स्कूलिंग: अ स्टडी ऑफ रूरल राजस्थान' तथा विमला रामचंद्रन एवं तारामणि नौरेम, नवंबर 2013 - व्हाट इट मीन्स टु बी अ दलित ऑर ट्राइबल चाइल्ड इन अवर स्कूल्स: अ सिंथेसिस ऑफ सिक्स स्टैट क्वालिटेटिव स्टडी: इकनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 2 नवंबर, 2013।

vii ***मैरी लाल तथा गीता बी नांबिसन*** *की एजूकेशन एंड सोशल जस्टिस इन द ईरा ऑफ ग्लोबलाइजेशन: पर्सपेक्टिव फ्रॉम इंडिया एंड द यूके में 2011 में प्रकाशित मैरी लाल एवं एस श्रीनिवास राव का रिविजिटिंग द इक्विटी डिबेट इन इंडिया एंड द यूके: कास्ट, रेस एंड क्लास इंटरसेक्शन्स इन एजूकेशन, रूटलेज, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ संख्या 34।*

भारत में समावेशी शिक्षा की रूपरेखा

अनुप्रिया चड्ढा

छात्रों की शैक्षणिक आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रमों को बनाने की जरूरत को देखते हुए ऐसे कोर्स लाने की दिशा में कदम उठाए जा रहे हैं जिसमें सभी विषयों का समावेशन हो। आमतौर पर पाठ्यक्रमों में लैंगिक, जातीय, भाषाई भेदों आदि विषयों से जुड़े मुद्दों की उपेक्षा की जाती है। वर्तमान समय की जरूरतों और चुनौतियों को पूरा करने के लिए एक ऐसे विशिष्ट समावेशी शैक्षिक पाठ्यक्रम की आवश्यकता है जो आम और खास दोनों ही तरह के शैक्षिक पाठ्यक्रमों में मार्गदर्शक साबित हो सके। इस दिशा में निरंतर और व्यापक मूल्यांकन के नवीन दृष्टिकोण को एक सकारात्मक कदम के रूप में देखा जा रहा है

समावेशी शिक्षा केवल एक दृष्टिकोण ही नहीं बल्कि एक माध्यम भी है, विशेषकर उन लोगों के लिए जिनमें कुछ सीखने की ललक होती है और जो तमाम अवरोधों के बावजूद आगे बढ़ना चाहते हैं। यह इस बात को दर्शाता है कि सभी युवा चाहे वो सक्षम हो या विकलांग... उन्हें सीखने योग्य बनाया जाए। इसके लिए एक समान स्कूल पूर्व व्यवस्था, स्कूलों और सामुदायिक शिक्षा व्यवस्था तक सबकी पहुंच सुनिश्चित करना बेहद जरूरी है। प्रशिक्षुओं की जरूरतों को पूरा करने के लिए यह प्रक्रिया सिर्फ लचीली शिक्षा प्रणाली में ही संभव है। समावेशी शिक्षा ऐसी शिक्षा प्रणाली है जिसमें मूल्यों, ज्ञान प्रणालियों और संस्कृतियों में प्रक्रियाओं और संरचनाओं के सभी स्तरों पर समावेशी नीतियों और प्रथाओं के सृजन के माध्यम से बुनियादी मानव और शारीरिक, संवेदनशील, बौद्धिक या स्थितिजन्य हानियों के साथ सभी नागरिक अधिकारों को प्राप्त किया जाता है। स्कूल शिक्षा (एनसीईआरटी, 2005) राष्ट्रीय पाठ्यचर्या ने रूपरेखा, सामग्री, प्रस्तुति और लेन-देन की रणनीतियों में उचित संशोधन करने के लिए शिक्षकों को तैयार करने और अनुकूल मूल्यांकन प्रक्रिया सीखने के विकास के लिए विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं के साथ शिक्षार्थियों के लिए समावेशी स्कूलों की सिफारिश की है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली की खोज

इस संदर्भ में यह जरूरी है कि प्रथाओं और विचारधारा का पता लगाया जाए जो कि समावेशी शिक्षा प्रणाली के सृजन और विचारधारा को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण है। 3R के दृष्टिकोण पर पूरी तरह ध्यान केंद्रित करने के वर्तमान अभ्यास को शिक्षा नहीं एक प्रक्रिया के रूप में देखा जा रहा है। इसे एक उत्पाद के रूप में किया गया है: एक रिपोर्ट से मिलकर मूर्त इनाम, शैक्षणिक वर्ष के अंत में डिग्री के रूप में। इस समय छात्रों को वैश्विक नागरिकों के रूप में योगदान विकसित करने के लिए शिक्षा प्रणाली के समग्र लक्ष्यों का पुनर्गठन करने की तत्काल आवश्यकता है। बच्चे जब स्कूलों में ज्ञान प्राप्ति में असफल हो जाते हैं तब उनके भीतर कुछ गलत अनुभव करने के लिए आकर्षण प्रबल हो जाता है। उस समय यह शिक्षा व्यवस्था कुछ आत्मनिरीक्षण करती है।

'समावेशी शिक्षा' की यह व्याख्या चुनौती देती है समावेशी विद्यालयों की स्थापना के लिए, जहां पर सब एक दूसरे को स्वीकार करे, एक दूसरे का समर्थन करे, और एक दूसरे का सहयोग करे। यहीं नहीं, पाठ्यक्रम में स्कूल समुदाय के सदस्यों को भी शामिल किया जाना चाहिए। जहां पर सबकी जरूरतों को पूरा किया जा सके।

एक ऐसी पारंपरिक पाठशाला जहां वयस्कों द्वारा विद्यार्थियों को शिक्षण की गतिविधियों से संबंधित निर्णय लिए जाते हैं, और इन गतिविधियों से छात्रों को सीखने का अवसर मिलता है। प्रमुख सलाहकार को शिक्षा समेत सर्व शिक्षा अभियान का आकलन करने का अवसर मिलता है इसके जरिए बच्चों को कागज और कलम से यानि पढ़ाई के लिए आकर्षित किया जाता है। अक्सर इसका उद्देश्य अध्यापक और विद्यार्थियों के बीच की कड़ी

लेखिका शिक्षा का अधिकार तथा सर्वशिक्षा अभियान के संदर्भ में समेकित शिक्षा विषय पर राष्ट्रीय स्तर की प्रमुख परामर्शी हैं। उन्होंने समेकित शिक्षा विषय पर कई किताबें और आलेख लिखें हैं। उन्हें विकलांगजनों के हित में सर्वश्रेष्ठ व्यक्तिगत प्रयास के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है। ईमेल: iedtsgssa@gmail.com

को जोड़ना है। इस तरह की पाठशाला की धारणा छात्रों के ज्ञान रूपी भंडार को समृद्ध करना है। दूसरी ओर, समावेशी कक्षाओं में ऐसा माहौल है जिससे बच्चों में स्कूली शिक्षा के अलावा अन्य गतिविधियों से जुड़ने का मौका मिले और समाज में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सके। इससे जुड़े शिक्षक न केवल छात्रों को आधारभूत शिक्षा मुहैया कराए बल्कि लीग से हटकर उन्हें विषयक निर्देशों, सभी भाषाओं का ज्ञान, आलोचनात्मक नजरिए से रूबरू कराने, अपनी समस्याओं का निपटान करने और प्रामाणिक आकलन का अवसर दें।

इसमें कोई शक नहीं है कि जरूरतों में विविधता को पूरा करना एक बहुत बड़ी चुनौती है लेकिन सामाजिक संबंधों को बेहतर बनाने के लिए यह एक अवसर भी है। यह एक व्यक्ति विशेष की समस्या नहीं है बल्कि प्रणाली के लिए शैक्षणिक चुनौती है। इन चुनौतियों का सामना करने का अर्थ है प्रणालियों में सुधार करना ताकि अध्यापक अपने छात्रों को उनके मुकाम तक पहुंचा सके। अगर सही में समावेशी शिक्षा अपनी सार्थक भूमिका निभाती है तो सभी के जीवन में एक उपलब्धि हासिल हो सकती है जो आने वाली चुनौतियों, दिक्कतों, दुविधाओं को दूर करने में मददगार होगी और साथ ही वह बदलाव का संकेत भी दर्शाएगी।

स्कूलों का दायित्व मिश्रित और परस्पर विरोधी होता है जैसे कि उनकी संस्कृति के उत्पाद और उस संस्कृति को बदलने की उनकी अग्रणी जिम्मेदारी। यही कारण है कि समावेशी शिक्षा के लिए चल रहे किसी आंदोलन में स्थानीय समुदाय की भागीदारी आवश्यक होती है। सीखने वालों की विभिन्नता अपने आप में सीखने का विपुल संसाधन होती है।

स्कूलों की पहचान वैश्विक समुदाय के युवा नागरिकों को तैयार करने के सामाजिक अनुभव के प्रमुख आयामों में होनी चाहिए। इस समावेशन में ज्यादा सहिष्णु, सभ्य और बहुल वैश्विक समुदाय के निर्माण में यह सहज हल दिखता है।

स्कूलों का दायित्व मिश्रित और परस्पर विरोधी होता है जैसे कि उनकी संस्कृति के उत्पाद और उस संस्कृति को बदलने की उनकी अग्रणी जिम्मेदारी। यही कारण है कि समावेशी शिक्षा के लिए चल रहे किसी आंदोलन में स्थानीय समुदाय की भागीदारी आवश्यक होती है। सीखने वालों की विभिन्नता अपने आप में सीखने का विपुल संसाधन होती है।

हमउम्र लोगों का साथ-साथ पढ़ना और बच्चों के बीच सहकार्य की भावना सीखने वालों के समुदाय में एक अच्छे संसाधन का काम करता है। सीखने वालों के माता-पिता अपने बच्चों के बारे में अच्छी समझ रखते हैं और ये बात काफी अहम होती है खासकर तब जब सीखने वाले की क्षमता को लेकर उनमें चिंता बनी रहती है।

सभी समुदायों में सीखने के मौके होते हैं, जरूरत बस शिक्षा फैलाने में उनके बेहतर इस्तेमाल की होती है। समावेशन एक बहुत ही अच्छा दर्शन है। असल में सभी पेशेवर डिग्री को लेकर सहमत दिखते हैं लेकिन शिक्षा प्रदान करने का उनका अभ्यास स्कूल दर स्कूल और सच कहें तो शिक्षक दर शिक्षक बदलता रहता है। *वन प्लान फिट्स ऑल* जैसा कोई हल संभव नहीं हो सकता है फिर भी शिक्षा की कुछ निश्चित रणनीतियां हैं जो सामान्य शिक्षा वर्गों के सभी छात्रों की अद्वितीय शैक्षिक, सामाजिक और अनुदेशात्मक जरूरतें पूरी करती हैं।

ये रणनीतियां जरूरी होती हैं ताकि समावेशन सैद्धांतिक और मूल्यों से भरी प्रक्रिया से होते हुए कक्षा अभ्यास तक में झलके। समावेशन को विभिन्नता के लिए प्रावधान बनाना चाहिए। समावेशन की सफलता वर्ग शिक्षक के हाथ में निहित होती है जो शैक्षिक बदलाव और स्कूली वातावरण की सर्वश्रेष्ठ कुंजी है। शिक्षक ही निर्मित शैक्षिक वास्तुस्थिति में तय नीतियों को लागू करने में अग्रणी भूमिका निभाते हैं। इसके लिए सोच में बदलाव की जरूरत है जहां शिक्षा से जुड़े सभी सदस्यों को उनमें मतभेद के बावजूद मूल्यवान बनाना होगा। शिक्षकों को इस विश्वास की गांठ बांध लेनी होगी कि सभी छात्र सीख सकते हैं और विभिन्न पृष्ठभूमि वाले छात्रों की सफलता के लिए योजना बनानी होगी। यह जरूरी है कि शिक्षक कक्षा में विभिन्न योग्यता वाले छात्रों को स्वीकारें, उन्हें पहचानें और उनका उत्सव मनाएं। दूसरे शब्दों में कहें तो शिक्षकों को चाहिए कि विभिन्नता को स्वीकारते हुए कक्षा में बच्चों को सिखाने के मामले में जिसकी जैसी जरूरत उनको वैसी शिक्षा के सिद्धांत को बढ़ावा दें। एक समावेशी कक्षा में प्रभावी शिक्षण के माध्यम से अलग पृष्ठभूमि और जरूरतों के साथ शिक्षण रणनीतियों की मांग को समायोजित कर सकते है। कक्षा के भीतर तीन महत्वपूर्ण क्षेत्रों में ये रणनीतियां अहम हो जाती है वह हैं–

- सीखने के संदर्भ में
- सीखने की सामग्री
- शिक्षण सीखने की प्रक्रिया
- शिक्षा का संदर्भ

अगर समावेशी रूप में देखा जाए तो शिक्षा को लेकर दोतरफा प्रक्रिया जिसमें बढ़ती भागीदारी और सीखने और शिक्षा ग्रहण करने वाले की भागीदारी के सामने बाधाएं हटाने को लेकर शिक्षा के संदर्भ में योजना बनाना बेहद महत्वपूर्ण है। इसमें न सिर्फ वातावरण संबंधी बदलाव होते हैं जैसे शारीरिक व्यवस्थाएं, कमरे में बदलाव, व्हीलचेयर के लिए भूतल में पुन व्यवस्थाएं करना आदि लेकिन साथ ही मुख्यधारा के स्कूलों में पुरानी प्रचलित सोच में भी बदलाव पर ध्यान केंद्रित करना होता है जिसमें अकादमिक कुशलता का पैमाना महत्वपूर्ण कारक होता है।

एक समावेशी समायोजन में जहां समूह और विश्वास की महान भावना आती है क्योंकि भिन्न आयु के बच्चे सहयोग के वातावरण में आगे बढ़ते है न कि प्रतिस्पर्धा की भावना से। इससे पता चलता है कि उचित संसाधनों और अनुभवों के साथ सावधानी से बनाई गई योजना सभी बच्चों के लिए जरूरी है।

एक समावेशी समायोजन में जहां समूह और विश्वास की महान भावना आती है क्योंकि भिन्न आयु के बच्चे सहयोग के वातावरण में आगे बढ़ते है न कि प्रतिस्पर्धा की भावना से। इससे पता चलता है कि उचित संसाधनों और अनुभवों के साथ सावधानी से बनाई गई योजना सभी बच्चों के लिए जरूरी है। ये महत्वपूर्ण है कि सामान्य शिक्षा सामाजिक योग्यता और समान संबंध शैक्षिक उपलब्धियों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण हैं। मुख्यधारा के स्कूलों में भरोसे के वातावरण को बढ़ाने और परस्पर संबंधों को बढ़ावा देने के लिए रणनीतियों की शिक्षा देना बेहद लाभकारी साबित होता

है। छात्र न सिर्फ पठन सामग्री को एक दूसरे के साथ साझा करते हैं बल्कि अपने अनुभव, अपने दृष्टिकोण साझा करने के अलावा आपस में सहयोग भी करते हैं। समूहीकरण, जोड़ीदार बनाने जितना ही महत्वपूर्ण है, जैसे कि छात्र समूह में काम कर सकते हैं या मिश्रित योग्यताओं वाले समूह को विशेष भूमिका दी जा सकती है। उदाहरण के लिए समयपालक, प्रस्तोता आदि। इस तरह एक सहयोगी शिक्षा कक्षा में छात्रों के बीच प्रतिस्पर्धा नहीं कराती जिसमें छात्र अपने को साबित करने के लिए दूसरों को मात देने की कोशिश करता है।

शिक्षा की विषय वस्तु

गुणवत्ता पूर्ण निर्देश का लक्ष्य सोचे जाने के बजाए आदर्श के रूप में स्थापित किया जाता है क्योंकि शिक्षक प्रभावी निर्देश देने में संघर्ष करते हैं। अब तक शिक्षण औसत के मापदंड पर आधारित रहा है जिसका अर्थ है कि

समावेश का अर्थ सभी छात्रों को एक ही स्तर पर आंके जाने का नहीं है कि जिन्हें पहले से तय सूचनाएं दी जाएं। ज्ञान हासिल करना सक्रियता है निष्क्रियता नहीं। इसका रूपांतर होना चाहिए और इसके लिए शिक्षा ग्रहण करने वाले की भागेदारी जरूरी है। किसी समावेशी कक्षा में कई गतिविधियां एक साथ चलती हैं।

कुछ छात्र सामंजस्य नहीं बिठा पाते और दूसरे को लगता है कि शिक्षण बहुत आसान और उकताऊ है। कक्षा में विभिन्न आवश्कताओं की पूर्ति के लिए हर छात्र के अलग अलग लेखे जोखे को देखते हुए निर्देश तैयार किए जाने चाहिए। अलग अलग कक्षाएं सीखने के विकल्पों को रेखांकित कर सकती है तैयारियों के विभिन्न स्तरों को बढ़ा सकती है-

- छात्रों के बीच पाठ्यक्रम के तत्व को समझने के लिए विविधतापूर्ण रास्ते निकालना
- ऐसे विविध क्रिया-कलाप करना जिससे छात्र खुद से सूचनाओं और विचारों को समझ सकें
- ऐसे विकल्प तैयार हों कि छात्र प्रदर्शित कर सकें कि उन्होंने क्या सीखा है जैसे छात्रों को उनकी पसंद अनुसार लिखित, मौखिक या वैकल्पिक संचार के प्रयोग के आधार पर एक स्वत-उत्तर देने का फार्मेट बनाया जाए।
- कक्षा मे छात्रों की शिक्षा की जरूरतों के लक्ष्य को पूरा करना, निर्देशों को अलग-अलग करने वाली विधियों को एकल वर्णित पाठों से हटाना और सीखने के उद्देश्य और निर्देशों की गति को लेकर शिक्षकों को लचीलापन लाने की आजादी मिले। संकल्पना आधारित निर्देशों और सिद्धांत युक्त कार्य विश्लेषण न सिर्फ अयोग्य छात्रों की मदद करेंगे बल्कि कक्षा के दूसरे छात्रों को लक्ष्य निर्धारित करने में मदद करेंगे।

शिक्षण: सीखने की प्रक्रिया

समावेश का अर्थ सभी छात्रों को एक ही स्तर पर आंके जाने का नहीं है कि जिन्हें पहले से तय सूचनाएं दी जाएं। ज्ञान हासिल करना सक्रियता है निष्क्रियता नहीं। इसका रूपांतर होना चाहिए और इसके लिए शिक्षा ग्रहण करने वाले की भागेदारी जरूरी है। किसी समावेशी कक्षा में कई गतिविधियां एक साथ चलती हैं। इसलिए सिखाने की प्रक्रिया शिक्षक केंद्रित से छात्र केंद्रित की तरफ बढ़नी चाहिए। छात्रों को सक्रिय अन्वेषक की तरह विकसित होना चाहिए और इसके लिए प्रेरक विचारों को को बढ़ावा देने की रणनीतिबहुत फायदेमंद शिक्षण विधि साबित हो सकती है।

इस रणनीति का प्रयोग करने के लिए शिक्षक को खोजी शिक्षण के जरिए सभी छात्रों को उचित अनुभव, नियमों के विश्लेषण और सिद्धांत मुहैया कराने की जरूरत है। इसे ध्यान में रखते हुए समावेशी शिक्षण और कक्षा में असमर्थ छात्रों के लिए लचीलापन लाए जाने को लेकर एनसीईआरटी ने हाल ही में पाठ्यक्रम अनूकूलन पर प्राथमिक पठन सामग्री तैयार की है। ये पठन सामग्री इस सोच पर आधारित है कि शिक्षक कक्षा में सभी छात्रों को अर्थपूर्ण शिक्षण अनुभव प्रदान कराए और सरल भाषा और अभिव्यक्ति का प्रयोग करे जो सभी छात्रों के लिए महत्व रखे। इस पठन सामग्री में कई उदाहरणों से बताया गया है कि कैसे समावेशी कक्षा में मौजूदा शिक्षण पद्धति को बदला जाए और छात्रों को स्वतंत्र रूप से सीखने वाला और इस प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार बनाए जाए। इस पठन सामग्री के साथ 1.58 लाख शिक्षकों को ट्रेनिंग दी जा चुकी है।

भविष्य के कदम: शिक्षक क्षमता निर्माण

समावेशी शिक्षा का विकास न सिर्फ शिक्षकों की गुणवत्ता, सोच, पेशेवर दक्षता में बदलाव लाता है बल्कि उनमें भी बदलाव लाता है जो उनकी ट्रेनिंग और सहायता करते हैं। इस आकस्मिक पूर्ण परिवर्तन से निपटने के लिए शैक्षिक कर्मचारियों में पेशेवर विकास का एक लगातार और संगत कार्यक्रम चलना बेहद जरूरी है... चूंकि शिक्षक ही पूर्ण बदलाव लाने के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी होंगे, इस प्रक्रिया के तहत ये बेहद महत्वपूर्ण होगा कि समावेशी शिक्षा को वास्तविक बनाने के लिए सावधानी से योजनाएं बनें। हालांकि शिक्षा देने वाले और शिक्षा के प्रशिक्षुओं के बीच विरोधाभास जरूर हो सकता है जो शिक्षक और छात्र के बीच की दूरी को बढ़ा सकता है।

छात्रों की शैक्षणिक आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रमों को बनाने की जरूरत

चूंकि शिक्षक ही पूर्ण बदलाव लाने के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी होंगे, इस प्रक्रिया के तहत ये बेहद महत्वपूर्ण होगा कि समावेशी शिक्षा को वास्तविक बनाने के लिए सावधानी से योजनाएं बनें। हालांकि शिक्षा देने वाले और शिक्षा के प्रशिक्षुओं के बीच विरोधाभास जरूर हो सकता है जो शिक्षक और छात्र के बीच की दूरी को बढ़ा सकता है।

को देखते हुए ऐसे कोर्स लाने की दिशा में कदम उठाए जा रहे हैं जिसमें सभी विषयों का समावेशन हो। आमतौर पर पाठ्यक्रमों में लैंगिक, जातीय, भाषाई भेदों आदि विषयों से जुड़े मुद्दों की उपेक्षा की जाती है। वर्तमान समय की जरूरतों और चुनौतियों को पूरा करने के लिए एक ऐसे विशिष्ट समावेशी शैक्षिक पाठ्यक्रम की आवश्यकता है जो आम और खास दोनों ही तरह के शैक्षिक पाठ्यक्रमों में मार्गदर्शक साबित हो सके। इस दिशा में निरंतर और व्यापक मूल्यांकन के नवीन दृष्टिकोण को एक सकारात्मक कदम के रूप में देखा जा रहा है। सीसीई नामक यह प्रणाली छात्रों के विद्यालय आधारित मूल्यांकन की एक पद्धति है जिसके माध्यम से बच्चे की शैक्षिक प्रक्रियाओं के सभी पक्षों का मूल्यांकन और आकलन किया जाता है। ❑

कुरुक्षेत्र

अपनी प्रति आज ही बुक कराएं

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

सूचना भवन, सीजीओ कॉम्पलैक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली – 110003
दूरभाष : 011-24367260, 24365609

वेबसाइट : publicationsdivision.nic.in www.facebook.com/publicationsdivision
व्यापार संबंधी जानकारी के लिए संपर्क करें : ई–मेल : dpd@sb.nic.in, businesswng@gmail.com

मेक इन इंडिया मिशन के आईने में शिक्षा, अनुसंधान एवं विकास

अशोक झुनझुनवाला

भारत में उत्पाद विकास की क्षमता और असीम संभावनाएं हैं। मेक इन इंडिया अभियान में विनिर्माण के साथ, आरएंडडी, डिजाइन और उत्पाद विकास, आईपीआर सृजन और संरक्षण महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। इससे न केवल भारत की एक बड़ी आबादी को रोजगार मिलेगा, बल्कि खपत के लिए आयात पर निर्भरता भी कम होगी। आयात पर होने वाले व्यय में कमी आएगी। इन लक्ष्यों को हासिल करने के लिए तकनीकी शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार किए जाने की जरूरत है। साथ ही आईआईटीएम जैसे रिसर्च पार्कों को प्रोत्साहित करने की भी आवश्यकता है

भारत ने मिशन मेक इन इंडिया की ओर कदम बढ़ाया है। इस अभियान का उद्देश्य यह है कि आयात पर देश की निर्भरता कम हो, औद्योगिक खपत में इजाफा हो और परिणामस्वरूप देश के आर्थिक विकास में वृद्धि हो। इस अभियान से बड़े पैमाने पर रोजगार बढ़ने की भी उम्मीद है जिसकी देश को अत्यधिक आवश्यकता है, चूंकि देश की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा कृषि क्षेत्र से दूसरे क्षेत्रों की ओर स्थानांतरित हो रहा है। पिछले बीस वर्षों के दौरान देश की अर्थव्यवस्था में वृद्धि तो हुई है लेकिन बढ़ती खपत के चलते विभिन्न प्रकार के आयातों पर भारत की निर्भरता बढ़ गई है। एक ओर देश का आयात व्यय लगातार बढ़ रहा है, दूसरी ओर देश की बढ़ती अर्थव्यवस्था अपनी आबादी को पर्याप्त रोजगार उपलब्ध कराने में सफल नहीं हुई है। इस स्थिति को बदलने की जरूरत है।

मेक इन इंडिया के लक्ष्य को हासिल करने का महत्वपूर्ण पहलू

बेशक, देश के विनिर्माण क्षेत्र पर ध्यान केंद्रित किए जाने की जरूरत है लेकिन इस बात पर भी विचार किया जाना चाहिए कि अपेक्षित लक्ष्यों को पूरा करने के लिए किस प्रकार का विनिर्माण किया जाना चाहिए। इस पेज पर दिए गए बॉक्स में मूल्य संवर्धन के विभिन्न अंगों को दर्शाया गया है। जैसे विश्व के सबसे लोकप्रिय उत्पाद आई-फोन को ही लीजिए। एक आई-फोन का मूल्य 500 अमेरिकी डॉलर है लेकिन उसके विनिर्माण पर केवल सात डॉलर खर्च होते हैं। 174 डॉलर उसके कलपुर्जों और उप-प्रणालियों पर खर्च होते हैं और 321 डॉलर डिजाइन और आईपीआर, सेल्स और वितरण पर। यदि 321 डॉलर में से 50 प्रतिशत लागत डिजाइन और आईपीआर की है तो यह मद विनिर्माण की लागत से 23 गुना अधिक है। भले ही यहां हम एक इलेक्ट्रॉनिक उत्पाद की बात कर रहे हों और हर उत्पाद की लागत अलग-अलग होती है लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि आज डिजाइन और आईपीआर का हिस्सा उत्पाद की कुल लागत में सबसे अधिक होता है। दूसरे शब्दों में, मिशन मेक इन इंडिया में विनिर्माण के साथ ही साथ डिजाइन और आईपीआर को शामिल करना अत्यधिक महत्वपूर्ण है। हम जिन लक्ष्य की बात कर रहे हैं, उन्हें इसी प्रकार प्राप्त किया जा सकता है। भारत में खपत की जाने वाली वस्तुओं का मूल्य संवर्धन हो सकता है और आयात पर व्यय कम हो सकता है। इसके अतिरिक्त मेक इन इंडिया जैसे कार्यक्रम में अधिक से अधिक भारतीय लोगों को रोजगार प्राप्त हो सकता है।

अपनी डिजाइनिंग क्षमता को बढ़ा सकता है भारत

सौभाग्य से पिछले तीस वर्षों में, भारत ने उत्पादों की डिजाइनिंग में अच्छी पहल की है। विश्व में डिजाइन का बड़ा काम भारत में होता है, हालांकि बहुत हद तक यह काम बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए किया जाता है। इन कंपनियों के डिजाइन सेंटर भारत में हैं। इसके अतिरिक्त

लेखक भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आईआईटी), चेन्नई के विद्युत अभियांत्रिकी विभाग में प्रोफेसर हैं। उन्होंने देश के पहले रिसर्च पार्क (आईआईटी मद्रास रिसर्च पार्क) की अवधारणा प्रस्तुत की तथा इसके निर्माण में अहम भूमिका निभाई। लगभग 12 लाख वर्ग फुट में फैले इस रिसर्च पार्क में 100 से ज्यादा अनुसंधान एवं विकास कंपनियां मौजूद हैं। उन्होंने भारत में प्रथम वायरलैस लोकल लूप (डब्ल्यूएलएल) उत्पाद भी विकसित किया था। वह आईआईटी तथा एनआईटी संस्थानों के लिए गठित काकोदकर समिति के सदस्य तथा मानव संसाधन विकास मंत्रालय की अभियांत्रिकी शिक्षा में गुणवत्ता सुधार समिति के अध्यक्ष भी हैं। ईमेल: ashok@tenet.res.in

कई भारतीय कंपनियां भी इन विदेशी कंपनियों को डिजाइनिंग सेवाएं उपलब्ध कराती हैं। भारत में डिजाइनिंग का बड़ा काम होने के बावजूद भारत के स्वामित्व वाले आईपीआर और भारतीय उत्पादों को लाभ प्राप्त नहीं होता। उत्पादों को बनाने और उनके वाणिज्यीकरण में भारत की क्षमता का उपयोग नहीं हो पाता। इसके लिए आत्मविश्वास और निवेश की जरूरत है। साथ ही उन उत्पादों को भारत में और फिर अंतर्राष्ट्रीय बाजार में बेचने की जरूरत है। साथ ही दुनिया भर के अच्छे माल के साथ प्रतिस्पर्धा की जरूरत है। कुछ हद तक, रक्षा, अंतरिक्ष और परमाणु ऊर्जा जैसे कूटनीतिक क्षेत्र यह कार्य कर रहे हैं जहां डिजाइनिंग का काम उत्पाद के निर्माण का रूप ले लेता है।

भारत में विकसित उत्पादों का घरेलू स्तर पर भी लाभ हो सकता है। इनके प्रारंभिक परीक्षण किए जा सकते हैं और घरेलू स्तर पर प्रतिक्रियाएं प्राप्त की जा सकती हैं जबकि आयात पर अत्यधिक निर्भरता उपभोक्ताओं को निम्न गुणवत्ता वाले और उच्च लागत वाले उत्पादों का उपभोग करने पर विवश करती है। इसके लिए भारत को उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद बनाने होंगे जो विश्व के सर्वोत्तम उत्पादों से मुकाबला कर सकें। देश के अनुसंधान एवं विकास विशेषज्ञ वर्ग को इस ओर ध्यान देना होगा। भारत के व्यापार-जगत को इन उत्पादों को बाजार में उतारना होगा और लाभकारी उद्यमों की नींव रखनी होगी। इसके लिए सरकार को ऐसी नीति बनानी चाहिए, जो उत्पाद विकास को प्रोत्साहित करे और उद्योग क्षेत्र के सभी अवरोधों को दूर करे।

भारत की कमजोरियां

डिजाइनिंग के क्षेत्र में भारत ने पिछले 30 वर्षों में खुद की पहचान बनाई है।

अस्सी के दशक में, भारत में केवल 100 इंजीनियरिंग कॉलेज थे जहां साल भर में 20,000 से भी कम इंजीनियर पढ़कर निकलते थे। मध्यवर्गीय परिवार के प्रतिभावान बच्चे इंजीनियर बनने का सपना देखते थे लेकिन उन्हें कॉलेज नहीं मिलते थे। उनके पास अवसर मौजूद नहीं थे। अस्सी के दशक के मध्य से भारत में निजी इंजीनियरिंग कॉलेज खुलने शुरू हुए। नब्बे के दशक में उनका विस्तार हुआ। 21 वीं सदी के प्रारंभ में निजी कॉलेजों के साथ, सरकार ने भी नए कॉलेज खोलने शुरू किए। एक ऐसा दौर भी था, जब केवल छह आईआईटी थे। आज इनकी संख्या 20 से अधिक है। आज 30 एनआईटी हैं और आईआईआईटी, आईएसईआर और एनआईएसईआर भी खुल गए हैं। उच्च शिक्षा पर अधिक व्यय किया जा रहा है, विशेषकर इंजीनियरिंग की पढ़ाई पर। आज इंजीनियरिंग कॉलेजों की संख्या 4,000 से अधिक है और पूर्वस्नातक इंजीनियरिंग प्रोग्राम में दाखिला लेने वाले विद्यार्थियों की संख्या प्रति वर्ष 15 लाख के करीब है। यहां बात सिर्फ बढ़ती संख्या की ही नहीं, समानता की भी है। इन कॉलेजों में दाखिला लेने वालों में गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले 25 प्रतिशत और ग्रामीण क्षेत्रों के 25 प्रतिशत विद्यार्थी हैं लेकिन इसके बावजूद

भारत में विकसित उत्पादों का घरेलू स्तर पर भी लाभ हो सकता है। इनके प्रारंभिक परीक्षण किए जा सकते हैं और घरेलू स्तर पर प्रतिक्रियाएं प्राप्त की जा सकती हैं जबकि आयात पर अत्यधिक निर्भरता उपभोक्ताओं को निम्न गुणवत्ता वाले और उच्च लागत वाले उत्पादों का उपभोग करने पर विवश करती है। इसके लिए भारत को उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद बनाने होंगे

शिक्षा के स्तर में सुधार नहीं हुआ है बल्कि गिरावट आई है। आईआईटी और कुछ अन्य इंजीनियरिंग संस्थानों को छोड़ दें तो बाकी सभी जगहों पर शिक्षा का स्तर निम्नतर है। हाल ही में मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने इस दिशा में कई कदम उठाए हैं (जिनमें इंजीनियरिंग शिक्षा में गुणवत्ता संवर्धन नाम से एक समिति का गठन भी किया गया है)। यह संकल्प भी किया जा रहा है कि अगले दस वर्षों में गुणवत्ता का निर्धारण किया जाना चाहिए। शिक्षा के लिए सूचना प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जाना चाहिए। साथ ही शिक्षकों के प्रशिक्षण की परिकल्पना भी की गई है।

इंजीनियरिंग कॉलेजों के विस्तार से भारत में डिजाइन सेवा उद्योग की नींव पड़ी। हालांकि इन विद्यार्थियों का काम उच्च स्तर का नहीं था (जिसका कारण नए कॉलेजों में अच्छे शिक्षकों की कमी था), डिजाइन और सेवा उद्योग इन युवाओं को काम पर रख सकता था और प्रशिक्षित कर सकता था। दूसरे उद्योगों के मुकाबले इस उद्योग में वेतन अच्छा था जिसके कारण युवाओं ने इस क्षेत्र को हाथों-हाथ लिया। काम करने की अच्छी स्थिति मिलने पर उन्होंने अपने काम में मौजूद कमियों को दूर किया। कुछ ही वर्षों में, वे अच्छा काम करने लगे। जैसे-जैसे उद्योग में परिपक्वता आई, उद्योग की सेवाओं का विस्तार हुआ और उच्च स्तरीय डिजाइनिंग का काम किया जाने लगा।

दुर्भाग्य से भारत अब भी उत्पादों का स्वामी नहीं बना, न ही उसने विश्व बाजार में उन उत्पादों का व्यापार करना शुरू किया। डिजाइन का काम अब भी सेवा के रूप में किया जा रहा था। कभी-कभार उत्पाद बनाए जाते थे लेकिन उन पर किसी का ध्यान नहीं जाता था। न ही भारत या किसी दूसरे देश में उन्हें उल्लेखनीय बाजार मिलता था। इस बीच भारत की अर्थव्यवस्था में वृद्धि हुई और भारत का मध्यवर्ग औद्योगिक उत्पादों का बड़ा उपभोक्ता बन गया था। इनमें से अधिकांश उत्पाद आयातित होते हैं। आश्चर्य की बात नहीं कि भारत में उपभोक्ता उत्पादों की बढ़ती मांग ने आयात पर व्यय को लगातार बढ़ाया है।

''मेक इन इंडिया'' अभियान का एक उद्देश्य इन कॉलेजों की गुणवत्ता में उल्लेखनीय सुधार करना है, जिससे इनके विद्यार्थी काफी हद तक अपना योगदान दे सकें। इसके लिए हर प्रकार की दक्षता विकसित की जानी चाहिए जिससे विद्यार्थी अनुसंधान एवं विकास, आईपीआर के सृजन, उत्पादों की डिजाइनिंग और परीक्षण, बड़े पैमाने पर विनिर्माण और विपणन में योगदान दे सकें। इस संबंध मानव संसाधन विकास मंत्रालय को विशेष पहल करनी चाहिए।

भारत में मूल्य संवर्धन और उत्पाद उद्योग

जैसे कि लेख की शुरुआत में चर्चा की गई थी, मूल्य संवर्धन निम्नलिखित के माध्यम से होता है: (क) डिजाइन, विकास और आईपीआर (सॉफ्टवेयर सहित), (ख) जोड़े गए कलपुर्जे और उप प्रणालियां, (ग) पैकेजिंग, (घ) विनिर्माण (एसेंबली और परीक्षण), (ङ) बिक्री, विपणन और व्यावसायीकरण

[1] अक्सर आयातित उत्पाद को भारतीय उत्पाद के मुकाबले अधिक वरीयता मिलती है। सरकार को इस ओर ध्यान देना चाहिए कि ऐसा न हो। जैसे भारतीय उत्पादों के लिए अधिक कर चुकाना होता है। ऋण भी ऊंचे ब्याज पर मिलता है। कार्यशील पूंजी जुटाने में दिक्कतें आती हैं। इंफ्रास्ट्रक्चर के मामले में परेशानियां उठानी पड़ती हैं (जैसे पर्याप्त बिजली नहीं मिलती)। इसके अतिरिक्त यह भी माना जाता है कि आयातित उत्पाद उच्च कोटि के होते हैं।

आइए, देखते हैं कि भारत इन क्षेत्रों में कहां ठहरता है। भारत में कलपुर्जा उद्योग कमजोर है। बहुत से कलपुर्जे आयात करने पड़ते हैं। उनकी लागत बहुत हद तक उनकी मात्रा पर निर्भर करती है। जब तक उत्पादन अधिक मात्रा में न हो, तब तक उनकी कीमत अधिक होती है। भारत में कलपुर्जा उद्योग इसीलिए कमजोर है क्योंकि उत्पाद का डिजाइन और विपणन स्थानीय स्तर पर कमजोर है।

एक दशक पहले भारत में विनिर्माण क्षेत्र कमजोर और महंगा था लेकिन भारत में दूरसंचार हैंडसेट कंपनियों को विनिर्माण की अनुमति देने की नीति के बाद एसेंबली उद्योग उभरा। ऑटो और इलेक्ट्रॉनिक उद्योग इसके दो उदाहरण हैं। अब भारत अपने विनिर्माण को अंतर्राष्ट्रीय बाजार में उतारने के लिए तैयार है। इससे भारत के कलपुर्जा उद्योग को भी मजबूती मिली है।

जैसा कि पहले भी कहा है, मूल्य संवर्धन, डिजाइन, विकास और आईपीआर में निहित होता है। भारत में यह क्षमता है। इसे उद्योग जगत का भी सहारा मिलना चाहिए। सरकार को उचित माहौल तैयार करना चाहिए और अनुसंधान एवं विकास विशेषज्ञों को उत्पाद उद्योग की नींव रखनी चाहिए।

भारत की आईपीआर क्षमता

भारत के शिक्षाविदों, जिनमें आईआईटी भी शामिल है, के पास आईपीआर सृजन की अपार क्षमता है। बेशक, इनकी संख्या बहुत अधिक नहीं है लेकिन यह लगातार बढ़ रही है। हमारे पास ऐसे कई विशेषज्ञ हैं जो इसमें अपना योगदान दे सकते हैं। फिर भी उन्हें नेतृत्व प्रदान करने की जरूरत है। भारतीय शिक्षाविद अनुसंधान और विकास से इतने संतुष्ट हैं कि वे आईपीआर के महत्व को नहीं समझते। न ही उसके प्रकाशन पर विशेष ध्यान देते हैं। वे यह नहीं समझते कि व्यक्तिगत आईपीआर किस प्रकार उत्पाद विकास में योगदान देता है।

इस अवरोध को दूर करने के लिए भारतीय अनुसंधान एवं विकास विशेषज्ञों को तकनीकी निकायों से जुड़ना होगा जोकि किसी भी उत्पाद के लिए मसौदा मानकों पर बहस करते हैं और उनका प्रतिपादन करते हैं। इसी प्रकार आईपीआर के महत्व और उसकी कमियों को समझा और दूर किया जा सकता है। एक बार कोई आईपीआर मानकीकृत हो जाए तो उसका मूल्य बढ़ जाता है। हर वाणिज्यिक उद्यम जोकि आईपीआर के अनुरूप उत्पाद बनाएगा, उसे आईपीआर के स्वामी से बातचीत करनी होगी।

अधिकांश देशों में ऐसी मानक विकास समितियां हैं जोकि आईपीआर सृजन में सक्षम अनुसंधान एवं विकास विशेषज्ञों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जोड़ती हैं। इन समितियों को सरकार का सहयोग प्राप्त होता है और उनका नेतृत्व उद्योग और शिक्षा क्षेत्र संभालता है। अंतर्राष्ट्रीय मानक निर्धारित करने वाले निकाय भी इन समितियों को स्वीकार करते हैं। कोरिया, चीन, कनाडा, जापान, यूरोप, सभी देशों में दूरसंचार मानक विकास पर केंद्रित समितियां हैं। नवंबर 2013 में भारत में दूरसंचार विभाग के सहयोग से दूरसंचार मानक विकास समिति (टीएसडीएसआई) का गठन किया गया। उम्मीद की जाती है कि इस समिति से भारत के अनुसंधान एवं विकास विशेषज्ञों को मदद मिलेगी। हालांकि, टीएसडीएसआई केवल दूरसंचार क्षेत्र पर केंद्रित है। अन्य क्षेत्रों में भी ऐसी पहली की जानी चाहिए। देश के स्मार्ट ग्रिड फोरम ने भी इस दिशा में कदम बढ़ाया है। मानकों पर काम करने के लिए आईईईई शिक्षा-उद्योग जगत का एक मंच बनाने में अहम भूमिका निभा रहा है। कम वोल्टेज डीसी (एलवीडीसी) भी ऐसा ही एक मंच है। इस संबंध में ठोस पहल करनी चाहिए। सरकार के पास भी ऐसे प्रयासों को सहयोग देने और उन्हें नियंत्रित करने से बचने के लिए एक ठोस नीति होनी चाहिए।

भारत में कलपुर्जा उद्योग कमजोर है। बहुत से कलपुर्जे आयात करने पड़ते हैं। उनकी लागत बहुत हद तक उनकी मात्रा पर निर्भर करती है। जब तक उत्पादन अधिक मात्रा में न हो, तब तक उनकी कीमत अधिक होती है। भारत में कलपुर्जा उद्योग इसीलिए कमजोर है क्योंकि उत्पाद का डिजाइन और विपणन स्थानीय स्तर पर कमजोर है।

आईपीआर सृजन और उन्हें मानकों के रूप में मान्यता दिलाने के लिए भारत के शिक्षाविदों और उद्योग जगत को मिलकर काम करना होगा। इनके बीच अभी मजबूत संबंध नहीं हैं। इन संबंधों को मजबूती दी जानी चाहिए।

भारत की डिजाइनिंग और विकास क्षमता एवं प्रोडक्ट इको-सिस्टम की स्थिति

भारतीय शिक्षाविदों ने अब तक इलेक्ट्रॉनिक्स की डिजाइनिंग और विकास एवं सूचना-संचार प्रौद्योगिकी में विशेष योगदान नहीं किया है। हालांकि उनमें ज्ञान और अपार क्षमता है। इसलिए उन्हें अपनी क्षमता का प्रयोग करते हुए नए सिरे से शोध और अध्ययन करना चाहिए। विश्वविद्यालयों और संस्थानों को भी उन्हें इस बात के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

देश में अनुसंधान और विकास के लिए विभिन्न प्रयोगशालाएं हैं जैसे सीडीओटी, सीडीएसी और कुछ सीएसआईआर प्रयोगशालाएं। इसके अतिरिक्त डीआरडीओ की, और परमाणु ऊर्जा विभाग एवं अंतरिक्ष विभाग की प्रयोगशालाएं भी हैं। इन प्रयोगशालाओं में कुछ उत्पाद बनाए भी जाते हैं लेकिन इन प्रयोगशालाओं में अब तक ऐसे उत्पाद नहीं बनाए गए हैं जिन्हें बड़ी वाणिज्यिक सफलता मिली हो। बेशक, देश के अनुसंधान एवं विकास विशेषज्ञ दक्ष लोग हैं लेकिन व्यावसायिक रूप से सफल उत्पाद बनाने के लिए उनके पूरे नजरिए को बदलने की जरूरत है (भले ही उत्पाद सामरिक क्षेत्र से संबंधित हो)।

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों में भी अनुसंधान एवं विकास विशेषज्ञ काम करते हैं। इनमें बीईएल, ईसीआईएल, बीएचईएल और आईटीआई प्रमुख कंपनियां हैं हालांकि छोटी कंपनियों में ऐसे विशेषज्ञों की बड़ी संख्या है। वे संगठन की आंतरिक जरूरतों या सरकारी एवं रक्षा क्षेत्र से संबंधित उत्पादों (जैसे इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन) पर काम करते हैं लेकिन वे वाणिज्यिक स्तर पर सफल उत्पाद बनाने का काम नहीं करते। अगर वाणिज्यिक उत्पादों के विनिर्माण पर ध्यान केंद्रित किया जाए तो उनमें से अनेक विशेषज्ञ सफल उत्पाद बना सकते हैं।

निजी क्षेत्र में काम करने वाले विशेषज्ञों की स्थिति से इस क्षेत्र में उत्पाद विकास की स्थिति को समझा जा सकता है। हालांकि उनमें से अधिकतर बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए डिजाइन और उत्पाद विकास का काम करते हैं। उनकी डिजाइनिंग और उत्पाद विकास के काम पर उसी विदेशी कंपनी का नियंत्रण होता है। इन कंपनियों के अतिरिक्त इस क्षेत्र में स्टार्ट अप और कुछ छोटी कंपनियां भी हैं जहां उत्पादों की डिजाइनिंग, उनका विकास और व्यापार होता है लेकिन इनकी संख्या बहुत कम है। सेवा प्रदाता कंपनियों, सार्वजनिक क्षेत्र की प्रयोगशालाओं, बहुराष्ट्रीय कंपनियों

की सहायक कंपनियों, स्टार्ट-अप की संख्या बहुत अधिक है। यह भारत की संपदा है। एक भारतीय कंपनी का तो यहां तक कहना है कि हम पश्चिम से आधी कीमत पर अनुसंधान एवं विकास का दोगुना काम करते हैं। भारत में अनुसंधान एवं विकास के काम को उत्पाद विकास में रूपांतरित करने का आधार यही है।

भारत सरकार के विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग ने एनटीटीईडीबी के माध्यम से विश्वविद्यालय आधारित तकनीकी इनक्यूबेटर की शुरुआत की है। मौजूदा समय में ऐसे इनक्यूबेटरों की संख्या लगभग 100 है। इनमें से अधिकतर इनक्यूबेटर एक ऐसा माहौल तैयार करने में सफल रहे हैं जहां प्रोडक्ट स्टार्ट अप का काम किया जा सकता है। इस दिशा में देश के युवा वर्ग की रुचि बढ़ रही है और आने वाले वर्षों में इसके फलने-फूलने की संभावना है। जैव प्रौद्योगिकी विभाग भी विश्वविद्यालयों में स्टार्ट-अप को बढ़ावा दे रहा है। इसके अतिरिक्त उद्यमियों और पूर्व छात्रों के समूह भी इस दिशा में कार्य कर रहे हैं।

भारत में स्टार्ट-अप्स की शुरुआत हो चुकी है। इनमें से बहुत से विश्वविद्यालय स्तर पर पनप रहे हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि देश के शीर्ष शिक्षण संस्थानों के विद्यार्थी विदेशों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने या ऊंचे वेतन वाली नौकरियां करने की बजाय स्टार्ट अप्स के विकल्प को चुन रहे हैं। दूसरी बात यह है कि इन स्टार्ट-अप्स में से कई स्टार्ट अप आईआईटी के विद्यार्थियों के भी हैं। इनमें से कुछ इतने अच्छे परिणाम दे रहे हैं जिनकी कुछ साल पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। इन विद्यार्थियों के प्रयासों में अनुसंधान केंद्र और शिक्षा-उद्योग जगत भी सहयोग दे रहे हैं।

आईआईएम रिसर्च पार्क: एक पथप्रदर्शक

उत्पादों की डिजाइनिंग, विकास, स्वामित्व, विनिर्माण और व्यावसायीकरण के क्षेत्र में भारत की स्थिति मजबूत करने में रिसर्च पार्क भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। विश्वविद्यालयों से संबद्ध इन रिसर्च पार्कों से उद्योग और शिक्षा जगत को नई ऊंचाइयां मिल सकती हैं। ये रिसर्च पार्क शिक्षण संस्थानों के निकट स्थित होते हैं (जिनकी दूरी साइकिल से तय की जा सकती है) जहां विभिन्न विनिर्माण कंपनियों को अपनी अनुसंधान एवं विकास इकाई लगाने के लिए आमंत्रित किया जाता है। इन पार्कों में संस्थान के शिक्षक, कर्मचारियों और विद्यार्थियों के सहयोग से अनुसंधान और विकास का कार्य किया जाता है। यहां तीन समूहों- शिक्षकों, उद्योग जगत के अनुभवी कर्मचारियों और युवाओं का संगम होता है। तीनों परस्पर औपचारिक और अनौपचारिक परिवेश में एक दूसरे के साथ विचारों का आदान-प्रदान करते हैं जिससे नई चीजें निकलकर आती हैं। शिक्षकों के पास सोच होती है, उद्योग जगत से जुड़े लोग यह जानते हैं कि सोच को किस तरह अमली जामा पहनाया जाए और युवाओं के लिए तो कुछ भी असंभव नहीं होता। जब कोई कंपनी अपना अनुसंधान एवं विकास सेटअप लगाती है तो ये तीनों समूह मिलकर काम करते हैं और सकारात्मक परिणाम निकलता है। यूरोप और अमेरिका में ऐसे रिसर्च पार्क उद्योग और शिक्षा जगत के बीच कड़ी का काम करते हैं। नई उभरती कंपनियां ऐसे पार्कों को इनोवेशन हब के रूप में विकसित करती हैं। चेन्नई स्थित आईआईटी में देश का पहला रिसर्च पार्क बनाया गया है जिसे आईआईटीएम रिसर्च पार्क (आईआईटीएमआरपी) का नाम दिया गया है। इसके 4,00,000 वर्ग फुट के पहले टावर में 50 कंपनियों के अनुसंधान और विकास विभाग और 30 स्टार्ट अप्स के दफ्तर हैं। सिर्फ तीन साल के अंदर इस रिसर्च पार्क में उत्पाद विकास का काम जोरों-शोरों से चल रहा है। अब इस रिसर्च पार्क में 8,00,000 वर्ग फुट का स्पेस और जोड़ा गया है। आने वाले दो वर्षों में आईआईटीएम के सहयोग से 150 कंपनियां अनुसंधान और विकास का काम करेंगी और चेन्नई आईआईटी में विकसित 150 स्टार्ट अप्स भी काम करेंगे। इस पार्क में सार्वजनिक-निजी उद्यमों की अनुसंधान प्रयोगशालाएं भी हैं जिनमें सरकार अनुसंधान एवं विकास के लिए प्रारंभिक निवेश कर रही है लेकिन अधिकतर उल्लेखनीय योगदान कंपनियों के माध्यम से किया जाता है (और कई बार शीर्ष नेतृत्व द्वारा भी)।

आईआईटीएमआरपी की एक खास बात यह है कि जहां आने वाली कंपनी को आईआईटीएम के साथ भी अनुसंधान विकास का काम करना होता है। हर वर्ग फुट के किराए के साथ उनके लीज कॉन्ट्रैक्ट में शर्त होती है कि वे आईआईटीएम से रिसर्च क्रेडिट प्राप्त करें। रिसर्च क्रेडिट तभी हासिल किया जा सकता है जब वे आईआईटीएम के साथ मिलकर एक निश्चित संख्या में अनुसंधान और विकास का काम करें। किसी रिसर्च पार्क में ऐसा अनुबंध पहली बार किया गया है। इससे किराएदार कंपनी और उसके कर्मचारियों के लिए आईआईटी के साथ अनुसंधान विकास करना आवश्यक हो जाता है। ऐसे अनुबंध का उद्देश्य यह है कि शिक्षा जगत और उद्योग जगत के बीच मधुर संबंध बनाए जा सकें। एक बार कंपनी को इस शर्त का फायदा मिलना शुरू होता है तो वह इसका महत्व समझती है और लिखित शर्त से अधिक संख्या में काम करना शुरू कर देती है।

इस रिसर्च पार्कों में इनक्यूबेटरों और स्टार्ट अप्स के कार्यालय भी हैं। काम करने के अच्छे माहौल के चलते यहां इंजीनियरिंग के स्टार्ट अप्स भी शुरू हो रहे हैं।

आईआईटीएम रिसर्च पार्क का वित्तीय मॉडल भी इसकी एक खासियत है। पूर्ण रूप से निर्मित ऐसे पार्क की कुल लागत 450 करोड़ रुपये से अधिक हो जाती है। इसके लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय की ओर से 100 करोड़ रुपये का अनुदान दिया गया है। शेष राशि आईआईटीएमआरपी ने जुटाई है। कुछ राशि बैंक ऋण से जुटाई गई है और कुछ ग्राहक कंपनियों से लीज एडवांस के रूप में उगाही गई है। संस्थान के पूर्व विद्यार्थियों ने भी योगदान किया है, हालांकि यह राशि बहुत कम है। यह पार्क एक स्वतंत्र धारा 8 कंपनी है जो पांच वर्ष की अवधि में ही आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने में सक्षम हो जाएगी।

आईआईटीएम रिसर्च पार्क ने काम करना शुरू ही किया है। अगले पांच वर्षों में कम से कम 10 अनुसंधान एवं विकास पार्क और बनाए जाने चाहिए। मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने आईआईटी मुंबई और आईआईटी दिल्ली को ऐसे पार्क बनाने के लिए 100 करोड़ रुपये का अनुदान दिया है।

इसके बाद अगला कदम यह होना चाहिए कि इन रिसर्च पार्कों में अनुसंधान एवं विकास की गुणवत्ता बढ़ाई जाए और यह सुनिश्चित किया जाए कि अधिक से अधिक भारतीय उत्पादों का विनिर्माण हो। किरायेदार कंपनी, स्टार्ट अप्स या फिर सार्वजनिक-निजी उद्यमों की प्रयोगशाला- कोई भी ऐसे उत्पाद बना सकता है। अगर उत्पादों का व्यावसायीकरण संभव होता है तो निश्चित ही आईआईटीएमआरपी को भी सफलता प्राप्त होगी। ❑

दूरस्थ शिक्षा: भारत और भविष्य के लिए एक प्रणाली

चन्द्रभूषण शर्मा

दूरस्थ शिक्षा भारत में और वैश्विक स्तर पर स्थापित हो चुकी है। एक समय में जो पत्राचार शिक्षा से आरंभ हुई थी वह अब दूरस्थ शिक्षा के रूप में शिक्षा का सुस्थापित रूप है। दूरस्थ शिक्षा एकार्थक शब्द नहीं है। विभिन्न स्थितियों में इसके विभिन्न अर्थ और विभिन्न रूप हो सकते हैं जो संस्था अथवा शिक्षार्थियों के पास उपलब्ध संसाधनों पर निर्भर करते हैं। दूरस्थ शिक्षा, शिक्षा का अधिक लचीला रूप है जो शिक्षार्थियों को जब वे चाहें और जहां वे चाहें पढ़ाई जारी रखने और प्रमाण पत्र प्राप्ति करने के लिए अपना मूल्यांकन कराने की सर्वोत्तम विधि चुनने की स्वतंत्रता देती है

शिक्षार्थी की *स्वायत्तता* को पारंपरिक रूप से प्रत्यक्ष शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में व उसकी तुलना में समझना होगा। पारंपरिक शिक्षा में शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया संस्था की सीमाओं में ही संभव है और अधिकतर कक्षा में ही की जाती है। इसमें शिक्षक और शिक्षार्थी एक समय पर और एक स्थान पर अवश्य उपस्थित होने चाहिए। दूरस्थ शिक्षा की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि शिक्षक और शिक्षार्थी को किसी निश्चित स्थान पर एक समय में उपस्थित रहने की आवश्यकता नहीं होती। शिक्षक अपने व्याख्यान को लिखित संवाद में परिवर्तित करता है जिसे स्व-अनुदेशनात्मक सामग्री कहा जाता है और ऐसा करते हुए भी उन प्रश्नों को ध्यान में रखता है जो शिक्षार्थी द्वारा पूछे जा सकते हैं और साथ ही विषयवस्तु के प्रमुख बिंदुओं की विस्तार से विवेचना भी करता है। कक्षा का व्याख्यान अल्पकालिक होता है जिसे बार-बार नहीं सुना जा सकता, परंतु लिखित और मुद्रित व्याख्यानों को शिक्षार्थी बार-बार पढ़ सकते हैं। व्याख्यान कई बार पढ़ने के बाद भी यदि कुछ बिंदु समझ में न आएं तो शिक्षार्थी शिक्षक के साथ व्यक्तिगत विचार-विमर्श कर सकता है। जैसा कि उपर्युक्त स्पष्टीकरण से स्पष्ट है कि दूरस्थ शिक्षा का अर्थ यह नहीं है कि इसमें शिक्षक पूर्णत: अनुपस्थित होता है। शिक्षक मुद्रित व्याख्यान में रमा हुआ होता है और शिक्षक का समय शिक्षार्थियों में बंटा होता है जो किसी भी कक्षा में शामिल शिक्षार्थियों से अधिक होता है।

दूरस्थ शिक्षा: सर्वाधिक अद्यतन

शिक्षक प्रत्येक शिक्षार्थी के साथ अथवा शिक्षार्थियों के प्रत्येक समूह से विचार-विमर्श करते हुए स्व-अनुदेशनात्मक सामग्री को दोहरा सकता है। शिक्षक उस विषयवस्तु अथवा क्षेत्र में स्व-अनुदेशनात्मक सामग्री में यदि कोई नया तथ्य अथवा नया आयाम जुड़ता है तो उसे भी दोहरा सकता है। स्व-अनुदेशात्मक सामग्री सर्वाधिक अद्यतन है। यदि शिक्षक निर्णय करता है, तो वह दिए गए व्याख्यान को श्रव्य अथवा दृश्य कार्यक्रम के रूप में भी जोड़ सकता है। दूरस्थ शिक्षा में शिक्षण केवल एक स्रोत अथवा माध्यम द्वारा न होकर बहुमाध्यम (मल्टी मीडिया) द्वारा होता है। मुद्रित स्व-अनुदेशनात्मक सामग्री में विभिन्न अन्य माध्यम जैसे श्रव्य कार्यक्रम, दृश्य कार्यक्रम, कंप्यूटर सहायता प्राप्त पाठ अथवा संस्था या शिक्षार्थी के पास उपलब्ध अन्य माध्यम द्वारा सहायक होते हैं। दूरस्थ शिक्षा में शैक्षिक संसाधन विभिन्न रूपों में उपलब्ध कराए जाते हैं। संसाधनों की दृष्टि से समृद्ध संस्थान विभिन्न मीडिया प्रारूपों में अच्छी स्व-अनुदेशनात्मक सामग्री प्रदान करने में समर्थ होंगी और शिक्षार्थी भी उस माध्यम से सीखने में समर्थ होंगे जिसमें वे सहज हैं। कुछ शिक्षार्थी मुद्रित पाठों के साथ ज्यादा सहज होंगे जबकि कुछ श्रव्य/दृश्य पाठों/व्याख्यानों के साथ अधिक सहज होंगे। अन्य शिक्षार्थी

लेखक राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान (एनआईओएस) के अध्यक्ष (चेयरमैन) हैं। वह भारतीय दूरस्थ शिक्षा परिषद् विधेयक, 2015 की तीन सदस्यीय प्रारुप समिति तथा राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (एनसीटीई) की समीक्षा के लिए बनी समिति के सदस्य भी रहे हैं। यह विधेयक जल्द ही संसद के समक्ष प्रस्तुत किया जाना है। राष्ट्रमंडल छात्रवृत्ति के जरिए हल्ल विश्वविद्यालय (यूके) से डॉक्टरेट उपाधि प्राप्त श्री शर्मा मानव संसाधन विकास मंत्रालय के सर्वशिक्षा अभियान के तहत दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम के भी निदेशक रहे हैं। इससे पूर्व जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली में अध्यापन के अलावा वह कई अकादमिक तथा प्रबंधन परिषदों में शामिल रहे हैं। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय द्वारा 11वीं पंचवर्षीय योजना तथा राष्ट्रीय महत्व की अन्य विभिन्न शिक्षा समितियों में उन्हें नामित भी किया गया है। ईमेल: cbsharma01@gmail.com, cbsharma@nios.ac.in, cm@nios.ac.in

कंप्यूटर समर्थित पाठों के माध्यम से अधिक तेजी से सीखेंगे जो मैसिव ओपेन ऑनलाइन कोर्स (एमओओसी) के रूप में अब अधिक लोकप्रिय हैं। पारंपरिक कक्षा में शिक्षार्थियों के पास इतने सारे विकल्प नहीं होते। इसमें पढ़ाई के लिए शिक्षक के बजाए शिक्षार्थी को शक्ति और दायित्व दिया गया है। दूरस्थ शिक्षा में शिक्षार्थी सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। यदि शिक्षक अपने स्व-अनुदेशनात्मक सामग्री को अद्यतन नहीं कर पाता तो शिक्षार्थी भी उसमें अपनी ओर से वृद्धि कर सकते हैं, यदि वह सामग्री ऑनलाइन हो। शिक्षक को सचेत रहना होगा, यदि ऐसा नहीं हुआ तो शिक्षार्थी उसे पछाड़ सकता है। निष्कर्ष यह है कि दूरस्थ शिक्षा समूह शिक्षण में भी परिवर्तित हो सकती है जिससे अधिक बेहतर अधिगम होगा। आखिरकार शिक्षण अधिगम का मुख्य उद्देश्य अधिगम को अग्रसर करना है जिसमें दूरस्थ शिक्षा सर्वाधिक सक्षम है।

दूरस्थ शिक्षा गुणवत्ता केंद्रित है

यह सही है कि शिक्षार्थी शैक्षिक प्रक्रिया की धुरी होता है, परंतु यह भी नकारा नहीं जा सकता कि अच्छे शिक्षकों के बगैर शिक्षा को गुणवत्ता पूर्ण नहीं बनाया जा सकता। अच्छे शिक्षक, अच्छी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का आधार होते हैं। चूंकि शिक्षा का प्रसार अधिकाधिक हो रहा है इसलिए सभी शिक्षार्थियों के लिए बहुत सारे अच्छे शिक्षक और समान रूप से अच्छे शिक्षक खोजना संभव नहीं है। यह सर्वसिद्ध है कि शिक्षा गुणवत्ता के बगैर शिक्षा के अभाव की तरह ही है। यदि शिक्षा शिक्षार्थी की आय और सामाजिक स्थिति के परिप्रेक्ष्य में उसकी स्थिति परिवर्तित करने में सक्षम नहीं होती है तो इसका अर्थ यह होगा कि शिक्षा कुछ खास उपयोगी नहीं है। अच्छे अथवा अधिक लोकप्रिय शिक्षक उन संस्थाओं में ही कार्य करना चाहते हैं जो उन्हें अधिक धनराशि देती हैं और बेहतर नगरों में स्थित भी हैं। कम लोकप्रिय संस्थाएं अच्छे शिक्षकों को आकर्षित करने में सफल नहीं होतीं जिससे विद्यार्थी सर्वोत्तम शिक्षकों से सीखने में सक्षम नहीं हो पाते। इस प्रकार की संस्थाओं के बीच सदैव एक दरार रहेगी जो लोकप्रिय स्थानों पर स्थित हैं और अपने शिक्षकों को अधिक धनराशि का भुगतान करती हैं। फिर भी, हम गरीब और दूर स्थित शिक्षार्थियों को सर्वोत्तम शिक्षकों से पढ़ने से वंचित नहीं रख सकते।

दूरस्थ शिक्षा अपनी संचार प्रौद्योगिकियों के उपयोग से सर्वोत्तम शिक्षकों को शिक्षार्थियों के द्वार तक लाने में सक्षम हैं। जैसा कि ऊपर उल्लिखित है, सर्वोत्तम शिक्षा में शिक्षकों को पाठ लिखने के लिए निर्धारित किया जाता है और सर्वोत्तम शिक्षकों के व्याख्यान रिकॉर्ड किए जाते हैं और शिक्षार्थियों को उपलब्ध कराए जाते हैं जिन्हें वे अपनी सुविधानुसार सुन और देख सकते हैं। रिकॉर्ड की गई अध्ययन सामग्री के अतिरिक्त आदर्श दूरस्थ शिक्षा संचार प्रौद्योगिकियां जैसे टैलीकॉफ्रेंसिंग अथवा रेडियो की फोन-इन सुविधा के माध्यम से शिक्षार्थी और शिक्षकों के बीच जीवंत विचार-विमर्श कराती हैं।

यदि शिक्षक अपने स्व-अनुदेशनात्मक सामग्री को अद्यतन नहीं कर पाता तो शिक्षार्थी भी उसमें अपनी ओर से वृद्धि कर सकते हैं, यदि वह सामग्री ऑनलाइन हो। शिक्षक को सचेत रहना होगा, यदि ऐसा नहीं हुआ तो शिक्षार्थी उसे पछाड़ सकता है। निष्कर्ष यह है कि दूरस्थ शिक्षा समूह शिक्षण में भी परिवर्तित हो सकती है जिससे अधिक बेहतर अधिगम होगा। आखिरकार शिक्षण अधिगम का मुख्य उद्देश्य अधिगम को अग्रसर करना है जिसमें दूरस्थ शिक्षा सर्वाधिक सक्षम है।

रेडियो प्रसारणों में यह एक अत्यंत सामान्य प्रणाली है कि श्रोताओं से प्रश्न पूछे जाएं और बड़े शहरों अथवा नगरों और शैक्षिक संस्थाओं में भी स्थित स्टूडियो से विशेषज्ञों द्वारा उनके प्रश्नों के उत्तर दिलाए जाएं। प्रत्येक शिक्षार्थी चाहे वह किसी भी स्थान, स्तर पर हो वह सर्वश्रेष्ठ शिक्षक से पढ़ सकता है।

प्रति शिक्षार्थी न्यूनतम लागत

गुणवत्तापूर्ण दूरस्थ शिक्षा में अनिवार्य रूप से अद्यतन प्रौद्योगिकियों की प्रयोग की आवश्यकता होती है। चूंकि अब शिक्षार्थियों की जनसंख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हो रही है इसलिए बड़ी संख्या में शिक्षार्थियों को शिक्षित करने के लिए हमें प्रौद्योगिकियों की आवश्यकता होगी जो अन्यथा संभव नहीं है। एक कक्षा में अधिकतम 500 शिक्षार्थियों को व्याख्यान दिया जा सकता है, परंतु एक दूरस्थ शिक्षा की कक्षा में कई हजार विद्यार्थी हो सकते हैं। भारत में चलाए जा रहे कई पाठ्यक्रमों में लाखों शिक्षार्थी हैं। संख्याओं का मामला आईसीटी के उपयोग से संभाला जा सकता है, परंतु यदि शिक्षार्थियों की संख्या कम होगी तो लागत अधिक हो जाएगी। सौभाग्यवश, भारत जैसे विकासशील देशों में इसकी मांग इतनी अधिक है कि प्रति शिक्षार्थी लागत अत्यंत कम आती है। छोटे परंतु विकसित देश अत्याधुनिक प्रौद्योगिकियों की लागत वहन करने में सक्षम नहीं हो सकते, क्योंकि शिक्षार्थियों की संख्या कम होगी।

अब तक भारत एकमात्र ऐसा देश है जो शिक्षा को समर्पित एक उपग्रह का खर्च वहन कर सका है। सन् 2000 से 2004 के दौरान एक लंबी योजना बनाने के बाद भारत ने 20 सितंबर, 2004 को एजुकेशनल सैटेलाइट (एडूसैट) नामक एक उपग्रह प्रक्षेपित किया। यह हमारे राष्ट्र के लिए एक महत्वपूर्ण अवसर था। इस उपग्रह के माध्यम से हम प्रत्येक नगर और गांव की प्रत्येक कक्षा तक अच्छे शिक्षकों का लाभ पहुंचा सकते थे। यद्यपि यह कथन दुखद है कि राष्ट्र इस उपग्रह का उपयोग नहीं कर पाया और इसके पर्याप्त उपयोग के बगैर यह 2010 में नष्ट हो गया। हमें अपने अनुभव से सीखने की आवश्यकता है और हमें उपग्रह आधारित शिक्षा के लिए तैयारी करनी होगी, क्योंकि शिक्षा के लिए एक अन्य उपग्रह के प्रक्षेपण की संभावना है और हम हाथ पर हाथ धरे बैठे नहीं रह सकते। प्रधानमंत्री ने अपने एक भाषण में कहा था कि भारत अपना एक समर्पित उपग्रह प्रक्षेपित करके उसके द्वारा दक्षिण एशियाई देशों को अच्छी शिक्षा उपलब्ध कराएगा। यदि उपग्रह के माध्यम से शिक्षा को सफल बनाना है तो समय से पहले कई सौ और हजारों घंटों की विषय वस्तु तैयार करनी होगी।

निजी, लाभ अर्जित करने वाली संस्थाओं ने इस बारे में सशक्त शुरुआत की है और वे इस प्रकार की प्रौद्योगिकियों का अधिक-से-अधिक एवं बेहतर उपयोग करने में सक्षम होंगी। इसका सकारात्मक पक्ष यह है कि शिक्षार्थी सर्वोत्तम

संसाधनों और अत्याधुनिक प्रौद्योगिकियों का उपयोग करने में सक्षम होंगे परंतु इसका नकारात्मक पक्ष यह है कि ऐसे गरीब शिक्षार्थी जिन्हें अच्छी शिक्षा के लाभ से वंचित नहीं किया जाना चाहिए, वे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाएंगे। यदि उपयुक्त योजना नहीं बनाई

देश और विदेश से ऐसी सफलता की गाथाएं हैं जहां दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के माध्यम से बहुत बड़ी संख्या में शिक्षकों एवं अन्य व्यवसायों का प्रशिक्षण दिया जाता है। यद्यपि इस समय भारत में दूरस्थ शिक्षा के संबंध में एक नीतिगत अवरोध प्रतीत होता है।

गई तो अमीर शिक्षार्थी और गरीब शिक्षार्थियों के बीच दरार बहुत अधिक बढ़ जाएगी। यदि सरकार गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक परिसर बनाने की स्थिति में नहीं होगी तो इसके लिए एकमात्र उपाय गुणवत्तापूर्ण दूरस्थ शिक्षा शेष रहेगी। यदि सूचना और संचार प्रौद्योगिकियों का उपयुक्त उपयोग नहीं किया गया तो सैद्धांतिक रूप से दूरस्थ शिक्षा द्वारा उत्पन्न यह अंतर और बढ़ेगा।

भारत को कौशल युक्त बनाना: दूरस्थ शिक्षा एकमात्र विकल्प

यद्यपि देर से ही सही, परंतु सौभाग्यवश भारत ने कुशल कार्यशक्ति के महत्व को पहचान लिया है। एक महाशक्ति के रूप में उभरने के लिए भारत को अपने युवाओं को एक उपयोगी कार्यशक्ति बनाना होगा। स्वतंत्रता प्राप्ति से ही हम केवल सरकारी नौकरियों के लिए मांग बनाने में सक्षम हुए हैं, जो जाहिर तौर पर इतनी बड़ी नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति को संतुष्ट किया जा सके। अधिकांश जनसंख्या। दिशाहीन है और असंतुष्ट है। सरकारी नौकरियां लाखों लोगों के लिए सृजित नहीं की जा सकतीं। युवा केवल भारत में ही रोजगार करने लायक नहीं बनेंगे अपितु वैश्विक स्तर पर रोजगार करने योग्य बनेंगे। अधिकांश देशों में युवा जनसंख्या का समानुपात गिर रहा है और वृद्ध जनसंख्या बढ़ रही है। भारत के पास बहुत बड़ी संख्या में युवा हैं। भारत के लिए यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण क्षण है जिसे हम आने वाले भविष्य के लिए एक परिसंपत्ति अथवा देयता में परिवर्तित कर सकते हैं।

भारत में हमारे पास पर्याप्त संख्या में ऐसे प्रशिक्षण संस्थान नहीं हैं जो हमारे युवाओं को पूर्णकालिक प्रत्यक्ष प्रशिक्षण दे सकें। इसके विपरीत हम आईटीआई अथवा इंजीनियरिंग कॉलेजों जैसे प्रशिक्षण संस्थाओं में सार्वजनिक धन के माध्यम से सृजित संरचनात्मक सुविधाओं का पूर्णतया उपयोग नहीं कर रहे हैं। प्रशिक्षण संस्थानों में प्रयोगशालाएं सर्वाधिक खर्चीली तत्व होती हैं और उनका उपयोग शिक्षण समय के केवल एक थोड़े अंश के लिए किया जाता है। दूरस्थ शिक्षा संस्थाएं इन संरचनात्मक सुविधाओं (अर्थात् प्रयोगशालाओं) का उपयोग कॉलेज के समय के बाद कर सकती हैं और युवाओं को प्रशिक्षण दे सकती हैं। दूरस्थ शिक्षा संस्थाएं ऐसे शिक्षार्थियों के लिए सार्वजनिक धनराशि के माध्यम से सृजित संसाधनों के उपयोग कर रहे शिक्षा के खर्च को कम कर सकती हैं जो पहली बार में ही एक सीट प्राप्त नहीं कर पाए अथवा जो इन प्रशिक्षण संस्थाओं का शुल्क नहीं दे सकते। सरकार को ऐसे लाखों शिक्षार्थियों को शिक्षित करने के लिए इस बारे में पहल करनी चाहिए और दूरस्थ शिक्षा प्रणाली का समर्थन करना चाहिए जिन्हें शिक्षित करने का प्रबंध करने में पारंपरिक प्रणाली को कई दशक लग जाएंगे।

देश और विदेश से ऐसी सफलता की गाथाएं हैं जहां दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के माध्यम से बहुत बड़ी संख्या में शिक्षकों एवं अन्य व्यवसायों का प्रशिक्षण दिया जाता है। यद्यपि इस समय भारत में दूरस्थ शिक्षा के संबंध में एक नीतिगत अवरोध प्रतीत होता है। दूरस्थ शिक्षा परिषद् (डीईसी) जो दूरस्थ शिक्षा में मानक बनाए रखने के लिए सृजित एक निकाय थी उसे अवैधानिक तरीके से जल्दबाजी में समेट दिया गया और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) में मिला दिया गया जिसमें दूरस्थ शिक्षा माध्यम को संभालने की आवश्यक विशेषज्ञता नहीं है। दूरस्थ शिक्षा की मॉनीटरिंग के सृजन के लिए विचार किया गया यूजीसी के समानांतर एक निकाय वर्षों से नहीं बना है। यदि इसे सुनियोजित ढंग से निष्पादित किया जाता तो दूरस्थ शिक्षा माध्यम से लाखों युवाओं को प्रशिक्षण दिया जा सकता था।

अध्यापक शिक्षा: दूरस्थ शिक्षा का योगदान

जब 2009 में ठोस योजना और तैयारी के बिना शिक्षा का अधिकार अधिनियम पारित किया गया तब चार मिलियन से अधिक शिक्षकों की कमी थी। यदि प्रत्यक्ष शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाओं द्वारा अपेक्षित संख्या में लोगों को प्रशिक्षित किया जाता तो इसमें सौ से अधिक वर्ष लग गए होते। अधिकांश अप्रशिक्षित शिक्षक सेवारत हैं। अधिकांश सेवारत शिक्षकों को दूरस्थ शिक्षा के माध्य से प्रशिक्षित किया गया था। चूंकि शिक्षा का अधिकार अधिनियम लागू किया जा चुका था और शिक्षकों को निश्चित समय सीमा में प्रशिक्षित किया जाना था। अत: शायद सरकारी दबाव के कारण दूरस्थ शिक्षा के माध्यम प्रशिक्षण दे रही संस्थाएं पूरी तैयारी न कर पाई हों इस कारण प्रशिक्षण गुणात्मक न हो पाया हो। यह केवल दूरस्थत शिक्षा माध्यम के कारण संभव हुआ कि इतने सारे लोगों को कम से कम कुछ प्रशिक्षण दिया जा सका। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि कुछ नीति निर्माताओं की संकुचित दृष्टि के कारण दूरस्थ शिक्षा विधा पूर्णत: अशक्त है। इस विषय में खास विचार किए जाने की आवश्यकता है नहीं तो राष्ट्र को इसका भारी मूल्य चुकाना होगा। यहां तक कि आज राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान (एनआईओएस) और इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्व विद्यालय (इग्नू) देश की सर्वाधिक बड़ी अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाएं हैं। एनआईओएस राजनीतिक और भौगोलिक दृष्टि से सर्वाधिक कठिन राज्यों जैसे हिमाचल प्रदेश, झारखंड, मेघालय, नागालैंड, जम्मू और

अधिकांश संस्थाएं शिक्षार्थियों की बढ़ती संख्या को संभालने में सक्षम नहीं हैं। वे जितने शिक्षार्थियों को संभाल सकती हैं उससे कहीं अधिक मांग होती है। सामान्य तौर पर, हमारी कक्षा में शिक्षार्थियों की संख्या गुणवत्ता शिक्षा प्रदान करने के लिए आदर्श संख्या से अधिक होती है। शिक्षा के दो माध्यम अर्थात् प्रत्यक्ष और दूरस्थ शिक्षा माध्यम इस समय एक-दूसरे से भिड़े हुए प्रतीत होते हैं।

कश्मीर एवं अन्यों में 20 हजार से अधिक सेवारत पारंपरिक शिक्षकों को प्रशिक्षण प्रदान कर रहा है।

प्रणालियों का मेल

अधिकांश संस्थाएं शिक्षार्थियों की बढ़ती संख्या को संभालने में सक्षम नहीं हैं। वे जितने शिक्षार्थियों को संभाल सकती हैं उससे कहीं

अधिक मांग होती है। सामान्य तौर पर, हमारी कक्षा में शिक्षार्थियों की संख्या गुणवत्ता शिक्षा प्रदान करने के लिए आदर्श संख्या से अधिक होती है। शिक्षा के दो माध्यम अर्थात् प्रत्यक्ष और दूरस्थ शिक्षा माध्यम इस समय एक-दूसरे से भिड़े हुए प्रतीत होते हैं। ये दो प्रणालियां एक-दूसरे से संसाधनों का न ही आदान-प्रदान करती हैं और एक-दूसरे से बचती हैं। पारंपरिक संस्थाओं में शिक्षार्थी पाठ्यपुस्तकों और कक्षा के व्याख्यानों के अतिरिक्त किसी अन्य रूप में उपलब्ध संसाधनों का उपयोग करते प्रतीत नहीं होते। अब धीरे-धीरे, अन्य माध्यमों में अच्छी सामग्री तैयार की जा रही है। चूंकि भविष्य में शिक्षार्थियों को विभिन्नत माध्यमों से पढ़ना होगा अत: उन्हें स्कूल के दिनों से विभिन्न माध्यमों से स्ववतंत्र रूप से सीखने के लिए प्रशिक्षित करना आवश्यक है।

स्कूल के पहले दिन से स्नातकोत्तर कक्षा तक हम अध्ययन और मूल्यांकन के माध्यम में प्रवीण बनने के लिए संघर्ष करते रहते हैं। भविष्य में हम अन्य माध्यमों द्वारा और अधिक जानकारी प्राप्त करेंगे। संचार के लिए प्रत्येक माध्यम का अपना कोड है। फिर भी, अन्य माध्यम रूपों में कोडबद्ध निर्देशों का अर्थ समझने के लिए कोई प्रशिक्षण नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति को मीडिया पाठों से संदेश ग्रहण करने के लिए प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है। जिस प्रकार बच्चों को सही ढंग से पढ़ने और लिखने के लिए वर्ण पढ़ाए जाते हैं उसी प्रकार उन्हें विभिन्न माध्यम में तैयार पाठों को समझने के लिए औपचारिक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। यद्यपि आजीवन शिक्षा की आवश्यकता होगी परंतु कक्षा में पढ़ाने वाले शिक्षक से सीखने के अवसर नहीं होंगे। प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं पढ़ना होगा और स्वतंत्र शिक्षार्थी बनना होगा जो दूरस्थ माध्यम से सतत् शिक्षा प्राप्त करे।

जब चाहो तब परीक्षा

कुछ दूरस्थ शिक्षा संस्थाएं जैसे कि राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान (एनआईओएस) अपनी *जब चाहो तब परीक्षा* प्रणाली द्वारा शिक्षार्थियों को उनकी इच्छा और समय के अनुसार बोर्ड परीक्षा देने की स्वतंत्रता भी देती हैं। शिक्षार्थी जितनी बार चाहें अपनी बोर्ड परीक्षा दे सकते हैं जिससे वे अपनी अपेक्षानुसार सर्वोत्तम अंक प्राप्त कर सकते हैं।

प्रसिद्ध एवं सुस्थापित संस्थाएं ऑनलाइन परीक्षाएं आयोजित करती हैं। संस्थाएं एवं एजेंसियां परीक्षा ही आयोजित नहीं करतीं अपितु प्रमाणपत्र भी ऑनलाइन जारी करती हैं। भारत में हम शिक्षा की नई विधियां ही नहीं अपना रहे हैं अपितु दूरस्थ शिक्षा के मार्ग में अवरोध भी उत्पन्न कर रहे हैं।

भविष्य की ओर एक दृष्टि

भारत एक सघन जनसंख्या वाला देश है और निकट भविष्य में गुणवत्तापूर्ण संस्था में प्रत्येक शिक्षार्थी को एक स्थान प्रदान करना संभवत: संभव नहीं दिखता। दूर-दराज के क्षेत्रों में विशेषकर सुविधा वंचित क्षेत्र में रह रहे शिक्षार्थियों को इसका नुकसान होगा। उन्हें न तो अच्छे शिक्षकों से शिक्षा उपलब्ध हो पाएगी और न ही पुस्तकालय और प्रयोगशालाओं जैसे अच्छे संसाधन मिल पाएंगे। दूरस्थ शिक्षा सभी के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का वादा पूरा कर सकती है।

आने वाले समय में अधिकांश शिक्षार्थी अपनी संबंधित आयु के अनुसार पढ़ाई नहीं करेंगे। ऐसे सभी लोगों के लिए जो अद्यतन और स्पर्धा में रहना चाहते हैं, उनके लिए आजीवन पढ़ना अनिवार्यता होगी। प्रत्येक व्यक्ति एक सक्षम शिक्षार्थी होगा। वे स्वयं को अद्यतन रखने के लिए अल्पकालिक पाठ्यक्रम न करके अपना स्थान बदले बगैर अल्पकालिक पाठ्यक्रम करने का विकल्प लेंगे। उनके लिए दूरस्थ शिक्षा एकमात्र विकल्प होगी।

अधिकांश शिक्षार्थी पाठ्यपुस्तकों से नहीं पढ़ेंगे तथा कलम और कागज वाली परीक्षा नहीं देंगे। शिक्षार्थियों को यात्रा करते हुए अथवा होटल कमरों में जहां भी अंतराल प्राप्त होंगे, वे पढ़ेंगे। चूंकि वे थके होंगे, तो वे कोई दृश्य पाठ देख सकते हैं अथवा श्रव्य व्याख्यान सुन सकते हैं। श्रव्य अथवा दृश्य, प्रारूप में उपलब्ध शैक्षिक विषयवस्तु मुद्रित पुस्तकों से अधिक प्रयोग में आएंगी। दूरस्थ शिक्षा विभिन्न माध्यमों पर निर्भर करती है और यह अधिकांश शिक्षार्थियों के लिए उपयुक्त होगी। दूरस्थ शिक्षा की दिशा में अग्रसर होने वाले ऐसे व्यक्ति, समूह एवं राष्ट्र जो गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रणाली विकसित करने में सक्षम होंगे वे निश्चित रूप से एक बेहतर स्थिति में होंगे। ❑

योजना फेसबुक पर

आपकी लोकप्रिय पत्रिका **'योजना'** अब फेसबुक पर हिंदी में **योजना हिंदी** नाम से पृष्ठ के साथ आधिकारिक रूप से मौजूद है। इस पृष्ठ को फेसबुक द्वारा सत्यापित भी किया जा चुका है। सुधि पाठकों से निवेदन है कि हमारे पृष्ठ पर आएं और हमारी गतिविधियों तथा आगामी अंकों के बारे में ताज़ी जानकारी प्राप्त करें।

योजना हिंदी के फेसबुक पेज को 24,500 से ज्यादा तथा अंग्रेजी पृष्ठ YOJANA JOURNAL को 1.81 लाख से ज्यादा LIKES हासिल हो चुकी हैं। इस समर्थन के लिए पाठकों का धन्यवाद।

हमारा पता : http://www.facebook.com/Yojanahindi **फेसबुक पर मिलें, Like करें और सुझाव दें।**

डिजिटल इंडिया से बदलेगी शिक्षा की तस्वीर

संदीप कुमार पांडेय

बदलते भारत की गूंज भारतीय भूगोल को लांघ चुकी है। बदलाव के बयार को पूरी दुनिया स्वीकारने लगी है। संचार क्रांति ने तो बदलाव की गति को और तीव्र कर दिया है। गांवों में बसने वाला भारत अब ई-क्रांति का अग्रदूत बनने की राह पर है। व्यवस्थागत संपूर्ण जानकारी एक क्लिक पर उपलब्ध कराने की दिशा में भारत सरकार पुरजोर कोशिश कर रही है। इसी संदर्भ में भारत सरकार ने शिक्षा-व्यवस्था को पूरी तरह से डिजिटाइज्ड करने की योजना बनाई है। इसी योजना के आलोक में प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च शिक्षा तक की पूरी शिक्षण प्रणाली को डिजिटल किया जा रहा है

भारत सरकार की नई-शिक्षा नीति जहां शिक्षा के प्रारूप और पाठ्यक्रम में बड़े बदलाव पर जोर दे रही है, वहीं डिजिटल इंडिया मिशन का उद्देश्य भारत को ज्ञान अर्थव्यवस्था में बदलकर, तकनीकी तौर पर सशक्त, सक्षम समाज को तैयार करना है। सर्वांगीण विकास लिए डिजिटल इंडिया न केवल जनोपयोगी सेवाओं के इलेक्ट्रॉनिक वितरण का मार्ग प्रशस्त करता है, वरन् ग्रामीण और नगरीय जीवन शैली के बीच डिजिटल डिवाइड को खत्म कर, पब्लिक डाटा के संग्रहण से भारत के डिजिटल ब्लूप्रिंट के रूप में सूचनाओं को आमंत्रित भी करता है। संग्रहीत सूचना के अन्वेषण और तकनीकी उपयोग की अपार संभावनाओं के मध्य आज ऐसे कई स्मार्ट एप्लीकेशन बन रहे हैं, जो शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रशासनिक सेवाओं, विनियम, यातायात आदि क्षेत्रों में अभूतपूर्व बदलाव लाने में सक्षम हैं। परंतु इस क्रांति को आत्मसात करने में सबसे बड़ी बाधा अशिक्षा है, जो अभिशाप बन, ग्रामीण भारत को विकास की मुख्य धारा से अलग रखे हुए है। अब प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि, क्या तकनीकी विकास और ई-क्रांति के पास वास्तव में इस समस्या का समाधान है?

ई-क्रांतिः समाधान की राह

डिजिटल इंडिया संकल्पना के नौ बुनियादी स्तंभों में से *ई-क्रांति* सर्वाधिक व्यापक, दूरगामी और अभिनव विचारों को समाविष्ट करने वाला स्तंभ है। ई-क्रांति द्वारा पंचायत स्तर तक इंटरनेट सेवाओं के पहुंचने और ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल शिक्षा की शुरुआत से सभी तबके के युवाओं के लिए स्तरीय शिक्षा तक पहुंच सुलभ होगी, साथ ही शिक्षा व्यवस्था में शिक्षकों की कमी, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की समस्या, महिला शिक्षा का स्तर, रोजगार संबंधी चुनौतियां, प्रतिव्यक्ति आय, कुपोषण, कानून-व्यवस्था आदि से भी निपटने में सहूलियत होगी। चूंकि डिजिटल इंडिया मिशन और ई-शिक्षा की सभी संभावनाएं, स्मार्टफोन, कंप्यूटर और इंटरनेट कनेक्टिविटी पर आश्रित हैं। भारत में शिक्षा के स्तर को बढ़ाना, तकनीकी साक्षरता सुनिश्चित करना और कंप्यूटर, स्मार्टफोन, इंटरनेट आदि को सर्वसाधारण तक सुलभ करना बड़ी चुनौतियां हैं।

सरकार के अलावा निजी क्षेत्र भी उत्साह के साथ डिजिटल इंडिया मिशन को सफल बनाने में अपनी भूमिका निभाता दिख रहा है। इंटेल, क्वाल कॉम और टाटा जैसी दिग्गज कंपनियों ने इस दिशा में कुछ प्रगति की है। इंटेल ने हाल ही में अपनी पहल ''भारत के लिए डिजिटल कौशल'' की शुरुआत की है। डिजिटल कौशल प्रशिक्षण एप्लीकेशन, पांच भारतीय भाषाओं में डिजिटल साक्षरता, वित्तीय समावेशन, हेल्थकेयर और साफ-सफाई मॉड्यूल पर शिक्षित करता है।

शिक्षा क्षेत्र में ई-क्रांति के समक्ष चुनौतियां

1. **निम्न साक्षरता दरः** भारत में कुल 28.7 करोड़ वयस्क पढ़ना लिखना नहीं जानते हैं, जो कि दुनिया भर की निरक्षर आबादी का 37 फीसदी है। यूएन एजुकेशनल, साइंटिफिक एंड कल्चरल ऑर्गेनाइजेशन

लेखक सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र के विशेषज्ञ हैं। भारत सरकार के पोर्टल www.india.gov.in में टीम लीटर का दायित्व संभालने के साथ राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केंद्र की पत्रिका *इंफोर्मेटिक्स* के संपादक मंडल में रह चुके हैं। संप्रति *आइडिया क्रैकर्स* नाम से आईटी सोल्युसंस कंपनी तथा ब्लॉग एग्रीगेटर www.blogprahari.com का संचालन कर रहे हैं। ईमेलः mail@kanishkakashyap.com

(यूएनईएससीओ) और एजुकेशन फॉर ऑल ग्लोबल मॉनिटरिंग रिपोर्ट (ईएफआर जीएमआर), यह कहती है कि 1991 से 2006 के बीच भारत में साक्षरता दर 48 फीसदी से बढ़कर 63 हो गई, लेकिन जनसंख्या वृद्धि के कारण यह बदलाव दिख नहीं रहा और कुल निरक्षर वयस्कों की संख्या में भी कोई बदलाव नहीं आया है।[1] चूंकि गरीबी, स्वास्थ्य, कुपोषण, सामाजिक पिछड़ापन आदि के मूल में शिक्षा का अभाव प्रमुख कारण है, इसलिए शिक्षा सभी मायनों में प्राथमिक चिंता का विषय बन जाती है। आजादी के समय देश की केवल 12 फीसदी आबादी साक्षर थी जो 2011 में 74 फीसदी हो गई लेकिन 84 फीसदी के वैश्विक औसत से भारत अब भी काफी पीछे है जबकि भारत में प्राथमिक अक्षर ज्ञान पर ही शिक्षित होना माना गया है।

2. **शिक्षा में गुणवत्ता न होना:** उपर्युक्त सर्वे से पता चलता है कि भले ही ग्रामीण छात्रों के स्कूल जाने की संख्या बढ़ रही हो पर इनमें से आधे से ज्यादा छात्र दूसरी कक्षा तक की किताब पढ़ने में असमर्थ हैं और सरल गणितीय सवाल भी हल नहीं कर पाते। आधारभूत ढांचे की कमी और अन्य समस्याओं के चलते शिक्षा की गुणवत्ता पर असर पड़ता है और छात्रों के सीखने के स्तर में लगातार गिरावट आ रही है। सात साल की उम्र के 50 फीसदी बच्चे शब्द नहीं पहचानते जबकि 14 साल तक की उम्र के करीब इतने ही बच्चे गणित के सामान्य सवाल भी हल नहीं कर सकते।[2]
3. **शिक्षा के प्रति रूझान नहीं:** रिपोर्ट के अनुसार 12.4 करोड़ छोटे बच्चे अब भी स्कूलों में नहीं जाते। देशभर में पांचवीं और आठवीं में क्रमशः 13.24 करोड़ और 6.64 करोड़ यानी कुल 19.88 करोड़ बच्चे ही प्रारंभिक शिक्षा हासिल कर रहे हैं। स्कूल की पढ़ाई करने वाले नौ छात्रों में से एक ही कॉलेज पहुंच पाता है। भारत में उच्च शिक्षा के लिए रजिस्ट्रेशन कराने वाले छात्रों का अनुपात दुनिया में सबसे कम यानी सिर्फ 11 फीसदी है। अमरीका में ये अनुपात 83 फीसदी है।[3]
4. **शिक्षकों की भारी कमी और अनियमितता:** इस समय देश में 13.62 लाख प्राथमिक विद्यालय हैं। परंतु इनमें कुल 41 लाख शिक्षक ही तैनात हैं, जबकि देश में अनुमानित 19.88 करोड़ बच्चे प्राथमिक और उच्च प्राथमिक विद्यालयों में पढ़ रहे हैं। साथ ही पूरे देश में करीब 1.5 लाख विद्यालयों में 12 लाख से भी ज्यादा पद खाली पड़े हैं, जिससे करीब 1 करोड़ से ज्यादा बच्चे विद्यालयों से बाहर रहने को बाध्य हैं। बच्चों के स्कूल जाने में अनियमितता के अलावा शिक्षकों का भी स्कूल से गायब रहना एक बड़ा मुद्दा है। महाराष्ट्र और गुजरात में स्कूली शिक्षकों की अनुपस्थिति 15 और 17 फीसदी दर्ज की गई, जबकि बिहार और झारखंड में 38 और 42 फीसदी अनुपस्थिति पाई गई है।[4]
5. **मध्याह्न भोजन आदि स्कीम का प्रभावी न होना:** सरकार बच्चों के शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए प्राथमिक व उच्च प्राथमिक बच्चों के लिए 100 से 150 ग्राम प्रतिदिन मीनू के अनुसार भोजन की व्यवस्था करती है। परंतु धरातल पर यह सब भ्रष्टाचार और अनियमितता के भेंट चढ़ जाता है।
6. **शिक्षकों की शिक्षणेतर कार्यों में संलिप्तता:** सरकारी विद्यालयों में तैनात अध्यापक साधारणतः पल्स पोलियो, जनगणना, चुनाव जैसे तमाम गैर शैक्षिक कार्यों में लगे रहते हैं और शेष समय बच्चों के मध्याह्न भोजन में व्यतीत हो जाता है।
7. **आधारभूत शिक्षण व्यवस्था की कमी और स्कूलों की दूरी:** यूनीसेफ की रपट बताती है कि देश के 30 फीसदी से अधिक विद्यालयों में पेयजल की व्यवस्था ही नहीं है। साथ ही 40 से 60 फीसदी विद्यालयों में खेल के मैदान तक नहीं हैं। इसके अलावा कई गांव, आज भी प्राथमिक शिक्षा की पहुंच से बाहर है.
8. **ड्राप-आउट रेट:** सर्वशिक्षा अभियान जैसे समूह को लक्ष्य कर बनाई गई योजनाओं से प्राइमरी स्तर पर नामांकन अनुपात सौ फीसदी के करीब पहुंच चुका है लेकिन स्कूल छोड़ने की दर ज्यादा होने के चलते 57 फीसदी छात्र ही प्राइमरी एजुकेशन और 10 फीसदी सेकंडरी एजुकेशन पूरी करते हैं।
9. **उच्च शिक्षण संस्थानों की गुणवत्ता:** संख्या की दृष्टि से देखा जाए तो भारत की उच्चतर शिक्षा व्यवस्था अमरीका और चीन के बाद तीसरे नंबर पर आती है लेकिन जहां तक गुणवत्ता की बात है दुनिया के शीर्ष 200 विश्वविद्यालयों में भारत का एक भी विश्वविद्यालय नहीं है। हालांकि, उच्च शिक्षा में नामांकन दर पिछले 40 वर्षों में 12 गुना बढ़ी है लेकिन बाकी दुनिया से भारत काफी पीछे है।
10. **रूरल-अर्बन डिवाइडः** शिक्षा व्यवस्था में बदलाव गांवों तक पहुंचे, यह विकसित होते भारत की नितांत आवश्यकता है लेकिन गांवों में डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर शहरों के मुकाबले काफी कमजोर है। यही कारण है कि देश में इंटरनेट का उपयोग करने वाली गरीब 23 फीसदी आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है। जबकि इंटरनेट का इस्तेमाल करने वाले उपभोक्ताओं की संख्या के आधार पर भारत दुनिया में चीन और अमेरिका के बाद तीसरा स्थान रखता है। वह भी तब जब, 2014 के अंत तक देश की केवल 19.19 फीसदी आबादी ही इंटरनेट से जुड़ी थी।

क्यों आवश्यक है ई-क्रांति

ऊपरोक्त आंकड़े अर्थव्यवस्था पर सीधा प्रभाव डालते हैं। जैसे, भारतीय छात्र विदेशी विश्वविद्यालयों में पढ़ने के लिए हर साल सात अरब डॉलर यानी करीब 43 हजार करोड़ रुपये खर्च करते हैं क्योंकि भारतीय विश्वविद्यालयों में पढ़ाई का स्तर वैश्विक मानकों पर खरा नहीं उतरता है। वहीं इससे होने वाले नुकसान का आकलन कई गुणा है। इस स्थिति से उबरने के लिए, पारंपरिक तरीकों को अमल में लाया जाए तो हर साल भारतीय स्कूल से पास होने वाले छात्रों में महज 15 फीसदी छात्र विश्वविद्यालयों में पढ़ने जाएं, यह सुनिश्चित करने के लिए पूरे भारत में 1500 नए विश्वविद्यालय खोले जाने की जरूरत पड़ेगी। इसके अलावा, अन्य समस्याएं जैसे, शिक्षा की गुणवत्ता, लड़कियों के लिए शौचालय का नहीं होना आदि का निदान खर्च जोड़ा जाए तो यह निश्चित रूप से बड़ा वित्तीय निवेश हैं।[5]

ई-शिक्षाः तकनीकी जटिलताएं और समाधान की दिशा में सफल प्रयोग

ऊपर लिखित सभी समस्याओं पर गौर करें तो इसके केंद्र में तीन महत्वपूर्ण अव्यय

मिलेंगे। शिक्षा को सस्ता करना होगा, सुलभ करना होगा और गुणवत्ता में सुधार करना होगा। इस दिशा में ई-शिक्षा को लेकर हुए विभिन्न प्रयोगों से उत्साहजनक परिणाम मिले हैं। पर ध्यान रहे ई-शिक्षा के किसी भी प्रयास को सफल होने के लिए मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करना होगा जिन्हें निम्न उपशीर्षकों के माध्यम से समझा जा सकता है:-

ब्रॉडबैंड और इंटरनेट की स्पीड सुनिश्चित करना: इंटरनेट की पहुंच और स्पीड को प्रभावी करने के लिए डिजिटल इंडिया के तहत वर्ष 2020 तक देशभर में 60 करोड़ ब्रॉडबैंड कनेक्शन और ग्रामीण क्षेत्रों में 100 फीसदी टेलीडेंसिटी का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। भारत में टेलीकॉम सेक्टर की स्थिति संतोषजनक नहीं है। एक तरफ सरकार का यह मानना रहा है कि टेलीकॉम कंपनियों ने अपने ग्राहक विस्तार के अनुपात में अपने नेटवर्क को अनुकूल रूप में नहीं ढाला है। वहीं टेलीकॉम कंपनियां यह दावा करती हैं कि सरकार की स्पेक्ट्रम नीति सरल नहीं है और अधिक स्पेक्ट्रम खरीदना हितकर नहीं है। वस्तुस्थिति इससे अलग है। भारत में प्रत्येक टेलीकॉम ऑपरेटर पर औसतन 28 मेगाहर्ट्ज स्पेक्ट्रम है, जबकि यही हिस्सेदारी चीन में 153 और अमेरिका में 136 मेगाहर्ट्ज है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि भारत में प्रत्येक दस लाख ग्राहकों के ऊपर उपलब्ध स्पेक्ट्रम केवल 0.1 मेगाहर्ट्ज है, जबकि यही अनुपात अधिकांश यूरोपीय देशों में 3-6 मेगाहर्ट्ज है। भारतीय टेलीकॉम कंपनियों के पास औसतन 13-15 मेगाहर्ट्ज स्पेक्ट्रम है, जबकि चीनी टेलीकॉम कंपनी औसतन 60-100 मेगाहर्ट्ज स्पेक्ट्रम पर पकड़ रखती है। सरकार और टेलीकॉम कंपनियों के बीच में फंसा आम भारतीय नीतिगत शिथिलता से लकवाग्रस्त सेवाओं को ढोने के लिए विवश है।

कंपनियों के पास स्पेक्ट्रम की कमी के कारण वॉयस कॉलिंग में समस्याएं आती हैं। ऐसे हालात में डाटा ट्रांसफर के लिए 5 एमबीपीएस का वैश्विक औसत हासिल करना संभव नहीं है। जबकि भारत में, एक सर्किल में 11-12 टेलिकॉम ऑपरेटर कार्य कर रहे हैं। गौरतलब है कि 1990 से 2000 के बीच मोबाइल डाटा प्रसार में हुए जबरदस्त विस्तार ने वायरलेस डिवाइस और अभियांत्रिकी को भारी विस्तार दिया, जो अब तक जारी है। स्पेक्ट्रम के सह-चैनलों का आपसी हस्तक्षेप तकनीकी जटिलताएं और सूचना प्रवाह की स्पष्टता को प्रभावित करता है। रेडियो फ्रीक्वेंसी में डेटा यातायात जिस तेजी से बढ़ रहा, एक अनुमान की मानें तो 2017 तक 11 एक्साबाइट डाटा हर महीने, मोबाइल नेटवर्क के माध्यम से स्थानांतरित करने की आवश्यकता होगी।[6] ऐसे में वाई-फाई तकनीक की संजीवनी ने संचार अर्थव्यवस्था को एक नया आकाश दिया है। यह तकनीक उस समय आई है, जब रेडियो फ्रीक्वेंसी में प्रदूषण चरम पर होने जा रहा था।

स्तरीय शिक्षा सुनिश्चित करना: शिक्षा की गुणवता पाठ्यक्रम और कुशल शिक्षण पर निर्भर करती है। सूचना प्रौद्योगिकी में आई क्रांति, मोबाइल एप्लीकेशन और इंटरनेट के माध्यम से वीडियो, अक्षर और आवाज, तीनों माध्यमों में शिक्षा सामग्री तैयार कर, सर्वसाधारण को उपलब्ध कराया जा रहा है। स्तरीय, आसानी से समझ में आने वाली और कुशल ट्रेनर्स द्वारा तैयार की गई सामग्री को इंटरनेट के माध्यम से दूर-दराज में उपलब्ध कराया जा सकेगा। इसके लिए 'स्कूल शिक्षा और साक्षरता विभाग' ने मुक्त शिक्षा संसाधन के राष्ट्रीय भंडारण का कार्य शुरू किया है जिसे नेशनल रिपोजिटरी ऑफ ओपन एडुकेशन रिसोर्सेज- एनआरओईआर कहा गया है। यह पहल ''राष्ट्रीय ई-लाइब्रेरी'' का एक हिस्सा बनने जा रही है। यहां शिक्षा सामग्री जैसे नक्शे, वीडियो, मल्टीमीडिया, ऑडियो क्लिप, ऑडियो बुक्स, तस्वीरें, लेख, विकी के पृष्ठ और चार्ट आदि उपलब्ध कराए जा रहे हैं।[7]

शिक्षा की गुणवता पाठ्यक्रम और कुशल शिक्षण पर निर्भर करती है। सूचना प्रौद्योगिकी में आई क्रांति, मोबाइल एप्लीकेशन और इंटरनेट के माध्यम से वीडियो, अक्षर और आवाज, तीनों माध्यमों में शिक्षा सामग्री तैयार कर, सर्वसाधारण को उपलब्ध कराया जा रहा है।

प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षक ऑनलाइन अपने विचारों और संसाधनों को साझा रहे हैं जो विद्यार्थियों के लिए बहुमूल्य सामग्री सिद्ध हो रही। शिक्षकों द्वारा ऑनलाइन साझा किए गए नोट्स हों, परिचर्चा हो, ब्लॉग अथवा ई-बुक हो, वीडियो या कोई अन्य सामग्री, सभी को डिजिटली संकलित कर, उंगलियों पर उपलब्ध कराया जा सकता है। वृहत पाठ्य सामग्री से बच्चों में शोध क्षमता का विकास होगा। कई तरह के गेम्स और एप्लीकेशंस के माध्यम से शिक्षण देने के प्रयोग में बच्चों की समझ और स्मृति में भी वृद्धि पाई गई। ''गल्ली गल्ली सिम सिम'' नामक एक अनूठे पहल के अंतर्गत बिहार और दिल्ली के कुछ स्कूलों में बच्चों को 'फन न लर्न' एप्लीकेशन के उपयोग से उत्साहजनक परिणाम मिले हैं।

स्थानीय भाषाओं में शिक्षा: भारत सरकार ने स्थानीय भाषाओं में उच्च गुणवत्ता की सामग्री का निर्माण करने के लिए 2013 में ओपन शैक्षिक संसाधन के राष्ट्रीय भंडार का शुभारंभ किया था लेकिन इसपर अभी भी सही मात्रा में सामग्री उपलब्ध नहीं हो सकी है। हिंदी भाषा की स्थिति बाकी सभी गैर अंग्रेजी भाषाओं से थोड़ी बेहतर जरुर है। सेंट्रल स्क्वायर फाउंडेशन, खान अकादमी के साथ मिलकर, *खान अकादमी-हिंदी मंच* विकसित कर रही है। यहां एनसीईआरटी पाठ्यक्रम के कक्षा 5 से लेकर 8 तक के गणित विषय के वीडियो ट्यूटोरियल और अभ्यास सामग्री उपलब्ध कराए जाने हैं। इंटरएक्टिव लर्निंग, ग्राफिक्स और चलचित्र के साथ-साथ स्थानीय अथवा मातृभाषा में शिक्षा ज्यादा प्रभावी सिद्ध हुई है। डिजिटल एजुकेशन की मदद से आसान और सस्ती शिक्षा, छात्र घर बैठे अपने मनपसंद संस्थान से प्राप्त कर सकेंगे। साथ ही, उन्हें सर्वश्रेष्ठ शिक्षकों का मार्गदर्शन भी मिल सकेगा। डिजिटल एजुकेशन में विभिन्न मेट्रिक शामिल है जो ई-लर्निंग के विभिन्न प्रकार के लिए लागू होते हैं:

• प्रचलित विडियो, • आभासी लाइव कक्षा, • मल्टीकास्टिंग, • इंटरैक्टिव सिमुलेशन, • सामग्री लेखन व प्रबंधन, • कौशल और ज्ञान का मूल्यांकन

शिक्षा को रुचिकर बनाने के लिए नए प्रयोग: फ्लिप क्लासरूम नामक एक गैर सरकारी प्रयोग में बच्चे वीडियो लेक्चर होमवर्क के रूप में देखते हैं और कक्षा में उसी विषय पर चर्चा होती है। चूंकि सभी बच्चों के अपने अपने अलग प्रश्न होते हैं, विषय की समझ अधिक गहरी हो पाती है। इसी तरह के एक और प्रयोग, यूक्रेन के टेबेन्को भाइयों द्वारा किया गया। माइंडस्टिक्स नाम के ब्रेन ट्रेनिंग गेम की मदद से, बच्चों के अंदर गणन की क्षमता में आश्चर्यजनक सुधार पाया गया है।[8]

शिक्षा तक आसान पहुंच सुनिश्चित करना: पाकिस्तान में यूनेस्को द्वारा मोबिलिंक नामक एक मोबाइल एसएमएस आधारित शिक्षण कार्यक्रम चलाया जा रहा है। फैजाबाद में लड़कियां अपने मोबाइल फोन से अपने शिक्षक से एसएमएस भेज कर उर्दू लिखने का अभ्यास करती मिल जाएंगी। दूर तक कोई स्कूल नहीं होने और कई सामाजिक कारणों की वजह से उसका स्कूल में पढ़ना संभव नहीं था। चार महीनों के अवधि के बाद यह पाया गया कि 'ए स्तर की साक्षरता परीक्षाओं' में उतीर्ण हुई छात्राओं की संख्या 27 प्रतिशत से बढ़कर 54 प्रतिशत हो गई। भारत में तकनीक और ब्रॉड्बैंड सेवा के विस्तार की योजनाओं को देखते हुए, यह उम्मीद की जा सकती है कि आने वाले कुछ वर्षों में शिक्षा तक पहुंच प्रश्न नहीं रह जाना चाहिए।

व्यवस्था प्रबंधन संबंधी सावधानियां: सरकार अगर किसी भी तरह के उपकरण का वितरण करती है, तो यह आवश्यक हो जाता है कि उसके उपयोग और रख-रखाव के संबंध में उचित ज्ञान पहले दिया जाए।

पेरू में शिक्षा मंत्रालय ने सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) की दिशा में कौशल सुधार के उद्देश्य से छात्रों के मध्य लैपटॉप वितरित किया। अगले वर्ष तक स्थिति यह थी की 92 प्रतिशत बच्चों के कंप्यूटर किसी न किसी समस्या ग्रस्त थे। मेजों पर रंगीन लैपटॉप, धूल और वाइरस, बग, एक्पायर हो चुके सॉफ्टवेयर से निष्क्रिय हो प्रयोग की हालत में नहीं थे। चूंकि उन बच्चों को लैपटॉप देने से पहले उसके प्रयोग, रख-रखाव, सही इस्तेमाल के संबंध में शिक्षित करने पर ध्यान नहीं दिया गया था। उदाहरण यह दर्शाने के लिए पर्याप्त हैं कि भारत के संदर्भ में किस तरह की गलतियों की संभावना अधिक है।

महिला सशक्तीकरण और इंटरनेट पर लिंगानुपात संतुलित करना: शिक्षा की गुणवत्ता, आर्थिक विकास को बढ़ावा देने, स्वास्थ्य और पोषण में सुधार लाने और मातृ के साथ-साथ शिशु मृत्यु दर को कम करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षित महिलाएं स्वयं का और अपने परिवार के स्वास्थ्य का बेहतर ध्यान रख पाती है। इंटरनेट पर आपसी संवाद और समूहों में जुड़ने से स्त्रियों के आत्मविश्वास में वृद्धि पाई गई, जिससे घरेलू हिंसा जैसे जटिल मामलों में कमी पाई गई है लेकिन इंटरनेट पर लिंगानुपात में बड़ा अंतर चिंता का कारण है। इसे दूर करने के लिए गूगल का एक प्लेटफोर्म खासा मददगार साबित हो रहा है। हेल्पिंग वीमेन गेट ऑनलाइन नाम के इस मंच www.hwgo.com पर इंटरनेट के प्रयोग और सुरक्षा संबंधी जानकारी के साथ-साथ घरेलू और कामकाजी महिलाओं के लिए सामान्य जानकारी भी सरल रूप में उपलब्ध है।

ई-क्रांति के अंतर्गत कुछ नवीनतम प्रयास

1. वर्तमान सरकार के कुछ अभिनव पहल, जैसे ई-शिक्षा, ई-बस्ता, नंद घर आदि इंटरनेट आधारित प्रोजेक्ट हैं, जो दूर-दराज के इलाकों में शिक्षा सामग्री पहुंचाएंगे, जहां कुशल शिक्षकों का आभाव है। ई-बस्ता पहल के अंतर्गत सभी स्कूली किताबों को डिजिटल कर के उसे इंटरनेट पर उपलब्ध करा दिया जाएगा जिससे कि लैपटॉप, कंप्यूटर, टैबलेट और स्मार्ट फोन आदि पर पढ़ा जा सके। इंटरनेट की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए, लगभग 250,000 माध्यमिक और उच्च-माध्यमिक विद्यालयों को फ्री वाई-फाई से जोड़ा जाएगा।
2. डिजिटल लाकर के अंतर्गत दस्तावेजों को ऑनलाइन सहेजा जा सकेगा, जिससे सत्यापन और अन्य जांच संबंधी परेशानियों से बचा जा सके। इससे स्कूल और विश्वविद्यालयों में प्रमाणपत्रों आदि के सत्यापन संबंधी परेशानी से मुक्ति मिल जाएगी।
3. डिजिटल साक्षरता सुनिश्चित करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर कार्यक्रम चलाए जाएंगे।
4. बड़े पैमाने पर ऑनलाइन ओपन पाठ्यक्रम (एमओओसी- मैसिव ऑनलाइन ओपन कोर्सेज) विकसित किया जाना है ताकि ई-शिक्षा के लिए जरुरी ढांचा विकसित हो
5. साथ ही 13 लाख बालवाडी को नंद घर में बदलने की योजना है। उन जगहों पर आंगनबाड़ी शिक्षक को डिजिटल टूल इस्तेमाल करने का प्रशिक्षण दिया जाना है।
6. 'ई-पाठशाला' नाम के एप्लीकेशन की मदद से छात्रों, अभिवावकों और शिक्षकों के लिए शिक्षा सामग्री को ऑनलाइन उपलब्ध कराया गया है।
7. सीबीएसई स्कूलों के लिए जारी ''सारांश'' नामक मोबाइल एप्लीकेशन, बच्चों के विषयानुसार समझ को जिला, राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर अन्य बच्चों की तुलना में समझने का विकल्प अभिभावकों को देता है।
8. स्कूल के मानकों और मूल्यांकन के ढांचे को पारदर्शी तरीके से लागू करने के लिए 'शाला-सिद्धि' नाम का प्लेटफार्म बनाया गया है। एक और अभिनव प्रयास केंद्रीय विद्यालयों के लिए किया गया। शाला दर्पण की सेवा अभिभावकों के लिए है, जिससे वह बच्चों की उपस्थिति, अंक-तालिका और स्कूल की समय सारिणी देख सकें।
9. सभी स्कूली किताबों को डिजिटल स्वरूप में बदलकर, जन सुलभ बनाया जा रहा ताकि शिक्षा सस्ती और सुलभ हो सके।[9]
10. सरकार द्वारा अन्य ऐसे नवीन प्रयासों को डिजिटल इंडिया की वेबसाईट (www.digitalindia.gov.in) के साथ-साथ (www.mhrd.gov.in/e-contents) पर देखा जा सकता है।

निष्कर्ष

तकनीक हमेशा से नवयुग में प्रवेश का माध्यम रही है। चाहे वह पेपर हो, प्रिंटिंग प्रेस हो, ब्लैकबोर्ड हो, पुस्तकें हों अथवा इक्कीसवीं सदी का मोबाइल ब्रॉडबैंड और इंटरनेट-सुविधा हो। अब देखना यह होगा कि इस नव-क्रांति का हम कितना सकारात्मक उपयोग करते हैं। पर इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि जैसे-जैसे ग्रामीण भारत, सूचना तंत्र से जुड़ता जाएगा, भारत में ज्ञान का उत्पादन भी बढ़ता जाएगा और एक बार पुनः हम वैश्विक स्तर पर अपनी ज्ञान-पताका फहरा पाएंगे। ❑

संदर्भ

1. http://en.unesco.org/gem-report/report/2016/education-sustainability-and-development-post-2015#sthash.sTqPQXsf.dpbs
2. http://en.unesco.org/gem-report/report/2016/education-sustainability-and-development-post-2015
3. http://mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/document-reports/Part1.pdf
4. http://mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/document-reports/Part2.pdf
5. http://www.bbc.com/hindi/india/2013/10/131013_higher_education_big_picture_rf_pk
6. https://en.wikipedia.org/wiki/Exabyte
7. http://pib.nic.in/newsite/PrintRelease.aspx?relid=106782
8. https://en.wikipedia.org/wiki/Flipped_classroom
9. http://www.digitalindia.gov.in/content/ekranti-electronic-delivery-service

भारत में शैक्षिक नीतियों एवं कार्यक्रमों से महिला सशक्तीकरण

दयाशंकर सिंह यादव

मनुष्य की मानसिक शक्ति के विकास हेतु शिक्षा एक अनिवार्य प्रक्रिया है। स्त्री हो या पुरूष किसी को शिक्षा से वंचित रखना उसकी मानसिक क्षमता विकसित होने से रोक देना है। भारत की लगभग आधी आबादी महिलाओं की है, जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में काफी पिछड़ी हुई हैं। यदि हम जीवन के विभिन्न क्षेत्रों का सूक्ष्म अवलोकन करें तो हमें विदित होगा कि महिलाओं को लगभग प्रत्येक क्षेत्र में भेदभाव, पूर्वाग्रह एवं असमानता का सामना करना पड़ता है। शिक्षा के क्षेत्र में वे अभी भी बहुत पिछड़ी हुई हैं। विशेषतः ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाएं अभी भी या तो अशिक्षित हैं या बहुत कम शिक्षित हैं, जिसे भारतीय समाज के लिए कलंक ही कहा जाएगा

शिक्षा राष्ट्र निर्माण की आधार शिला है तथा समाज और संस्कृति को गतिशील बनाने, विकास व शोधन की अनिवार्य कड़ी है। यह समाज में लोगों के अंदर नैतिक मूल्यों एवं संस्कृति का विकास करती है जिससे मनुष्य में मनसा, वाचा, कमर्णा का भाव जागृत होता है फलतः समाज का चतुर्मुखी विकास संभव होता है। ऐसे में राष्ट्र के प्रत्येक प्राणी को शिक्षित करना आवश्यक ही नही अनिवार्य व महत्वपूर्ण भी है।

महिला समाज का एक अभिन्न अंग है। ''जब एक पुरूष शिक्षित होता है तो व्यक्ति शिक्षित होता है और जब एक नारी शिक्षित होती है तो पूरा एक परिवार शिक्षित होता है।'' प्रसंगवश, वैदिक काल से ही हमारे समाज व परिवार को अपने कर्तव्यों एवं समर्पण भाव से मजबूत बनाने वाली देश की आबादी का आधा हिस्सा कहे जाने वाले समूह स्त्री के शिक्षा की स्थिति उत्साहवर्द्धक नहीं है। उनको कभी हमारे समाज ने अबला कहकर बहिष्कृत कर दिया तो कभी पारिवारिक कार्यों एवं सामाजिक रूढ़ियों के चलते शिक्षा का मौका ही नहीं दिया। उनको केवल उपभोग एवं शोषण की वस्तु समझकर पुरूष पितृसत्तात्मक समाज शिक्षा से वंचित करते रहे हैं। जबकि तथाकथित अबलाएं मौका मिलने पर सबला और सशक्त स्त्री का रूप धारण करके अपनी बौद्धिक शक्ति एवं सामाजिक चिंतन की विलक्षण प्रतिभा को समाज के सामने साक्ष्य के रूप में प्रतिष्ठित कर चुकी हैं।

किसी भी देश की संस्कृति उसका इतिहास और भाव-भाषा वहां की स्त्रियों के विकास, प्रगति और समृद्धि में परिलक्षित होता है। एक फ्रांसीसी विद्वान का इस संबंध में कहना है, ''किसी भी समाज की सभ्यता का अनुमान उस समाज में स्त्री को दिए गए आदर द्वारा लगाया जा सकता है।'' कहा जाता था-''*यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता:।*'' यदि हम भारतीय समाज के इतिहास का अवलोकन करें तो हम पाते हैं कि वैदिक काल में स्त्री को समाज में ऊंचा स्थान प्राप्त था। सभी सामाजिक व धार्मिक क्रियाकलापों में उसकी सहभागिता थी। धीरे-धीरे उसकी स्थिति में ह्रास हुआ और समाज में स्त्री का स्थान गिरता गया। मध्यकाल में स्त्री केवल भोग का साधन बनकर ही रह गई। वर्तमान काल में स्त्री की दशा में यद्यपि उल्लेखनीय सुधार हुआ है लेकिन अज्ञानता और अशिक्षा के बोझ से दबी नारी को अपने प्राचीनकाल के स्थान को पाने के लिए विकास और आत्मविश्वास का एक लंबा रास्ता तय करना है। हमारी सामाजिक व्यवस्था व परंपराओं ने जन्म से ही लड़का व लड़की में भेद किया है। इसी कारण से लड़के-लड़कियों के पालन-पोषण, रहन-सहन, शिक्षा-दीक्षा व चिकित्सा संबंधी सुविधाओं को उपलब्ध कराने में अधिकाधिक विभेद पाया जाता है। लड़के को जहां कुलदीपक, पारिवारिक समृद्धि, यश व प्रतिष्ठा का प्रतीक समझा जाता है, वहीं लड़की को पराई संपत्ति व दहेज आदि कारणों से बोझ व अभिशाप समझा जाता है। इसका प्रमुख कारण स्त्रियों में शिक्षा व साक्षरता का

लेखक हरदोई के समाजशास्त्र सी.एस.एन. (पी.जी.) कॉलेज के समाजशास्त्र विभाग में असिस्टेन्ट प्रोफेसर हैं। ईमेलः dayashankarcsn@gmail.com, sambadindia@gmail.com

अभाव है। जबकि मानवीय संसाधन का पूर्ण विकास, बच्चों के चरित्र-निर्माण व देश के बहुमुखी विकास के लिए स्त्री-शिक्षा पुरूषों की शिक्षा से अधिक महत्वपूर्ण व उपयोगी है। इसी आधार पर यह कहा गया है कि पुरूष की शिक्षा एक व्यक्ति की शिक्षा है, जबकि स्त्री की शिक्षा संपूर्ण परिवार की शिक्षा है, शिक्षा के द्वारा ही स्त्री पूरे परिवार को स्वर्ग बनाती हैं। इसी आधार पर स्त्री शिक्षा को विकास का आधार स्तंभ माना गया है। अत: स्त्री शिक्षा के अधिकाधिक अवसरों का सृजन एक अनिवार्य कदम माना गया है क्योंकि सुसंस्कृति एवं पूर्ण समाज की रचना शिक्षित स्त्रियों से ही संभव है।

यह सार्वभौम स्वीकार्य तथ्य है कि शिक्षा स्त्रियों की स्थिति में सुधार लाने के लिए महत्वपूर्ण साधन है। शिक्षा और विकास के बीच घनिष्ठ संबंध है। स्त्रियों को शिक्षा एवं अधिकार दिए बिना कोई समाज खुशहाल नहीं हो सकता। व्यक्ति, परिवार, समुदाय और राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विकास में स्त्रियों की शिक्षा एवं साक्षरता का महत्व निर्विवाद स्वीकार किया गया है। स्वतत्रंता प्राप्ति के पश्चात् हमने स्त्री-शिक्षा में क्रांतिकारी परिवर्तन प्राप्त किया है। फिर भी आज स्त्री-शिक्षा में कुछ कमियां व्याप्त है-

1. लड़कियों को लड़के के समान शैक्षिक अवसर प्राप्त नहीं कराए जाते हैं। सभी पक्षों व स्तरों पर लड़कों व लड़कियों की शिक्षा में व्यापक असमानता पाई जाती है।
2. कुशल प्रशासन का अभाव होने के कारण हमारे देश में स्त्री-शिक्षा में अनेकों प्रशासनिक कठिनाइयां तथा बाधाएं पाई जाती हैं।
3. स्त्री-शिक्षा में धन की कमी सबसे बड़ी समस्या है। इसी कारण देश के सभी भागों तथा वर्गों की स्त्रियों की शिक्षा का हमारे देश में अब तक भी प्रबंध नहीं हो पाया है।
4. आज भी हमारे देश में लड़कियों की शिक्षा के प्रति विचार बड़े संकीर्ण पाए जाते हैं। इसलिए कम उम्र में ही शादी करना, पर्दा-प्रथा तथा अंधविश्वासों के कारण स्त्री-शिक्षा को बढ़ावा नहीं मिल सका है। हमारे समाज के अंतर्गत यह विचार व धारणा अब भी पाई जाती है कि लड़कियों को उच्च शिक्षा नहीं दी जानी चाहिए। स्त्री-शिक्षा में एक बड़ी समस्या योग्य व प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव होना है।
5. हमारे देश में आज भी अधिकतर जनता अशिक्षित है। उन्हें शिक्षा के महत्व की उचित जानकारी प्राप्त नहीं है।

भारत में स्त्री शिक्षा की स्थिति

अशिक्षित व्यक्ति प्राय: परिवर्तनों के प्रति उदासीन रहता है। वह अपनी रूढ़िवादी मान्यताओं के प्रति विश्वस्त रहता है। सामाजिक और आर्थिक प्रगति तथा राष्ट्रीय एकीकरण के लिए शत-प्रतिशत साक्षरता आवश्यक है। आधुनिक जीवन शैली, कर्तव्य-दायित्व बोध, राष्ट्रीय चरित्र निर्माण, नैतिक मूल्यों का संरक्षण इत्यादि सभी के लिए शिक्षित होना आवश्यक है। सभी का सर्वांगीण विकास शिक्षा का मूलमंत्र है। लोकतांत्रिक प्रणाली में सभी का शिक्षित होना आवश्यक है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति महत्वपूर्ण है लेकिन निरक्षरता हमारे देश का अभिशाप बनी हुई है। स्त्री-निरक्षरता की स्थिति तो और भी भयावह है। 1901 में हमारे देश में स्त्री-साक्षरता मात्र 0.6 प्रतिशत थी जो स्वतंत्रता के उपरांत 1951 में बढ़कर 8.9 प्रतिशत ही हो पाई। स्वतंत्र भारत के संविधान में 14 वर्ष की आयु तक के सभी लड़के-लड़कियों के लिए अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा की बात कही गई थी। यह हमारा दुर्भाग्य है कि नई शताब्दी में प्रवेश करने के उपरांत भी हम इस लक्ष्य को आज तक भी प्राप्त नहीं कर पाए हैं।

जनगणना 2011 की अंतिम रिपोर्ट से पता चलता है कि भारत ने 2001 की जनगणना के बाद के दशक के दौरान साक्षरता के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है। 2011 की जनगणना में साक्षरता की दर 74.04 प्रतिशत दर्शाई गई है, जो 2001 में 64.84 प्रतिशत थी। इसी दौरान स्त्री-साक्षरता की दर में 11.8 प्रतिशत की वृद्धि हुई। 2001 में यह 53.7 प्रतिशत थी, जो बढ़कर 2011 में 65.5 प्रतिशत हो गई। 2001-2011 अवधि के दौरान स्त्री-साक्षरता दर में 11.79 प्रतिशत की वृद्धि हुई, जबकि पुरूष साक्षरता दर में 6.88 प्रतिशत की वृद्धि हुई। 2011 में निम्न राज्यों व केंद्र शासित प्रदेशों की स्त्री-साक्षरता की दर (प्रतिशत) राष्ट्रीय औसत से उच्च है- केरल, मिजोरम, गोआ, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, त्रिपुरा, तमिलनाडु, उत्तरांचल, गुजरात, पंजाब, सिक्किम, पं. बंगाल, मणिपुर, हरियाणा, नागालैंड, कर्नाटक, असम, मेघालय, लक्षद्वीप, दिल्ली, चंडीगढ़, पुडुचेरी, अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह, दमन एवं दीप; इनमें से अधिकांश राज्य जनसंख्या व क्षेत्रफल की दृष्टि से छोटे राज्य व संघीय प्रदेश हैं।

2011 में स्त्री साक्षरता की दृष्टि से बिहार, झारखंड, जम्मू-कश्मीर, अरुणाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, आंध्र प्रदेश, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ जैसे बड़े एवं महत्वपूर्ण राज्य तथा दादरा एवं नगर हवेली संघीय प्रदेश काफी पिछड़े हुए हैं। इन बड़े एवं महत्वपूर्ण राज्यों में स्त्री शिक्षा के विकास से ही भारत में शिक्षा की दृष्टि से क्रांतिकारी बदलाव लाया जा सकता है। साक्षरता और नामांकन से संबंधित विभिन्न आंकड़ों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि शिक्षा के क्षेत्र में लिंग पर आधारित भेदभाव धीरे-धीरे कम हो रहे हैं।

बच्चों की स्थिति पर यूनीसेफ की प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार विश्व में बच्चों की सर्वाधिक संख्या भारत में है। विश्वभर में लगभग 12 करोड़ बच्चे स्कूल नहीं जाते हैं, जिनमें से आधी से अधिक केवल बालिकाएं हैं। शिक्षा

भारत में 1901 से 2011 तक साक्षरता वृद्धि के आंकड़ों में महिला

वर्ष	कुल वृद्धि	पुरूष	स्त्री	वृद्धि में अंतर
1901	5.35	9.83	0.60	9.23
1911	5.92	10.56	1.05	9.57
1921	7.16	12.21	1.81	10.40
1931	9.50	15.59	2.93	12.60
1941	16.10	24.90	7.30	17.60
1951	18.33	27.16	8.86	18.30
1961	28.30	40.40	15.35	25.05
1971	34.45	45.96	21.97	23.98
1981	43.56	56.38	29.76	26.62
1991	52.21	64.13	39.29	24.84
2001	64.8	75.26	53.67	21.59
2011	74.04	82.14	65.46	16.68

स्रोत: भारत की जनगणना 2011

से वंचित इन बालिकाओं का तुलनात्मक रूप से खासतौर पर दुर्भाग्य है कि ये आसानी से गरीबी, भूख, हिंसा, शोषण और अवैध व्यापार के दुष्चक्र में फंस जाती है। इस प्रकार अशिक्षा की सर्वाधिक मार बालिकाओं को अधिक झेलनी पड़ती है। यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि बात चाहे बालकों की हो या बालिकाओं की शिक्षा की, अपने देश में कुल बच्चों की संख्या अधिक होने से अशिक्षित बच्चों की संख्या भी अत्यधिक है। एक रिपोर्ट के मुताबिक यहां प्रतिवर्ष लगभग 2.5 करोड़ बच्चे जन्म लेते हैं।

भारत में 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों की संख्या 37.5 करोड़ तथा 6 वर्ष से कम उम्र के बच्चों की संख्या 15.8 करोड़ है लेकिन सच्चाई यह है कि शिक्षा के लिए अरबों-खरबों रूपये वर्षानुवर्ष खर्च करते हुए अनेक योजनाओं और कार्यक्रमों के संचालन के उपरांत भी इस दिशा में समुचित प्रगति नहीं हो सकी है। वास्तविकता यह है कि वर्तमान देश में 6 से 14 आयुवर्ग के करीब 22 करोड़ बच्चों में से 19 करोड़ बच्चे ही प्राथमिक विद्यालयों में उपस्थिति दर्ज करा पा रहे हैं। शेष 3 करोड़ बच्चे अभी भी स्कूल का मुंह तक नहीं देख पाए हैं।

भारत में स्त्री शिक्षा के विकास हेतु विभिन्न शैक्षिक नीतियां

स्त्री शिक्षा के विकास और देश की मुख्य धारा में उनको एक अभिन्न अंग बनाने में किए गए प्रयास संक्षेप में निम्नलिखित है-

- विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49) ने अपने प्रतिवेदन में (अ) स्त्रियों के लिए शैक्षिक अवसरों को बढ़ाने (ब) सामान्यत: पुरूषों और स्त्रियों को समरूप शिक्षा न देने तथा (स) पुरूषों की नकल करने के स्थान पर ऐसी शिक्षा देने की बात कही जिसे पाकर महिला एक अच्छी महिला बन सके।
- माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) मुख्य रूप से स्त्री शिक्षा के प्रति उदासीन रहा लेकिन आयोग ने लड़कियों के प्रति गृह विज्ञान की शिक्षा के लिए विशेष सुविधाएं देने तथा मांग होने पर लड़कियों के लिए पृथक विद्यालय खोले जाने का सुझाव दिया।
- भारत सरकार द्वारा गठित दुर्गाबाई देशमुख समिति (1957) ने कम से कम अवधि में पुरूष और स्त्री शिक्षा के मध्य की दूरी को भरने का सुझाव दिया।
- स्त्री शिक्षा के प्रति जन सहयोग में कमी के कारणों का पता लगाने के लिए गठित भक्तवत्सलम समिति ने 1963 में अपने प्रतिवेदन में अन्य सुझावों के अतिरिक्त यह कहा कि प्रत्येक 300 की आबादी पर एक प्राइमरी स्कूल, हर 3 मील की दूरी पर एक जूनियर हाईस्कूल तथा 5 मील की दूरी पर एक माध्यमिक स्कूल की सुविधा दी जानी चाहिए।
- हंसा मेहता समिति (1964) ने अपने प्रतिवेदन में लिंग के आधार पर पाठ्यक्रम का विरोध किया तथा प्राथमिक स्तर पर लड़के एवं लड़कियों के लिए एक समान पाठ्यक्रम और माध्यमिक स्तर पर विभिन्न पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करने का सुझाव दिया।
- कोठारी आयोग (1964-66) ने अपने प्रतिवेदन में स्त्री शिक्षा के विकास के लिए अब तक की गई सभी सिफारिशों का समर्थन किया तथा यह कहा कि राज्य एवं केंद्रीय सरकारों को विशेष योजनाओं, अभिप्रेरकों एवं पर्याप्त धन की व्यवस्था करके स्त्री शिक्षा के मार्ग की सभी बाधाओं को दूर करने का निश्चित प्रयास करना चाहिए।
- देश की प्रथम शिक्षा नीति (1968) में सामाजिक पुनर्निर्माण की गति को तीव्र करने के लिए लड़कियों की शिक्षा के महत्व एवं आवश्यकता को स्वीकार कर लड़के और लड़कियों के लिए समान शैक्षिक अवसरों पर बल दिया गया।
- स्त्रियों की दशा को जानने के लिए गठित फुलरेनू गुहा समिति (1971-74) ने शिक्षा के सभी स्तरों पर ''सह-शिक्षा'' पर बल दिया।
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में 'स्त्रियों की समानता' हेतु 'शिक्षा' के महत्व को स्वीकार किया गया। इस नीति में स्त्री साक्षरता के मार्ग की सभी बाधाओं को दूर करने तथा विभिन्न तकनीकी एवं व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में स्त्री की

स्वच्छ भारत अभियान एवं बालिका शिक्षा

शिक्षा का मूलभूत उद्देश्य व्यक्ति की ऐसी स्वतंत्रता है जो उसके जीवन में पूर्णता की अनुभूति जगा सके सबके बीच समानता लाए, व्यक्तिगत और सामूहिक आत्मनिर्भरता लाए तथा राष्ट्रीय एकता पर बल दें। बालिका शिक्षा को बढ़ावा देकर देश में विद्यमान ज्वलंत समस्याओं का मुकाबला किया जाना संभव हो। शिक्षा के माध्यम से बालिकाओं में सही दृष्टिकोण, सही विचार और निर्णय लेने की क्षमता पैदा हो सकती है। महिला न केवल स्वयं लाभांवित होती है बल्कि भावी पीढ़ी भी लाभांवित होती है।

ग्रामीण बालिकाओं के स्कूलों में नामांकन बढ़वाने तथा ठहराव सुनिश्चित करने हेतु बुनियादी ढांचे को सुधारने व सुदृढ़ करने के लिए कक्षाओं शौचालयों, पेयजल व्यवस्था का भी प्रबंध किया जा रहा है। परंतु अभी भी आवश्यकता से कम है क्योंकि विद्यालय छोड़ने की दर लड़कों की अपेक्षा लड़कियों की अधिक है। विद्यालय छोड़ने की ऊंची दर की परिणति यह होती है कि बहुत से लड़कियां शिक्षा के उच्च स्तरों तक नहीं पहुंच पाती। परिणामस्वरूप शिक्षा संस्थान उनकी पकड़ से दूर हो जाते हैं। प्रधानमंत्री ने भी कहा था कि शौचालय नहीं होने से लड़कियां पढ़ाई-लिखाई छोड़ने को विवश हो जाती हैं तथा आर्थिक गतिविधियों में योगदान नहीं कर पाती हैं।

2015-16 के आम बजट में स्वच्छ भारत अभियान के लिए विशेष प्रावधान भी किया गया है। ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में विद्यालय परिसर में स्वच्छ भारत अभियान के माध्यम से स्वच्छता संबंधी सुविधाओं में सुधार के लिए स्वच्छ भारत कोष की स्थापना की गई है। विद्यालयों में बालिकाओं के लिए शौचालय निर्माण, 'बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ', 'बाल स्वच्छता अभियान, सुकन्या समृद्धि योजना और मिशन इन्द्रधनुष जैसे अनेक कार्यक्रम महिलाओं के स्वावलम्बन और सशक्तीकरण के दिशा में क्रांतिकारी प्रयास हैं। प्रधानमंत्री के आह्वान पर अनेक संस्थाओं ने ग्रामीण क्षेत्रों में महिला स्वास्थ्य सुविधाओं के लिए पहल भी की है। ये संस्थाएं देश के विभिन्न हिस्सों में विद्यालय, छात्राओं और ग्रामीण महिलाओं के लिए शौचालय निर्माण का कार्य कर रही हैं।

सहभागिता को बढ़ाने की बात कही गई।

- राष्ट्रीय शिक्षा नीति की पुनर्निरीक्षण समिति (आचार्य राममूर्ति समिति) ने 1990 में अपने प्रतिवेदन में ''शिक्षा और स्त्री समानता'' के लिए अनेक कदमों को उठाने की बात कही। अपने सुझावों में समिति ने माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में कम से कम 50 प्रतिशत पदों पर महिला अध्यापकों की नियुक्ति करने को कहा।
- वर्तमान में 'सर्व शिक्षा अभियान' के नाम से संचालित दस वर्षीय (2001-2010) वृहद शैक्षिक कार्यक्रम के माध्यम से वर्ष 2010 के अंत तक देश के 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को आठवीं तक की शिक्षा पूर्ण कराने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। वर्ष 2002 में 86वां संविधान संशोधन करके शिक्षा को मौलिक अधिकारों में सम्मिलित कर लिया गया है।

भारत में स्त्री शिक्षा के विकास हेतु विभिन्न कार्यक्रम

- स्त्री शिक्षा के विकास हेतु केंद्र सरकार निम्नलिखित प्रमुख कार्यक्रम संचालित कर रही है-विशेष आवासीय विद्यालय योजना, बालिका प्रोत्साहन राशि योजना, अल्पसंख्यकों हेतु नई छात्रवृत्ति योजना, राजीव गांधी राष्ट्रीय पालनाघर योजना, विकलांग बच्चों हेतु रोजगारोन्मुखी प्रशिक्षण योजना, स्नातकोत्तर प्रतिभा छात्रवृत्ति योजना, राष्ट्रीय प्रतिभा प्रोत्साहन योजना, एकल बालिका निःशुल्क शिक्षा योजना, इंदिरा गांधी इकलौती बालिका छात्रवृत्ति योजना।
- उत्तर प्रदेश द्वारा बालिकाश्री योजना, निःशुल्क पाठ्य पुस्तक योजना, छात्राओं हेतु निःशुल्क स्कूली ड्रेस योजना, हरियाणा द्वारा लाडली बेटी योजना, मध्य प्रदेश द्वारा गांव की बेटी योजना, छत्तीसगढ़ द्वारा एकलव्य विद्यालय योजना, मेधावी बालिकाओं हेतु निःशुल्क स्कूटर योजना इत्यादि प्रमुख हैं।
- राष्ट्रीय साक्षरता मिशन उन 47 जिलों पर विशेष ध्यान दे रहा है, जहां 2001 की जनगणना के अनुसार स्त्री साक्षरता की स्तर 30 प्रतिशत से भी कम है। इनमें से अधिकतर जिले बिहार, झारखंड, उत्तर प्रदेश और उड़ीसा में है।
- सर्व शिक्षा अभियान की शुरुआत अच्छी हुई है। देश की लगभग 94 प्रतिशत जनता इससे लाभांवित हो रही है। सर्व शिक्षा अभियान में नामांकन और प्रवेश प्रक्रिया में सुधार के साथ ही बालिकाओं की शिक्षा पर अधिक बल दिया जा रहा है।
- शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के अंतर्गत 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्रदान किया गया है। ऐसा देखा जाता है कि अभिभावक लड़कियों की शिक्षा पर आर्थिक खर्च नहीं करना चाहते हैं। शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 निःशुल्क शिक्षा होने से लड़कियों के नामांकन एवं धारण में तेजी से वृद्धि हुई है।
- ऐसे माता-पिता जिनकी केवल एक ही पुत्री है उनकी शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय एवं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने एकल बालिका प्रोत्साहन योजना 2005 में संचालित किया।

पंचवर्षीय योजनाओं में महिला शिक्षा का प्रावधान

स्त्री शिक्षा के विकास एवं विस्तार के लिए पंचवर्षीय योजनाओं की अहम भूमिका रही। भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) में शिक्षा एवं अनुसंधान कार्य को महत्व देते हुए कुल 149 करोड़ व्यय करने का प्रावधान किया गया था। उस समय कुल साक्षरता दर 18.33 प्रतिशत थी। जिसमें पुरूष साक्षरता दर 27.16 प्रतिशत व स्त्री साक्षरता दर 8.86 प्रतिशत थी। इस योजना में बुनियादी शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा व प्राविधिक शिक्षा के साथ ही महिला शिक्षा के लिए विशेष प्रावधान किया गया था स्त्री पुरूषों की शिक्षा में वर्तमान विषमता को दूर किया जाए। प्राथमिक स्तर पर लड़के-लड़कियों के लिए समान पाठ्यक्रम होना चाहिए।

11 वीं पंचवर्षीय योजना के शैक्षिक लक्ष्य

- प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर विद्यालय छोड़कर घर बैठ जाने वाले बालकों की दर (ड्राप आउट रेट) को वर्ष 2003-04 में 52.2 प्रतिशत से घटाकर वर्ष 2011-12 तक 20 प्रतिशत के स्तर पर लाना।
- प्राथमिक विद्यालयों में शैक्षणिक ज्ञान प्राप्त करने के न्यूनतम मानक स्तरों को प्राप्त करना एवं गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए शिक्षा की प्रभावशीलता के मूल्यांकन हेतु नियमित रूप से जांच करते रहना।
- 7 वर्ष से अधिक आयु वर्ग में साक्षरता दर को बढ़ाकर 85 प्रतिशत करना।
- साक्षरता में लिंग-अंतराल (जेंडर गैप) को 10 प्रतिशतांक तक नीचे लाना।
- प्रत्येक आयु वर्ग में उच्च शिक्षा प्राप्त करने वालों के अनुपात को वर्तमान में 10 प्रतिशत से बढ़ाकर ग्यारहवीं योजना के अंत तक 15 प्रतिशत करना।

12वीं पंचवर्षीय योजना के शैक्षिक लक्ष्य

- विकास की दर 8 प्रतिशत सुनिश्चित किया जाना।
- इस पंचवर्षीय योजना में तीव्र, अधिक समावेशी और धारणीय विकास पर जोर दिया गया है।
- महिला शिक्षा को समावेशी शिक्षा के माध्यम से अधिक तीव्र गति से विकास करने पर बल दिया गया है।

संपूर्ण देश में स्त्री और पुरूष के मध्य लिंग भेदों को शैक्षिक प्रक्रिया के माध्यम से दूर करने का प्रयास किया जा रहा है और 'महिला समस्या' की दिशा में सार्थक कदम उठाए जा रहे हैं। यही कारण है कि आज हम सभी क्षेत्रों में स्त्रियों को पुरूषों से कंधो से कंधा मिलाकर कार्य करता हुआ पाते हैं। आज जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जहां स्त्रियों ने उस क्षेत्र में सर्वोच्चता को प्राप्त न किया हो। हर्ष का विषय है कि अब स्त्री जगत का बहुत बड़ा भाग अपनी संवादहीनता, संवेदनशीलता, भीरूता एवं संकोचशीलता से मुक्त होकर सुदृढ़ समाज के सृजन में अपनी भागीदारी के लिए प्रस्तुत है।

विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों और कानूनों ने स्त्रियों में एक चेतना और आत्मविश्वास पैदा किया है लेकिन यह संतोष करने और चुप बैठ जाने की स्थिति नहीं है। अभी बहुत किया जाना शेष है और इसके लिए स्त्रियों को ही आगे आना होगा। स्त्रियों को अपना आत्म-अवलोकन करना होगा, अपनी कमियों का पता लगाकर उन्हें दूर करना होगा, अधिकारों की मांग के साथ-साथ कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना होगा, निरक्षरों को शिक्षित करना होगा, समानता

(जारी ... पृष्ठ 74 पर)

किशोरावस्था और विद्यार्थी मन

जितेन्द्र नागपाल

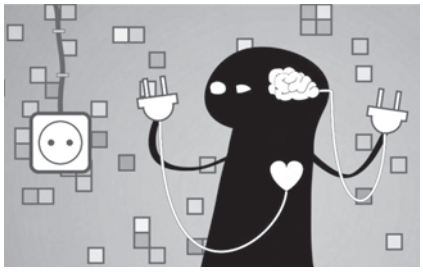

'शिक्षा' शब्द के मायने अलग अलग लोगों के लिए भिन्न-भिन्न होते हैं। इसके सबसे संकीर्ण लेकिन व्यापक रूप से समझे जाने वाले अर्थ में शिक्षा से तात्पर्य नियमित स्कूल जाना, शैक्षिक पाठ्यक्रम पढ़ना, ग्रेड हासिल करना और एक ऐसी औपचारिक डिग्री हासिल करना है जो इंजीनियर, डॉक्टर या व्यवसायी पेशेवर के रूप में उत्पादक श्रम बल से जुड़ने की अनुमति दे और यह प्रमाणित करे कि डिग्रीधारक इसके लिए योग्य है। यहां से व्यक्ति सफलता के पथ पर अग्रसर होने लगता है। वर्षों से, शिक्षा के अर्थ में विकास हुआ है। मार्क ट्वेन के शब्दों में इसकी स्पष्ट झलक मिलती है *''मैंने कभी भी स्कूली शिक्षा को अपनी शिक्षा में हस्तक्षेप करने नहीं दिया''*

स्कूलों से अब पढ़ना, लिखना और हिज्जय करना सिखाने की आशा नहीं की जाती है। आज के दौर में कोई स्कूल छात्र के प्रदर्शन, उसके विभिन्न गुणों को मजबूत करने, उन्हें बेहतर निर्णय लेने के योग्य बनाने, समस्याओं से जूझने और सशक्तीकरण में कितना बेहतर है, इसी आधार पर वह स्वयं पर गर्व करता है और स्वयं को अन्य प्रतिस्पर्द्धियों से अलग दिखाता है।

''शिक्षा से तात्पर्य विकल्पों के निर्माण, लोगों को इन विकल्पों के प्रति जागरूक करना और उन्हें इन विकल्पों के उपयोग के योग्य बनाना है।'' इस व्यापक दर्शन के साथ चलते हुए, स्कूल पढ़ाने के तरीकों में बदलाव ला रहे हैं, तकनीकों को अपना रहे हैं, शिक्षार्थियों में सीखने की वृत्ति और कौशल प्रदान करने वाले चुनौतीपूर्ण और रोचक पाठ्यक्रमों को शामिल कर रहे हैं। छात्रों में संकल्पनात्मक समझ और ज्ञान के अनुप्रयोगों की जांच के लिए तथ्यात्मक और रटी-रटाई पद्धति के स्थान पर इनके आकलन और मूल्यांकन के तरीकों में बदलाव आ रहा है।

जिस प्रकार से शिक्षा जगत का विकास हो रहा है, यह ध्यान देने योग्य है कि अंतिम उपयोगकर्ता के रूप में छात्रों में भी बदलाव आ रहा है। अब छात्र केवल पूर्ण रूप से शिक्षकों और विहित पाठ्य पुस्तकों पर ही स्वयं को निर्भर नहीं रखते। स्कूल ज्ञान के मंदिर नहीं रहे और उसे इंटरनेट से भारी प्रतिस्पर्द्धा मिल रही है। आज के शिक्षार्थी की सूचना तक व्यापक पहुंच है और चूंकि शिक्षकों का कार्य इन सूचनाओं के प्रति समझ विकसित करने का हो गया है, इसलिए उन्हें भी ज्ञान के प्रथम स्रोत के रूप में नहीं देखा जाता है। शिक्षा को सुविधाएं मुहैया कराने के रूप में विकसित किया जाना चाहिए। जब बच्चे किशोरावस्था में प्रवेश करते हैं और प्राथमिक से माध्यमिक विद्यालय में जाते हैं, तब यह और अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है।

किशोरावस्था बचपन से युवावस्था में प्रवेश का काल होता है। व्यक्तिगत पहचान का विकास और अंतरंगता के लिए सक्षम हो जाना, किशोरावस्था के ये दो महत्वपूर्ण कार्य होते हैं। किशोरावस्था में स्वयं की पहचान बनाने से तात्पर्य आत्मनिर्भर अस्तित्व के विकास से है। जन्म से, किशोरावस्था आने तक व्यक्तित्व के संदर्भ में व्यक्ति के जीवन में कई पड़ाव आते हैं। इनमें माता-पिता, दोस्त, प्रभावी शिक्षक या अन्य वयस्क लोगों, साथी-संगति, स्वयं के सामाजिक वर्ग, ऐतिहासिक परंपराओं, नैतिक या धार्मिक समूह, लिंग इत्यादि की पहचान शामिल हैं। किशोरावस्था के दौरान इन सभी का समन्वय होता है और ये सभी मिलकर व्यक्ति के स्थायी चरित्र का निर्माण करते हैं, जो कि वयस्क अवस्था के दौरान व्यक्ति की आधारभूत पहचान बन जाती है। व्यस्क भौतिक गुणों विशेषकर लैंगिक विकास के साथ वेष-भूषा और आकार में तीव्र परिवर्तन से लैंगिक सक्रियता का उद्भव होता है, जो कि किशोरों के लिए नई समस्याएं खड़ी करता है। व्यक्ति के सुरक्षित भविष्य के निर्माण के लिए इन नए लक्षणों के परिणामों का मूल्यांकन और इसकी योजना बेहद जरूरी होता है।

इन दिनों मन में *मैं कौन हूं? मैं किस क्षेत्र के लिए उपयोगी हूं? मैं भविष्य में*

लेखक प्रख्यात मनोचिकित्सक हैं। संप्रति वह भारतीय बाल एवं किशोर मानसिक स्वास्थ्य संघ के अध्यक्ष हैं। साथ ही वह इंडियन जर्नल ऑफ स्कूल हेल्थ एंड वेल वीइंग के मुख्य संपादक भी हैं। वह एनसीईआरटी के द्वारा 2005 में गठित राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा समिति से संबंधित स्वास्थ्य तथा शारीरिक शिक्षा विषयक राष्ट्रीय फोकस ग्रुप के सदस्य भी हैं। ईमेल: jnagpal10@gmail.com

क्या बनूंगा? जैसे प्रश्न उठने लगते हैं। अब व्यक्ति के पास एक पहचान बनाने के कार्य के लिए काफी विकल्प होते हैं। यह एक सुयोग है कि संज्ञान में यह विकास यौवन की भावनाओं के साथ होता है, जो किशोर को आवेग, गहरी भावनाओं और साथियों के बीच नई सामाजिक दवाब से लड़ने की क्षमता प्रदान करता है। प्रारंभिक किशोरावस्था के लिए साथियों की जरूरत अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि उस समय ही व्यक्तिगत जुदाई जैसे विकासात्मक चरण प्रारंभ होता है, जिसमें युवा किशोर, भौतिक रूप से अपने माता-पिता से अलग होते हैं और व्यक्तिगत पहचान के निर्माण के लिए संघर्ष करते हैं।

10-19 वर्ष के आयु समूह की किशोरावस्था की वैश्विक जनसंख्या में हिस्सेदारी कुल जनसंख्या का पांचवां भाग है जबकि भारत में यह कुल जनसंख्या का एक-चौथाई है। उनकी बहुत विशेष और अलग मांग है, जिसे लंबे वक्त तक नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। उनकी जरूरतों को पूरा करने से न केवल देश के सामाजिक-आर्थिक विकास बल्कि सामाजिक समरसता, लैंगिक न्याय और जनसंख्या स्थिरीकरण जैसे अन्य सामाजिक चिंताओं को पूरा करने में भी सहयोग मिलेगा।

सच्चे अर्थ में, ये वर्ष रचनात्मकता, आदर्शवाद, आशावाद और साहस की भावना के होते हैं लेकिन ये वर्ष प्रयोग और जोखिम लेने, नकारात्मक संगति के दबाव को झेलने, विशेषकर अपने शरीर और यौनिकता से संबंधित महत्वपूर्ण मुद्दों पर बेपरवाह निर्णय लेने के भी होते हैं। इन चुनौतियों से किशोरावास्था में कैसे जूझा जाता है, यह व्यापक रूप से उनके वातावरण पर निर्भर करता है। इस प्रकार किशोरावस्था व्यक्ति के जीवन में एक महत्वपूर्ण मोड़ होता है, इस अवधि में क्षमता में वृद्धि होती है लेकिन जोखिम का खतरा भी बढ़ जाता है।

घर से बाहर स्कूल एक ऐसा तंत्र होता है जहां बच्चे उत्पादक और सक्षम नागरिक बनने के लिए, नई जानकारियों और कौशलों को प्राप्त कर सकते हैं। इसके परिणामस्वरूप वे अपने समुदायों को विकसित और समृद्ध करने के लिए स्वयं को समर्पित करते हैं तथा समर्थन व सुविधाएं प्रदान करते हैं। स्वास्थ्य को प्रमुखता देने वाले स्कूल ऐसे प्रतिष्ठान होते हैं जहां शिक्षा और स्वास्थ्य कार्यक्रम *आनंददायक और खुशनुमा* माहौल तैयार करते हैं, जो पढ़ाई और विकास में विविधता को बढ़ावा देता है। क्या बच्चों को इसका अधिकार नहीं है?

ज्यादातर सरकारी स्कूलों में परामर्शदाता या सामाजिक कार्यकर्ता की व्यवस्था नहीं हैं, फिर भी स्कूलों को अपने छात्रों की ज्यादा से ज्यादा मानसिक स्वास्थ्य जरूरतों को पूरा करने के लिए कहा जाता है। इसके साथ ही, डराने-धमकाने और स्कूली हिंसा की बढ़ती घटनाओं की रिपोर्टों के आधार पर स्कूल परिसर के मानसिक पीड़ा पर संज्ञान लेने और निराकरण के लिए कदम उठाने की जरूरत है।

पिछले दशक में, स्कूली हिंसा, यौन उत्पीड़न, डराने-धमकाने, मादक द्रव्यों के सेवन, भेदभाव की समस्याओं को दूर करने और स्वस्थ अनुशासन के क्षेत्र में स्कूल के मानसिक स्वास्थ्य का विस्तार हुआ है। आधुनिक स्कूल परामर्श, शीघ्र शैक्षिक और व्यावहारिक लक्ष्यों को पाने में सहायता देने और बच्चों के समग्र व्यक्तित्व में दीर्घावधि में नकारात्मक परिणामों को रोकने के लिए व्यक्तिगत और व्यवस्था के स्तर पर आरंभिक पहचान और हस्तक्षेप पर अधिक केंद्रित है।

भारत में बाल एवं किशोर मानसिक स्वास्थ्य

वर्ष 2005 के आईसीएमआर अध्ययन के मुताबिक बाल एवं किशोर मानसिक स्वास्थ्य विकार का समग्र प्रसार 12-14 प्रतिशत है। तालिका 1 से पता चलता है कि 0-5 वर्ष की आयु वर्ग में अधिकतम (33 प्रतिशत) बच्चों का इसके उग्र लक्षणों के लिए उपचार कराया गया था।

6-11 वर्ष की आयु वर्ग में औसत विकारों में उन्मत्त विक्षिप्ति, उग्रता और व्यवहार संबंधी विकार शामिल थे। वहीं 12-16 वर्ष की आयु वर्ग में औसत विकारों में मनोविकृति, उन्मत्त विक्षिप्ति और व्यवहार संबंधी विकार शामिल थे। मनोविकृति और व्यवहार संबंधी विकार पुरुषों में अधिक था वहीं उन्मत्त विक्षिप्ति के मामले बालिकाओं में आम थे। मनोरोग क्लीनिकों/बाल मार्गदर्शन क्लीनिकों में जाने वाले बच्चों में मामूली मानसिक पिछड़ापन के मामले 0-5 वर्ष की आयु वर्ग के 22 प्रतिशत बच्चों में, 6-11 वर्ष के आयु वर्ग के 19 प्रतिशत बच्चों में और 12-16 वर्ष के आयु वर्ग के 6 प्रतिशत बच्चों में थे।

अपने छात्रों के विकास के मामलों और मानसिक स्वास्थ्य जरूरतों को पूरा करने के लिए, स्वास्थ्य को शैक्षिक पाठ्यक्रम में

तालिका 1: तीन आयु वर्गों में प्रथम अक्ष के निदानों के प्रारूप

निदान	0-5 वर्ष*		6-11 वर्ष#		12-16$	
	सं.	%	सं.	%	सं.	%
मनोविकृति	4	2.1	45	7.1	412	40.6
उन्मत्त विक्षिप्ति	3	1.6	142	22.5	274	27.0
व्यवहार विकार	12	6.4	83	13.1	72	7.1
बाल्यावस्था के भावनात्मक विकार एवं अन्य विक्षिप्ति	8	4.3	39	6.2	50	4.9
बाल्यावस्था के उग्र लक्षण	62	33.0	92	14.6	9	0.9
अनिच्छा	3	1.6	39	6.2	19	1.9
हकलाहट और बड़बड़ाहट	5	2.7	33	5.2	25	2.5
नींद के विशेष विकार	2	1.1	8	1.3	14	1.4
मनोरोग (तनाव, सिरदर्द)	0	0	12	1.9	10	1.0
शैक्षिक पिछड़ापन	1	0.5	46	7.3	20	2.0
समायोजन प्रतिक्रिया	3	1.6	5	0.8	10	1.0
अन्य	10	5.32	30	4.7	50	4.9
अक्ष 1 में बिना किसी मनोवैज्ञानिक निदान के	75	39.9	58	9.2	50	4.9

*(N = 188), #(N = 632), $(N = 1015)

शामिल करना होगा और स्कूलों को स्वास्थ्य को बढ़ावा को देने वाले फ्रेमवर्क को अपनाना होगा। स्वास्थ्य को बढ़ावा देने वाले स्कूल के निम्नलिखित लक्षण होते हैं:

- ऐसा प्रतिष्ठान जो रहने, सीखने और कार्य करने के अनुकूल बनने के लिए सतत रूप से अपनी क्षमताओं को मजबूत कर रहा हो।
- यह स्वास्थ्य निर्मित करने और स्कूली छात्र, सदस्यों, परिवारों व समुदायों को सहायता प्रदान कर स्वयं की देखभाल के प्रति जागरूक करने के लिए मृत्यु, बीमारी और अक्षमता पर महत्वपूर्ण कारणों की प्रस्तुति देने पर ध्यान देता है।
- स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों में उपयुक्त निर्णय लेता है और स्वास्थ्य के अनुकूल परिस्थितियों का सृजन करता है। (डब्ल्यूएचओ - 2008)

स्कूल स्वास्थ्य कार्यक्रम के घटक

- सुरक्षित स्कूली वातावरण।
- क्रमबद्ध स्वास्थ्य शिक्षा पाठ्यक्रम।
- क्रमबद्ध भौतिक शिक्षा पाठ्यक्रम।
- पोषण सेवा कार्यक्रम।
- सामाजिक स्वास्थ्य सेवा कार्यक्रम।
- मार्गदर्शन, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक सेवा
- एकीकृत पारिवारिक और सामुदायिक संलिप्तता गतिविधियां
- सदस्य स्वास्थ्य संवर्द्धन नीति

स्कूलों में मानसिक स्वास्थ्य हस्तक्षेपों के प्रकार–

मानसिक स्वास्थ्य संवर्द्धन: जागरूकता और विश्वास निर्माण के लिए

सार्वभौमिक और चुनिंदा रोकथाम : जोखिम और खतरनाक कारकों में कमी लाना और सुरक्षात्मक कारकों का निर्माण

रोकथाम और शीघ्र हस्तक्षेप रणनीति जिनमें विकारों के लक्षण शीघ्र पता चल जाते हैं।

स्तर 1 से 4 तक को प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक रोकथाम प्रयासों से जोड़ा जा सकता है। प्राथमिक रोकथाम और स्वास्थ्य संवर्द्धन (स्तर 1 और 2) स्वस्थ और अस्वस्थ परिस्थितियों के कारणों को लक्षित करता है। यह स्वस्थ व्यवहार को बढ़ावा देने और विकार को बढ़ने से रोकने में अपना योगदान देता है। द्वितीय रोकथाम (स्तर 3) उच्च-जोखिम

चित्र 1: स्कूलों में मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रमों के लिए एक फ्रेमवर्क

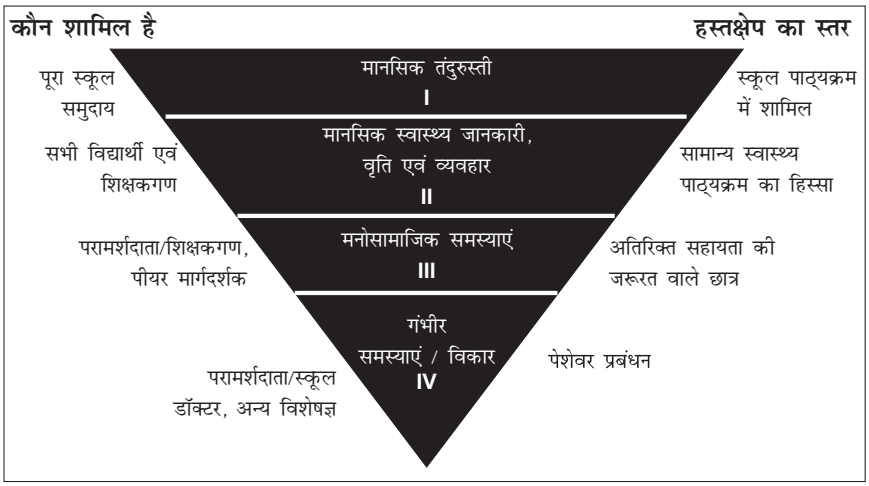

वाले लोगों में विकारों के प्रारंभ होने से रक्षा कर एक अत्यधिक चुने हुए जनसंख्या पर ध्यान देता है। तृतीय रोकथाम (स्तर 4) ऐसे लोगों पर केंद्रित है, जिनमें पहले ही विकार विकसित हो गए हैं। इसके तहत उनके निदान की भावना से, विकार से हानि को कम करने के लिए, और/या फिर से उत्पत्ति को रोकने का प्रयास किया जाता है।

क्रियान्वयन के लिए मौलिक दिशा निर्देश

स्कूल आधारित मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम पर्यावरण केंद्रित या बच्चा-केंद्रित हो सकता है।

पर्यावरण केंद्रित दृष्टिकोण: इस दृष्टिकोण का लक्ष्य स्कूल के शैक्षिक वातावरण को सुधारना है और बच्चे को स्वस्थ स्कूली कार्यक्रम का उपयोग करने के लिए अवसर प्रदान करना है। सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य वातावरण के तहत स्कूल में बिताए गए समय की अवधि, खेल के मैदान पर गतिविधियों की संरचना, स्कूल का भौतिक ढांचा और कक्षा की साज-सज्जा शामिल होता है। इस प्रकार के कार्यक्रम सदस्यों, छात्रों व अभिभावकों के बीच संचार, समझ और सम्मान में सुधार के लिए एक समन्वयपूर्ण, सहयोगपूर्ण प्रयास है। यह एक दिशा की भावना और कार्यक्रम का स्वामित्व प्रदान करता है।

बच्चा केंद्रित दृष्टिकोण: बच्चा केंद्रित दृष्टिकोण के तहत व्यक्तिगत मानसिक स्वास्थ्य परामर्श और विशेष समस्या-केंद्रित हस्तक्षेप के साथ-साथ कौशल, सामाजिक समर्थन और आत्म सम्मान बढ़ाने के लिए अधिक सामान्य कक्षा कार्यक्रम शामिल होते हैं।

युवाओं को सशक्त करने के लिए प्रत्येक राष्ट्र, समाज और समुदाय को बेहतर माहौल तैयार करने की दिशा में कार्य करना पड़ता है। जब किशोरावस्था ज्ञान, वृत्ति, मूल्यों और जीवन कौशलों को ग्रहण कर लेता है, तब ये कई प्रकार से लाभकारी सिद्ध होते हैं। जीवन कौशल किशोरों को अवगत निर्णय लेने, समस्याओं का निदान करने, गहनता और रचनात्मकता से सोचने, प्रभावी रूप से संचार करने, स्वस्थ संबंध कायम करने, अन्य लोगों के साथ सहानुभूति प्रकट करने और स्वस्थ और उत्पादक तरीके से अपने जीवन के प्रबंधन में लाभदायक होते हैं। इस प्रकार के ज्ञान और कौशल, व्यवहारों को निर्देशित करते हैं जो बीमारी और दुर्घटना को रोकते हैं, स्वस्थ संबंध को बढ़ावा देते हैं और युवाओं को निर्णायक भूमिका निभाने के योग्य बनाते हैं और अधिक प्रगतिशील विद्यालय बच्चे में सामाजिक और भावनात्मक क्षमताओं के विकास के लिए सक्रिय रूप से भागीदार बन रहे हैं। स्कूल बच्चों को उनके पढ़ाई, विकास और मनोसामाजिक बेहतरी को प्रभावित करने वाले खतरों से बचाने के लिए सुरक्षा तंत्र का काम कर सकते हैं। स्कूल मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम पढ़ाई, मानसिक रूप से बेहतरी और मानसिक विकारों के प्रबंधन के संचालन में प्रभावी होते हैं। ❑

संदर्भ

श्रीनाथ, एस., गिरिमाजी, एस.सी, गुरुजी, जी., शेषाद्री, एस., सुब्बाकृष्ण, डी.के., भोला, पी., कुमार एन. (2005). एपिडेमियोलॉजिकल स्टडी ऑफ चाइल्ड एंड एडोलसेंट सायकियाट्रिक डिसऑर्डर्स इन अरबन एंड रूरल एरियाज ऑफ बंगलोर, इंडियन जे मेड रेस 122, जुलाई 2005, पृष्ठ 67-79

शैक्षिक गुणवत्ता और शिक्षकीय कौशल

कौशलेंद्र प्रपन्न

शैक्षिक गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले कारणों में निश्चित तौर पर शिक्षक प्रशिक्षण प्रक्रिया को करीब से देखा समझा जाना चाहिए। शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों को देखने से पता चलता है कि इसमें भाषा से अधिक पद्धति पर ज्यादा जोर दिया गया है। मान लीजिए कि 6 घंटों में से 2 घंटे वास्तविक भाषा के लिए है और 4 घंटे भाषा पढ़ाने की पद्धति के लिए, जिसमें भाषा की भाषा तथा उपेक्षित और बेकार की विधियों की चर्चा ही अधिक लेती है। यह कहना उचित होगा कि छात्रों की कमजोरी को दूर करने में अक्षम शिक्षक ही हमें शिक्षा व्यवस्था से प्राप्त होंगे

समाज के समुचित विकास और संवर्द्धन में जिन महत्वपूर्ण तत्वों में शिक्षा सुरक्षा और स्वास्थ्य आदि को शामिल किया जाता है। इनमें से कोई भी कड़ी यदि कमजोर पड़ती है तो समझना चाहिए कि समाज व देश का विकास सही और समुचित दिशा में नहीं हो रहा है। यदि उपरोक्त किसी भी एक के विकास पर ध्यान दिया जा रहा है तो इसका सीधा अर्थ यही निकलता है कि उस समाज का सर्वांगीण विकास नहीं हो रहा है। सरकारें आती जाती हैं लेकिन प्रतिबद्धताएं, समस्याएं, चिंताएं यथावत् समाधान के इंतज़ार में अपनी जगह बरकरार रहती हैं। हमने आजादी के बाद भी यह दुहराना नहीं छोड़ा कि समाज का विकास करना है तो शिक्षा को दुरुस्त करना होगा। वह 1952 की समिति हो, 1964-66 की कोठारी आयोग की संस्तुतियां हों, 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति हो, 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति हो, 1990-92 की आचार्य राममूर्ति पुनरीक्षा समिति हो, 2002 की संविधान के 86 वें संशोधन के पश्चात् प्राथमिक शिक्षा को मौलिक अधिकारों की धारा 21 में ए को शामिल करना हो आदि। इन उपरोक्त समितियों, आयोगों और घोषणाओं आदि की रोशनी में हमें यह देखने की आवश्यकता है कि क्या हमने इन संस्तुतियों को प्राथमिक शिक्षा को बेहतर करने के लिए किस प्रतिबद्धता के साथ काम किया। इस बाबत जे पी नाईक *शिक्षा आयोग और उसके बाद* किताब में जिक्र करते हैं कि सार्जेंट रिपोर्ट ने प्रस्तावित किया था कि 6-11 वर्ष के सब बच्चों के लिए सर्वव्यापी प्रारंभिक शिक्षा 1984 तक उपलब्ध करा देनी होगी। नाईक आगे लिखते हैं कि 6-11 वर्ष के सभी बच्चों के लिए 1980-81 तक और 11-14 वर्ष के सभी बच्चों के लिए 1985-86 तक सर्वव्यापी शिक्षा प्रदान की जाए।[1]

हर बार सरकारों ने शिक्षा संबंधी कई सारी घोषणाएं कीं, किंतु प्राथमिक शिक्षा की दशा दिशा अभी भी हमारे तय लक्ष्य से दूर है। यहां यह भी बताते चलें कि 1968 में यह बात कही और स्वीकारी गई थी कि 1986 तक सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा प्रदान कर दी जाएगी। शैक्षिक गुणवत्ता को लेकर जिस प्रकार की चिंता शिक्षा जगत में देखी सुनी जाती है वह पर्याप्त नहीं हैं, क्योंकि शिक्षक वर्ग जिस शिद्दत से गंभीर व्यावसायिक प्रशिक्षण और अंत:सेवाकालीन प्रशिक्षण की मांग करते हैं उस ओर उतना ध्यान नहीं दिया जाता जितने की दरकार है। *शिक्षा आयोग और उसके बाद* किताब में जे पी नाईक इस ओर ध्यान दिलाते हैं कि शिक्षा के स्तर सबसे अधिक शिक्षकों की गुणवत्ता, प्रतिबद्धता और योग्यता पर निर्भर करेंगे, अत: इनकी उन्नति के लिए पूरा प्रयत्न करना चाहिए। अध्यापकों के चयन प्रक्रिया मे सुधार हो और उनके कार्य और सेवा की शर्तों को संतोषजनक बनाने का प्रयत्न किया जाए। शिक्षक के प्रशिक्षण कार्यक्रमों को सुधारहो, चुने हुए केंद्रों में शिक्षा विद्यालय स्थापित किए जाएं और प्राथमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण को विश्वविद्यालय प्रणाली में समेकित किया जाए।[2]

शिक्षा को सुचारूरूप से चलाने के लिए आर्थिक मदद की जरूरत पड़ती है। गौरतलब है कि 1964-66 में कोठारी आयोग ने तब सकल घरेलू उत्पाद के 6 फीसदी दिए जाने की सिफारिश की गई थी। यदि आज भी 2012-13, 213-14 और 2015-16 के बजट

लेखक पत्रकार, शिक्षा एवं भाषा विशेषज्ञ हैं। शिक्षा एवं भाषा संबंधी विषयों पर पत्र पत्रिकाओं में नियमित लेखन। ईमेल: k.prapanna@gmail.com

को देखें तो हम बामुश्किल 3 फीसदी ही शिक्षा की बेहतरी के लिए खर्च कर रहे हैं। वर्तमान सरकार ने शिक्षा के मद में दी जाने वाली आर्थिक सहायता राशि में ऐतिहासिक कटौती की गई। इसमें सर्व शिक्षा अभियान, राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान, मध्याह्न भोजन आदि में भारी कटौती की गई। इस पहल की आलोचना शैक्षिक क्षेत्र की हुई। तमाम शिक्षाविद्ों, अर्थशास्त्र के जानकार मानते हैं कि शिक्षा में गुणवता और बच्चों की भविष्य को बेहतर बनाना है तो सरकार को शिक्षा के मद में कैंची नहीं चलानी चाहिए थी। यहां याद दिला दें तो 2000 में जब डकार में सम्मेलन हुआ जहां 1990 में घोषित सभी के लिए शिक्षा की पुनरीक्षा हो रही थी तब भारत सरकार ने कहा था कि हमें आर्थिक मदद चाहिए ताकि हम तय समय सीमा के भीतर शिक्षा के आधिकार को पूरा कर पाएं। यही वह वर्ष है जब वैश्विक स्तर पर भारत को तमाम स्रोतों से आर्थिक मदद मिलने शुरू हो गए।

सर्व शिक्षा अभियान के तहत करोड़ों रुपए सरकार को हर वर्ष मिले। यदि इस लिहाज से देखें तो शिक्षा को उस अनुपात में सुधार नहीं हुए। आर्थिक मार झेल रही प्राथमिक शिक्षा को कैसे बेहतर बनाया जाए इसके लिए कई स्तरों पर योजनाएं बनाई गईं। कोठारी आयोग ने कहा था कि यदि प्राथमिक शिक्षा में गुणवता सुनिश्चित करना है तो कक्षा में 25/1 यानी बच्चे और शिक्षक के अनुपात होने चाहिए लेकिन यह अनुपात सरकारी स्कूलों में अभी भी दूर की कौड़ी है। इसके पीछे के कारणों को सरकारी और गैर सरकारी संस्थानों इस रूप में पहचान की कि हमारे स्कूलों में पर्याप्त शिक्षक नहीं हैं। शिक्षकों कमी कमी को पूरा करने का एक वैकल्पिक रास्ता यह 1990 के आस पास यह निकाला गया कि हम कम प्रशिक्षित पैरा टीचर, शिक्षा मित्र, अनुबंधित शिक्षकों से कक्षा में शिक्षण का काम लेंगे। यह एक ऐतिहासिक कदम था। प्राथमिक कक्षाओं में शिक्षा मित्रों के हवाले शिक्षा को छोड़ दिया गया। प्रो अनिल सद्गोपाल की नजर में यह उदारीकरण और प्राथमिक शिक्षा में विश्व बैंक का प्रवेश काल था। प्रो सदगोपाल आगे कहते हैं कि यह एक सरकारी तंत्र को भारत की हाथों से झीन का बाजार को सौंपने से कम नहीं था। हमने अपनी शैक्षिक नीति और दिशा तय करने के लिए विश्व बैंकों को आमंत्रित किया। आज भी प्राथमिक स्कूलों में देश भर में लाखों पद खाली हैं जिन पर शिक्षा मित्र और अनुबंधित शिक्षक खट रहे हैं। प्राथमिक शिक्षा में इस तदर्थवादी पहल ने प्राथमिक शिक्षा की गुणवता को खासा प्रभावित किया। शिक्षाविद् प्रेमपाल शर्मा *शिक्षा-कुशिक्षा* किताब में लिखते हैं कि आज प्राथमिक शिक्षा में सबसे भयावह स्थिति और बोझ समझ का तो है ही साथ ही भाषा के तौर पर अंग्रेजी की ज्यादा है। हमारे अधिकांश बच्चे अंग्रेजी के डर में जीवन जीते हैं। आज प्राथमिक शिक्षा यदि किसी बड़े संक्रमण काल से गुजर नहीं है तो वह भाषायी विस्थापन है। भाषायी समझ और विषयी शिक्षण में शिक्षक की अपनी तालीम काफी मायने रखता है। क्योंकि जिस तरह आज हमारे शिक्षक प्रशिक्षण पा रहे हैं वे खुद शंका के घेर में हैं।[3]

औपनिवेशिक व्यवस्था द्वारा लाए गए नौकरशाही में यह बात निहित थी कि पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकों से संबंधित सारे फैसले वरिष्ठ प्रशासकों द्वारा ही लिए जाते थे। पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकों के निर्माण में शिक्षक की भूमिका पर नजर डालें तो पाएंगे कि शिक्षकीय भूमिका न के बराबर है। दस्तावेज तो दावा करते हैं कि शिक्षकों से राय ली गई लेकिन वास्तव में वह नक्कारखाने में तूती की तरह होती है।

प्राथमिक शिक्षा में गुणवत्ता के सवाल को अपने समय के प्रसिद्ध हस्ताक्षरों ने दर्ज किया है। प्रो कृष्ण कुमार ने विभिन्न पत्रों में इस मसले को उठाया है। प्राथमिक स्कूल के शिक्षकों की प्रशिक्षणीय कौशलों और पाठ्यक्रमों पर भी विमर्श करते हैं। अपनी किताब *स्कूली हिंदी* में चर्चा करते हैं कि शिक्षकों की हैसियत और सामाजिक पहचान भी प्रकारांतर से उसके व्यवसाय को प्रभावित करता है। वहीं शिक्षा के नए क्षितिज किताब में रमेश दवे लिखते हैं कि प्राथमिक शिक्षा में शिक्षकों की कमी का असर कहीं न कहीं गुणवत्ता पर दिखा जा सकता है। इतना ही नहीं बल्कि शिक्षकों को मिलने वाली पूर्व सेवाकालीन प्रशिक्षण उस स्तर के नहीं हैं जिसकी अपेक्षा शिक्षा शास्त्र में की जाती है। यही वजह है कि शिक्षा में जो भी गिरावट बताई जा रही है उसका जिम्मेदार सिर्फ और सिर्फ शिक्षक ही माना जाता है। जबकि इस गिरावट में शिक्षक एक मोहरे के तौर पर इस्तमाल होता है। यदि हमारी योजना, पाठ्यपुस्तकों, पाठ्यक्रमों और रणनीतियों में शिक्षक की कोई अहम भूमिका नहीं होती तो वह कैसे अपनी हैसियत और हस्तक्षेप को सुनिश्चित कर सकता है। प्रो कृष्ण कुमार *गुलामी की शिक्षा और राष्ट्रवाद* में विमर्श करते हैं कि शिक्षक शिक्षा विभाग में सबसे छोटी इकाई होता है जिसकी कोई नहीं सुनता। वह सिर्फ अपनी कक्षा में निर्माता और सर्वेसर्वा होता है लेकिन समाज में उसकी हैसियत कमतर ही आंकी जाती है।

शिक्षक की गुणवता और कौशल काफी हद तक कक्षायी शिक्षण को प्रभावित करता है। यदि हम इस दृष्टि से देखें तो प्रो कृष्ण कुमार अपनी किताब *गुलामी शिक्षा और राष्ट्रवाद* में चर्चा करते हैं कि जिन कारकों ने शिक्षकों को एक कमजोर पेशागत पहचान और हैसियत बख्शी है, उनमें एक पाठ्यचर्या के मामले में उसका कोई हाथ न होना भी था। औपनिवेशिक व्यवस्था द्वारा लाए गए नौकरशाही में यह बात निहित थी कि पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकों से संबंधित सारे फैसले वरिष्ठ प्रशासकों द्वारा ही लिए जाते थे। पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकों के निर्माण में शिक्षक की भूमिका पर नजर डालें तो पाएंगे कि शिक्षकीय भूमिका न के बराबर है। कहने को हर दस्तावेज यह तो दावा करता है कि शिक्षकों से राय ली गई लेकिन सूक्ष्मता से देखें तो पाएंगे कि वह नक्कारखाने में तूती की तरह होती है।

शिक्षक की आवाज शैक्षिक विमर्शों में नजरअंदाज ही किया गया है। वरना शिक्षकीय समूह से उठने वाली शिकायतों पर ध्यान दिया जाता। शिक्षकों का बड़ा समूह आज भी यह आरोप लगाता मिल जाएगा कि किताबें बनाते वक्त हमसे कोई नहीं पूछता। अखिल भारतीय प्राथमिक शिक्षक संघ के अध्यक्ष रामपाल सिंह का कहना है कि शिक्षा में यदि सबसे ज्यादा उपेक्षा किसी होती है तो वह प्राथमिक शिक्षक है। कोई भी प्राथमिक शिक्षा की नीति बनाने का मामला हो या किताबों का निर्माण हमें तो कमतर समझा जाता है। जितने भी शिक्षणेतर काम होते हैं वह प्राथमिक शिक्षकों के कंधो पर डाला जाता है। ऐसे में एक शिक्षक कक्षा में कैसे पढ़ाए। शिक्षकों का एक वृहद समूह है जो पढ़ाना तो चाहता है लेकिन उसे

(जारी ... पृष्ठ 71 पर)

वंचितों के लिए शिक्षा: चिंताएं, चुनौतियां और भावी योजनाएं

एस़ श्रीनिवास राव

परिवर्तन की किसी की प्रक्रिया को मिश्रित प्रयासों या जाति/जनजाति, जेंडर और अंतर-वर्गीयता पर सावधानी से गौर करना होगा। दलित और जनजातीय लड़कों व लड़कियों के लिए, स्कूल ऐसा होना चाहिए, जो उन्हें उनके ऐतिहासिक पूर्ववृत्तों और किसी समुदाय विशेष जन्म लेने की वजह से मिले अभावों से मुक्ति दिलाए। स्कूल और समाज, दोनों को इन समुदायों के बच्चों के प्रति ज्यादा समावेशी, न्यायोचित और निष्पक्ष रवैया अपनाने की आवश्यकता है, ताकि भारतीय समाज सही मायनों में ऐसा लोकतांत्रिक समाज होने का दावा कर सके, जहां सभी नागरिकों से बराबरी का व्यवहार होता है

शिक्षा वह साधन है, जिसके माध्यम से हमारे जैसे आधुनिक समाज में व्यक्ति और वर्ग सामाजिक परिवर्तन लाते हैं। यह सामाजिक व्यवस्था के पुनर्निर्माण का भी माध्यम है, जो सामान्यत: पदानुक्रम रूप से व्यवस्थित है और जहां सर्वत्र असमानताएं व्याप्त हैं। भारतीय समाज में, जो अनिवार्य और ऐतिहासिक रूप से जातीय आधार पर संरचित है, जहां सामाजिक असमानताएं प्राथमिक तौर पर जातीय आधार पर बनती और नए सिरे से पनपती रहती हैं। आर्थिक साधनों, सामाजिक हैसियत, राजनीतिक भागीदारी और शैक्षिक अवसरों के संदर्भ में कुछ जातियां विशेषाधिकार प्राप्त हैं और कुछ नहीं हैं। अनुसूचित जातियों जैसी जातियां, जो विशेषाधिकारों से वंचित हैं, वे परंपरागत पेशेवर वर्गीकरण के सबसे निचले पायदान पर हैं और उन्हें विशेषकर ग्रामीण समाज में आमतौर पर समाज की स्थानिक एवं सामाजिक सीमाओं भी से दूर रखा जाता है। इसी तरह, मोटे तौर पर भारतीय समाज में हाशिए पर रहा एक अन्य वर्ग अनुसूचित जातियां हैं, जो भौगोलिक रूप से अलग-थलग, तथाकथित 'व्यवस्थित' 'मुख्यधारा' 'सभ्य' समाज से दूर जंगलों, पहाड़ों और दुर्गम इलाकों में अपनी अनोखी संस्कृतियों, धार्मिक पद्धतियों, भाषाओं और जीवन शैलियों के साथ रहती हैं। जहां एक ओर इन वर्गों का जीवन भारतीय समाज के अन्य सामाजिक वर्गों से भिन्न है, वहीं उनके जीवन में आस-पास की प्रकृति के साथ एक अनोखी समकालिकता भी है। हालांकि भौगोलिक अलगाव के कारण विकसित समाज के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं शैक्षिक क्षेत्रों में इन वर्गों की भागीदारी भी असमान रही है।

इसके परिणामस्वरूप, ये जातियां और जनजातियां कई दशकों और सदियों तक सामाजिक-आर्थिक विकास के हाशिए पर रही हैं और पराधीन व वंचित जीवन बिताने को बाध्य रहीं हैं। हालांकि स्वाधीनता के पश्चात, भारत को लोकतांत्रिक समाज बनाने, सभी नागरिकों को उनकी सामाजिक पहचान और उनके वर्ग की परवाह किए बगैर, समान अधिकार प्रदान करने से, जाहिर तौर पर शिक्षा सहित सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में उनकी भागीदारी की स्थिति में सचमुच आमूलचूल बदलाव आया है। हालांकि ऐतिहासिक रूप से विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों की तुलना में समाज और शैक्षिक क्षेत्र में इन वर्गों की समावेशिता का स्तर भिन्न रहा है।

मुद्दे

जहां एक ओर, इन वर्गों ने शिक्षा के क्षेत्र में कुछ हद तक प्रगति हासिल की है, वहीं वे कुछ अन्य संदर्भों में पीछे छूट गए हैं, जिसकी वजह से वे शैक्षणिक, विकासात्मक और सामाजिक प्रक्रिया में परिवर्तन की प्रक्रियाओं में निरंतर हाशिए पर बने हुए हैं, इस तरह, इन

लेखक जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के जाकिर हुसैन सेंटर फॉर एजुकेशनल स्ट्डीज में शिक्षा समाजशास्त्र विषय के एसोसिएट प्रोफेसर हैं। वह शिक्षा में विविधता, साम्यता, सुलभता तथा उत्कृष्टता आदि विषयों पर शोध व शिक्षण में रुचि रखते हैं। देश-विदेश के कई विश्वविद्यालयों में अतिथि अध्यापक के तौर पर भी जाते हैं। ईमेल: srinivas.zhces@gmail.com

जातियों और जनजातियों के सदस्यों को अब तक असमान रहे भारतीय समाज में बराबरी पर लाने की दिशा में काफी काम करना बाकी है। शिक्षा के सभी स्तरों में से एक क्षेत्र में, जहां इन वर्गों ने जबरदस्त प्रगति दर्शाई है वह है दाखिला लेने के संदर्भ में।

प्राथमिक शिक्षा में, सुनियोजित और औपचारिक शिक्षा की प्रथम कक्षा के स्तर पर, नामांकन विशेषाधिकार प्राप्त लोगों के समान ही है लेकिन पांचवीं कक्षा तक आते-आते, इनकी संख्या सिकुड़ती प्रतीत होती है। उदाहरण के तौर पर, वर्ष 2014 में राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (एनयूईपीए) द्वारा प्रकाशित भारत सरकार की रिपोर्ट 'सबके लिए शिक्षा: गुणवत्ता और समानता की ओर' दर्शाती है कि वर्ष 2000-01 और 2013-14 के दौरान प्राथमिक शिक्षा में दाखिला लेने वाले अनुसूचित जाति के बच्चों की संख्या दो करोड़ 13 लाख से बढ़कर दो करोड़ 30 लाख हो गई, इस प्रकार महज एक दशक में 24.1 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गई। इसी तरह, इसी दशक में प्राथमिक शिक्षा में दाखिला लेने वाले अनुसूचित जनजातियों के बच्चों की संख्या 33.6 प्रतिशत वृद्धि दर्ज करते हुए एक करोड़ 10 लाख से बढ़कर एक करोड़ 47 लाख हो गई। उच्च प्राथमिक स्तर पर भी, वर्ष 2000-01 और 2013-14 के दौरान अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों दोनों ने महत्वपूर्ण प्रगति (अनुसूचित जाति के मामले में 67 लाख से एक करोड़ 29 लाख और अनुसूचित जनजातियों के मामले में 31 लाख से 65 लाख) दर्ज की।

समूची प्राथमिक शिक्षा में सकल नामांकन अनुपात के संदर्भ में, अनुसूचित जातियों के मामले में वर्ष 2000-01 में 86.8 प्रतिशत से लेकर वर्ष 2013-14 के दौरान 107.7 प्रतिशत और अनुसूचित जनजातियों के मामले में वर्ष 2000-01 में 88 प्रतिशत से लेकर वर्ष 2013-14 के दौरान 105.52 प्रतिशत की अत्याधिक वृद्धि देखी गई। ध्यान देने योग्य बात यह है कि जीईआर 100 प्रतिशत से ज्यादा होने का कारण कम आयु अथवा अधिक आयु वाले बच्चों का उस विशेष मानक खंड में दाखिला लेना है।

दिलचस्प बात यह है कि रिपोर्ट में अनुसूचित जातियों में लड़कियों के जीईआर में लड़कों की तुलना में वृद्धि दर्शायी गई है, जो अनुसूचित जाति की लड़कियों के लिए अनुसूचित जाति के लड़कों से काफी अधिक है (अनुसूचित जाति की लड़कियों के लिए 48.6 और अनुसूचित जाति की लड़कियों के लिए 18.8 प्रतिशत)। इसका आशय है कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के माता-पिता और समुदाय लड़के और लड़कियों दोनों का दाखिला प्राथमिक स्कूल (प्राथमिक और उच्चतर प्राथमिक दोनों) कक्षाओं में करवा रहे हैं और उनमें बच्चों को साक्षर एवं शिक्षित बनाने की बेताबी प्रदर्शित हो रही है। हालांकि अनुसूचित जनजातियों के मामले में, वर्ष 2000-01 से वर्ष 2013-14 के दौरान लड़कों के लिए 2.5 प्रतिशत की कमी देखी गई है, जबकि लड़कियों के लिए 26.4 प्रतिशत की वृद्धि देखी गई है। इस तरह, दाखिलों, सकल नामांकन अनुपात और प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर विशेषकर दाखिला लेने वाली लड़कियों की संख्या में वृद्धि सचमुच स्वागत योग्य घटना है और हम सभी के लिए खुशी की बात है।

प्राथमिक अवस्था पर, स्कूली पढ़ाई अधूरी छोड़ने वाले बच्चों की संख्या पर गौर करें, तो दाखिलों में वृद्धि का उत्साह धूमिल पड़ने लगता है। बच्चों की सभी श्रेणियों में स्कूली पढ़ाई अधूरी छोड़ने वाले बच्चों की दर वर्ष 2008-09 में 42.3 प्रतिशत थी, अनुसूचित जाति के बच्चों के लिए यह दर 47.9 प्रतिशत और अनुसूचित जनजाति के बच्चों के लिए 58.3 प्रतिशत थी।

हालांकि प्राथमिक अवस्था पर, स्कूली पढ़ाई अधूरी छोड़ने वाले बच्चों की संख्या पर गौर करें, तो दाखिलों में वृद्धि का उत्साह धूमिल पड़ने लगता है। बच्चों की सभी श्रेणियों में स्कूली पढ़ाई अधूरी छोड़ने वाले बच्चों की दर वर्ष 2008-09 में 42.3 प्रतिशत थी, अनुसूचित जाति के बच्चों के लिए यह दर 47.9 प्रतिशत और अनुसूचित जनजाति के बच्चों के लिए 58.3 प्रतिशत थी। इसका आशय है कि प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर दाखिला लेने वाले लगभग 50 प्रतिशत अथवा उससे अधिक बच्चे शिक्षा की इस खास अवस्था पूरी करने से पहले ही पढ़ाई छोड़ चुके होते हैं।

कुछ विश्लेषक यह दावा कर सकते हैं कि पढ़ाई अधूरी छोड़ने वालों की तादाद इतनी ज्यादा होने के बावजूद, बीते वर्षों में इस रुझान में सचमुच कमी आई है। हालांकि इस दलील और स्पष्टीकरण से, प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण का समग्र लक्ष्य प्राप्त करने में कोई मदद नहीं मिलेगी, इस प्रकार यह देश के लिए, अपने समस्त बच्चों के लिए बुनियादी शिक्षा के प्रावधान का दावा करने की दिशा में एक प्रमुख रुकावट बना रहेगा। बच्चों के स्कूली पढ़ाई अधूरी छोड़ने और पढ़ाई जारी रखने का मामला तब और ज्यादा ध्यान आकृष्ट करता है, जब वे शिक्षा के उच्चतर स्तरों पर पहुंच चुके होते हैं। इसका आशय यह है कि बच्चे और उनके माता-पिता स्कूल में दाखिला लेने तक तो उत्साहित रहते हैं लेकिन शिक्षा के उपयुक्त स्तर पर पहुंचने तक स्कूल में पढ़ाई जारी रखने को लेकर वे ज्यादा उत्साहित नहीं होते।

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातीय घरों से आने वाले बच्चों के लिए, इसका आशय है वे ज्यादातर ऐसे परिवारों से होते हैं, जो निरक्षर अथवा बहुत कम पढ़े लिखे होते हैं और इस तरह वे शिक्षा और देश में हो रहे विकास से लाभान्वित होने के संदर्भ में हाशिए पर अथवा सुविधाहीन स्थिति में बने रहेंगे। दरअसल, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के लोगों की तकलीफें और सुविधाहीनता संभवत: और बढ़ जाए, क्योंकि अन्य सामाजिक वर्ग साक्षरता और शिक्षा के क्षेत्र में ऐतिहासिक रूप से लाभ की स्थिति में होने के कारण शिक्षित रोजगार बाज़ार में खुल रहे नए क्षेत्रों से लाभ उठाने के लिए पहले से ही काफी तेज रफ्तार से आगे बढ़ रहे हैं। इस प्रकार, एक तरह से, सुविधाहीनों के शिक्षा प्राप्त करने की स्थिति में मामूली अथवा नगण्य सुधार होने के परिणामस्वरूप समाज में असमानताएं गहरा गई हैं।

चुनौतियां

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के बच्चों के लिए, ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड (ओबीबी), राष्ट्रीय साक्षरता अभियान (एनएलसी), जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीईपी) और सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) जैसे कदमों की बदौलत स्कूलों

तक पहुंच वास्तविक और सामाजिक रूप से काफी हद तक संभव हो सकी है लेकिन स्कूल उन्हें अपनी पढ़ाई जारी रखने और कम से कम शिक्षा के बुनियादी स्तर तक की पढ़ाई पूरी करने के लिए आकर्षित नहीं कर पाते। निश्चित रूप से अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के बच्चों की स्कूलों तक वास्तविक पहुंच पहले से कहीं ज्यादा अब कायम हुई है लेकिन स्कूल के सभी बच्चों, खास तौर पर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के बच्चों के लिए समान शैक्षिक अनुभव की जगह होने की स्थिति में ज्यादा बदलाव नहीं आया है। गरीबी, सामाजिक वर्ग, जाति और सामाजिक पहचान के ढांचे ऐसे रूप से फिर से निर्मित हुए हैं कि उन्होंने विभिन्न सामाजिक पृष्ठभूमि के बच्चों, शिक्षकों और बच्चों तथा शिक्षकों और बच्चों के माता-पिता के बीच असमानताओं की खाई को और चौड़ा कर दिया है। इसके साथ साथ शिक्षक की उदासीनता और भेदभावपूर्ण रवैया इन समुदायों के बच्चों को स्कूल से दूर रखता है और स्कूल को सीखने के लिए प्रतिकूल जगह बनाता है।

बच्चों की स्कूली शिक्षा जारी रखने और उन्हें स्कूली पढ़ाई अधूरी छोड़ने से रोकने के लिए, सरकारों, स्कूलों और समुदायों के लिए यह बहुत आवश्यक है कि वे समस्त बच्चों, विशेषकर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातीय पृष्ठभूमि से आने वाले बच्चों को स्कूल में भेदभावरहित वातावरण उपलब्ध कराएं।

अध्ययनों से पूर्णत: स्थापित हुआ है कि शिक्षक इन समुदायों के बच्चों के प्रति भेदभावपूर्ण और उन्हें बहिष्कृत रखने का रवैया अपनाते हैं और वे समझते हैं कि इन समुदायों के बच्चे सीखने और शिक्षा प्राप्त करने की दृष्टि से 'बेवकूफ', 'अयोग्य' और 'अनुपयुक्त' हैं और वे परंपरागत तुच्छ कार्यों को अंजाम देने अथवा जंगलों और पहाड़ों के आसपास रहने के लिए ही उपयुक्त हैं। कुछ शोधकर्ताओं ने तो यहां तक प्रदर्शित किया है कि समझा जाता है कि दलित और जनजातीय बच्चे 'आलसी' 'गंदे' और 'असभ्य' हैं और इसलिए वे सीखने के लायक नहीं हैं। अध्ययनों ने यह भी प्रमाणित किया है कि अस्पृश्यता और सामाजिक एवं भौगोलिक अलगाव के विचार सामान्य तौर पर समाज में ही नहीं, बल्कि स्कूलों में भी फिर से पनप चुके हैं। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति समुदायों के बच्चों के प्रति सामाजिक भेदभाव और उन्हें बहिष्कृत रखने के रवैये के अनुभव, इन वर्गों और अन्य गरीब और सुविधाहीन वर्गों के बच्चों की पढ़ाई जारी रखने के उद्देश्य से बनाई गई मध्यान्ह भोजन योजना के कार्यान्वयन के समय बखूबी दर्ज किया जा चुका है।

दिलचस्प बात यह है, कि भेदभावपूर्ण व्यवहार की रिपोर्ट्स सिर्फ ग्रामीण क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि ऐसे मामले शहरों में भी सामने आते रहे हैं। शोधों से यह स्पष्ट हो चुका है कि सामाजिक अलगाव सामान्य तौर पर शहरी समाज में और खासतौर पर शहरी स्कूलों में भी मौजूद है। इस तरह, सामाजिक भेदभाव गुमनाम और अवैयक्तिक सामाजिक क्षेत्रों में मोटे तौर पर फिर से उभर चुका है, हालांकि इसकी प्रकृति और स्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में होने वाले भेदभाव से भिन्न है।

भावी योजना

बच्चों की स्कूली शिक्षा जारी रखने और उन्हें स्कूली पढ़ाई अधूरी छोड़ने से रोकने के लिए, सरकारों, स्कूलों और समुदायों के लिए यह बहुत आवश्यक है कि वे समस्त बच्चों, विशेषकर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातीय पृष्ठभूमि से आने वाले बच्चों को स्कूल में भेदभावरहित वातावरण उपलब्ध कराएं। यदि स्कूल इन बच्चों के अरुचिकर और प्रतिकूल स्थान बना रहेगा, तो ऐसे में स्कूली शिक्षा में इन बच्चों की समग्र शैक्षिक भागीदारी की दिशा में बहुत करना बाकी रह जाएगा, जिससे असमानताओं की खाई और भी चौड़ी हो जाएगी, जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है।

इसलिए अब जरूरत इस बात की है कि महज शिक्षा के प्राथमिक और बाद के स्तरों पर दाखिला लेने तक सीमित न रहकर उनसे आगे बढ़ा जाए। स्कूल जैसे ही उल्लास और व्यापक रूप से सीखने की जगह बनेगा, वह इन वर्गों के बच्चों को शिक्षा के उच्च स्तरों तक पहुंचने में सहायक होगा, जिससे उनका शिक्षित श्रम बाज़ार में समावेश सुनिश्चित हो सकेगा। हम पहले ही देख चुके हैं कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लोग पहले से कहीं अधिक तादाद में सीमाएं तोड़कर उच्च शैक्षिक संस्थानों में प्रवेश कर रहे हैं और काफी अधिक मांग वाले विविध विषयों में कदम रख रहे हैं, जिससे आखिरकार भारतीय समाज की पेशेवर और आर्थिक संरचनाओं में बदलाव आएगा, जिसकी बदौलत देश के समग्र विकास में योगदान दे सकने वाला कुशल और शिक्षित व्यवसायियों का समूह तैयार होगा।

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की लड़कियों को साथ जोड़ने और उनकी स्कूल तक पहुंच संभव बनाने के लिए विशेष प्रयास करना एक महत्वपूर्ण चुनौती है, क्योंकि अपने वर्ग के लड़कों की तुलना में ये लड़कियां जाति/जनजाति, जेंडर और सामाजिक वर्ग के संदर्भ में दोगुना या तीन गुना ज्यादा सुविधाहीन हैं।

अब जरूरत इस बात की है कि महज शिक्षा के प्राथमिक और बाद के स्तरों पर दाखिला लेने तक सीमित न रहकर उनसे आगे बढ़ा जाए। स्कूल जैसे ही उल्लास और व्यापक रूप से सीखने की जगह बनेगा, वह इन वर्गों के बच्चों को शिक्षा के उच्च स्तरों तक पहुंचने में सहायक होगा, जिससे उनका शिक्षित श्रम बाज़ार में समावेश सुनिश्चित हो सकेगा।

इन समुदायों की लड़कियां जाति/जनजाति और सामाजिक वर्ग के सदंर्भ में सुविधाहीन हैं, जिससे उनका शिक्षा से बहिष्कृत रहना और ज्यादा बढ़ जाता है। इसलिए परिवर्तन की किसी की प्रक्रिया को मिश्रित प्रयासों या जाति/जनजाति, जेंडर और सामाजिक वर्ग की अंतर-वर्गीयता पर सावधानी से गौर करना होगा। दलित और जनजातीय दोनों के लड़कों व लड़कियों के लिए, स्कूल ऐसा होना चाहिए, जो उन्हें उनके ऐतिहासिक पूर्ववृत्तों और किसी समुदाय विशेष जन्म लेने की वजह से मिले अभावों से मुक्ति दिलाए। स्कूल और समाज, दोनों को इन समुदायों के बच्चों के प्रति ज्यादा समावेशी, न्यायोचित और निष्पक्ष रवैया अपनाने की आवश्यकता है, ताकि भारतीय समाज सही मायनों में ऐसा लोकतांत्रिक समाज होने का दावा कर सके, जहां सभी नागरिकों से बराबरी का व्यवहार होता है। ❑

शिक्षा का स्वरूपः धारणाएं और यथार्थ

रवि शंकर

शिक्षा कोई समय के साथ बदलने वाली चीज नहीं है। प्रशिक्षण अवश्य समय के साथ बदलता है। नई तकनीकों के साथ प्रशिक्षण भी बदलता रहता है। परंतु शिक्षा हमेशा स्थिर रहती है। यदि सच बोलना चाहिए, तो यह हमेशा के लिए लागू होता है। ईमानदारी हरेक समय में अपेक्षित होती है। समाज और देश के हित में कार्य करना हरेक कालखंड में आवश्यक होता है। इसलिए शिक्षा के जो मापदंड, स्वरूप और नीतियां भारत के मनीषियों ने निर्धारित की थीं, वे आज से पांच हजार वर्ष पहले भी प्रासंगिक थीं और आज भी प्रासंगिक हैं। आवश्यकता है उन्हें पढ़-समझ कर उनका समुचित उपयोग करने की

देश में नई शिक्षा नीति बनाने की तैयारियां चल रही हैं। विशेषज्ञों से लेकर आम जनता तक से राय मांगी जा रही है। मन में स्वाभाविक ही प्रश्न खड़ा होता है कि ऐसा क्यों करना पड़ रहा है? क्या अभी तक की हमारी जो शिक्षा नीति थी, वह गलत थी या क्या वह नीति आज के समय के अनुकूल नहीं रही? क्या समय बदलने से शिक्षा नीति का बदलना भी आवश्यक हो जाता है? क्या शिक्षा समय सापेक्ष होती है? प्रश्न यह भी है कि क्या शिक्षा का स्वरूप समय के साथ परिवर्तनीय है? इन प्रश्नों का उत्तर ढूंढने जाएं तो एक और प्रश्न मिलता है कि आखिर हम शिक्षा कहें किसे?

सबसे पहले भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय से यदि शिक्षा की परिभाषा जानने की कोशिश की जाए तो उसकी वेबसाइट पर प्रारंभिक शिक्षा के बारे में पहली ही पंक्ति में कहा गया है कि, हमारे गणतंत्र के आरंभ से ही हमने हरेक को समान अवसर प्रदान करने के द्वारा लोकतंत्र के सामाजिक तंतुओं को मजबूत बनाने में वैश्विक प्रारंभिक शिक्षा का महत्व स्वीकार किया था।[1] इस पंक्ति में दो-तीन बातें महत्वपूर्ण हैं। पहली बात है कि शिक्षा के लिए एक विशेषण प्रयोग किया गया है वैश्विक। यानि कि जो शिक्षा भारत में दी जा रही है, वह वैश्विक शिक्षा है। वैश्विक शब्द का प्रयोग एक अर्थ में यह सुनिश्चित करता है कि वह चीज भारत की न हो, विदेश से आयातित हो। जो जो शिक्षा हम अपने देश में देना चाहते हैं, उसका मूल स्वर ही भारतीय नहीं है। वह आयातित है। दूसरी बात कही गई है, लोकतंत्र को मजबूत बनाने में शिक्षा की सामाजिक भूमिका के बारे में। यानि देश के बच्चों को दी जाने वाली शिक्षा केवल लोकतंत्र को मजबूत बनाने के लिए है। अंत में तीसरी बात कही गई है कर किसी को समान अवसर दिए जाने की।

इसी वेबसाइट पर दो-तीन और भी स्थानों पर[2] इस बात को दोहराया गया है कि देश में दी जा रही शिक्षा का मूल उद्देश्य संविधान में वर्णित समाजवाद, सेकुलरवाद और लोकतंत्र के लक्ष्य को पाने के लिए लोगों की राष्ट्रीय एकात्मता, वैज्ञानिक स्वभाव और स्वाधीन मस्तिष्क तैयार करना है। साथ ही सामाजिक आर्थिक संतुलन स्थापित करना भी इस शिक्षा का एक उद्देश्य है। इस प्रकार हम पाते हैं कि आज देश में दी जाने वाली शिक्षा का उद्देश्य पूरी तरह राजनीतिक है। इस अर्थ में यदि हम कहें कि आज हमें अपनी शिक्षा नीति की समीक्षा करने की आवश्यकता है, तो यह बिल्कुल ही सुसंगत बात है। दुर्भाग्यवश यह बात सच नहीं है।

आज शिक्षा नीति की समीक्षा और नई शिक्षा नीति बनाने की जो भी बात चल रही है, उसका उद्देश्य और ढांचा भी कमोबेश वही है, जो इस पुरानी शिक्षा नीति का था। इस नई शिक्षा नीति के लिए भी हमारे नीति-निर्माताओं की सोच वही है। इसी वेबसाइट पर नई शिक्षा नीति के बारे में कहा है, ''राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में बनाई गई थी और 1992 में संशोधित की गई थी। तब से अब तक अनेक बदलाव हुए हैं, जिसकी वजह से नीति में संशोधन की आवश्यकता है। भारत सरकार, लोगों की गुणवत्तापरक शिक्षा, नवाचार और अनुसंधान संबंधी आवश्यकताओं के परिवर्तनशील

लेखक सेंटर फॉर सिविलाइजेशनल स्टडीज में शोध निदेशक तथा गांधी दर्शन के शोधार्थी हैं। उन्होंने पंचवटी फाउंडेशन के लिए गौसंपदा के आर्थिक वैज्ञानिक-पर्यावरणीय आयामों पर पांच खंडों में शोध ग्रंथ के संकलन व संपादन के अलावा पारंपरिक कृषि पर शोध कार्य भी किया है। माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता विश्वविद्यालय की शोध परियोजना के अंतर्गत *राष्ट्रवादी पत्रकारिता* विषय पर पुस्तक प्रकाशित। ईमेलः ravinoy@gmail.com

पहलुओं से निपटने के लिए नई शिक्षा नीति लाना चाहती है, जिसका उद्देश्य भारत को, इसके छात्रों को आवश्यक कौशल तथा ज्ञान प्रदान करके ज्ञान के क्षेत्र में महाशक्ति बनाना तथा विज्ञान, प्रौद्योगिकी, शिक्षा एवं उद्योग जगत में श्रमशक्ति की कमी को दूर करना होगा।[3]'' इसमें केवल एक नई बात जोड़ी गई है कौशल के विकास की। परंतु कौशल विकास तो शिक्षा का अंग है ही नहीं। यह तो प्रशिक्षण का अंग है।

समस्या का वास्तविक स्वरूप शिक्षा को नेपथ्य से संचालित करने वाली शक्तियों में छिपा है। जैसे कि हमने देखा कि अभी तक शिक्षा को राजनीति से संचालित किया जा रहा था और इसलिए शिक्षा के वास्तविक स्वरूप की बजाय केवल राजनीतिक आयामों की चर्चा की गई थी, ठीक उसी प्रकार पिछले दो दशकों से शिक्षा पर बाज़ारवाद हावी है और इसलिए पूरी शिक्षा का नियंत्रण बाज़ार कर रहा है। यही कारण है कि आज शिक्षा में कौशल विकास और तकनीकी प्रशिक्षण प्रमुखता पा रहा है जबकि ज्ञान की उपेक्षा की जा रही है, नैतिक शिक्षा तो न पहले शामिल थी और न ही अब शामिल है।

तो क्या हम मान लें कि हमें कौशल विकास की कोई आवश्यकता नहीं है और केवल ज्ञान अर्जन करने मात्र से हम अपने देश को विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में ले जाने में सफल हो जाएंगे? यदि ऐसा हो सकता, तो अब तक हम ऐसा क्यों नहीं कर पाए? आखिर अभी तक की शिक्षा में हम ज्ञान को ही तो वरीयता देते रहे हैं। फिर हम दुनिया में पीछे क्यों हैं?

किसी भी देश के विकास विशेषकर आर्थिक विकास में कौशल विकास की अपनी भूमिका है। ध्यान देने की बात यह है कि जब भी हम देश के विकास की बात करते हैं, हम केवल आर्थिक विकास की चर्चा करते हैं। हमारी चर्चा में कहीं भी विकास के अन्य पहलू नहीं होते। यदि हम केवल आर्थिक विकास की चिंता करें तो यह बात बिल्कुल सही है कि कौशल विकास इस समय की प्राथमिक आवश्यकता है। यदि हम देश के कार्यबल की शैक्षणिक योग्यता पर नजर डालें तो स्थिति काफी दयनीय नजर आती है। 15 से 59 वर्ष के कार्यबल की शैक्षणिक योग्यता काफी कम है। (देखें तालिका 1)

शिक्षा नीति पर विचार करने की आवश्यकता तो है परंतु वह इसलिए नहीं कि आज हमें कौशल विकास की आवश्यकता है और देश के आर्थिक विकास की नई मांगें पैदा हो गईं हैं। आर्थिक क्षेत्र यानि कि बाज़ार के लिए कच्चा माल यानि कि मानव संसाधन उपलब्ध कराना शिक्षा का उद्देश्य कभी भी नहीं हो सकता। उपलब्ध लोगों को बाज़ार अपनी आवश्यकतानुसार प्रशिक्षित कर ले, यही सही तरीका है।

इसलिए कौशल विकास पर ध्यान देना नितांत आवश्यक है। यदि हमें देश का आर्थिक विकास करना है तो कौशल विकास पर ध्यान देना ही होगा। परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि इसके लिए अपनी शिक्षा नीति को ही मूल लक्ष्य से भटका दिया जाए। वास्तव में शिक्षा और प्रशिक्षण में अंतर करना हमें सीखना होगा। तभी हम कौशल विकास, ज्ञानोपार्जन और नैतिक विकास तीनों में सामंजस्य बैठा पाएंगे। कौशल विकास प्रशिक्षण का हिस्सा है। इसे हम शिक्षा के साथ-साथ भी दे सकते हैं और अलग से भी दे सकते हैं। उदाहरण के लिए कंप्यूटर की शिक्षा निजी शिक्षा संस्थान दूसरी, तीसरी कक्षा से ही देने लगते हैं। परंतु बारहवीं उत्तीर्ण विद्यार्थी भी यदि छह माह का एक कंप्यूटर पाठ्यक्रम की पढ़ाई कर ले तो वह कंप्यूटर का उससे कहीं अधिक जानकार हो जाता है, जितना कि तीसरी कक्षा से इसकी पढ़ाई करने वाला व्यक्ति। इसी प्रकार हम अन्य प्रशिक्षणों के बारे में भी समझ सकते हैं। कौशल विकास और प्रशिक्षण शिक्षा के साथ-साथ तो चल सकते हैं, परंतु ये कभी भी शिक्षा का स्थान नहीं ले सकते।

इसलिए शिक्षा नीति पर विचार करने की आवश्यकता तो है परंतु वह इसलिए नहीं कि आज हमें कौशल विकास की आवश्यकता है और देश के आर्थिक विकास की नई मांगें पैदा हो गईं हैं। आर्थिक क्षेत्र यानि कि बाज़ार के लिए कच्चा माल यानि कि मानव संसाधन उपलब्ध कराना शिक्षा का उद्देश्य कभी भी नहीं हो सकता। उपलब्ध लोगों को बाज़ार अपनी आवश्यकतानुसार प्रशिक्षित कर ले, यही सही तरीका है। शिक्षा का उद्देश्य केवल और केवल ज्ञानार्जन और चरित्रनिर्माण ही हो सकता है।

बहरहाल, शिक्षा की बात करते हुए हम एक तथ्य की उपेक्षा कर देते हैं कि अपने देश में शिक्षा का एक विस्तृत इतिहास रहा है। वेदों से लेकर आधुनिक ग्रंथों तक में शिक्षा के ऊपर गहन और विस्तृत चर्चा की गई है। इस इतिहास के एक उज्ज्वल पक्ष के वर्णन करते हुए मनुस्मृति में लिखा है कि दुनिया भर से लोग अपने-अपने चरित्र की शिक्षा पाने इस देश में आते थे। यह उक्ति काफी महत्वपूर्ण है। इसमें शिक्षा का उद्देश्य भी वर्णित है। लोगों को उनके-उनके चरित्र की शिक्षा दी जाती थी, न कि समाजवाद, सेकुलरवाद या ऐसे किसी राजनीतिक विचारधारा की। वास्तव में देखा जाए तो अपने देश की परंपरा में शिक्षा

तालिका 1: भारत में श्रमशक्ति की शिक्षा का स्तर

	संख्या* (15-59)	15-59 वर्ष वय वर्ग में हिस्सेदारी	कुल श्रम शक्ति में हिस्सेदारी#
निरक्षर	125.65	29.14	26.73
अनौपचारिक साक्षर	2.12	0.49	0.45
प्राथमिक या कम	102.38	23.74	21.78
माध्यमिक	76.08	17.64	16.18
माध्यमिक (सेकंडरी)	52.39	12.15	11.14
उच्चतर माध्यमिक	29.19	6.77	6.21
डिप्लोमा/प्रमाणपत्र	6.02	1.40	1.28
स्नातक	28.01	6.49	5.96
स्नातकोत्तर	9.40	2.18	2.00
कुल	431.23	100.00	91.73

**10 लाख में, # प्रतिशत में*

***स्रोत:** राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण 2009-10*

का मूल उद्देश्य व्यक्ति के चरित्र का विकास करना ही रहा है।

महात्मा गांधी अपनी पुस्तक हिंद स्वराज में लिखते हैं, ''शिक्षा: तालीम का अर्थ क्या है? अगर उसका अर्थ सिर्फ अक्षर-ज्ञान ही हो, तो वह तो एक साधन जैसी ही हुई। उसका अच्छा उपयोग भी हो सकता है और बुरा उपयोग भी हो सकता है। एक शस्त्र से चीर-फाड़ करके बीमार को अच्छा किया जा सकता है और वही शस्त्र किसी की जान लेने के लिए भी काम में लाया जा सकता है। अक्षर-ज्ञान का भी ऐसा ही है। बहुत से लोग उसका बुरा उपयोग करते हैं, यह तो हम देखते ही हैं। उसका अच्छा उपयोग प्रमाण में कम ही लोग करते हैं।[4]''

महात्मा गांधी अक्षर ज्ञान और कौशल विकास के ऊपर नैतिक ज्ञान और चारित्रिक विकास को वरीयता देते हैं। इसी बात को देश के अन्य महापुरूष भी स्वीकार करते हैं। स्वामी विवेकानंद लिखते हैं, ''शिक्षा का अर्थ तुम्हारे दिमाग में ठूंसी गई ढेर सारी जानकारियों का ढेर नहीं है, जो आजीवन अनपची रह कर गड़बड़ी पैदा करती रहें। जिस शिक्षा से हम अपना जीवन-निर्माण कर सकें, मनुष्य बन सकें, चरित्रगठन कर सकें और विचारों का सामंजस्य कर सकें, वही वास्तव में शिक्षा कहलाने योग्य है।[5]''

यही कारण है कि तैत्तिरियोपनिषद् में कहा है कि वेदों का अध्ययन करने के बाद शिष्यों को आचार्य उपदेश देते हैं, सत्य बोलो, धर्मयुक्त आचरण करो। 'यहां उल्लेखनीय है कि इससे पहले के दस अनुवादकों में भिन्न-भिन्न प्रकार के सभी विषयों के शिक्षण का वर्णन कर दिया गया है। अर्थात् सभी प्रकार के ज्ञान के ऊपर सच बोलने और धर्म पर चलने की नीति की शिक्षा को आवश्यक माना गया। यही कारण था कि महात्मा गांधी भी धर्म की शिक्षा को अनिवार्य मानते थे।

शिक्षा के इन उद्देश्यों को ध्यान में रखें तो स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता है। परंतु यह परिवर्तन आज जिसकी चर्चा की जा रही है, वह नहीं है। आज हम ज्ञान से कौशल विकास की ओर जाना चाह रहे हैं। परंतु आज आवश्यकता है शिक्षा को चरित्रनिर्माण का साधन बनाने की। इसे कौशल विकास और ज्ञान का साधन बनाने भर से बात बनेगी नहीं। आखिर जो पहले से कौशलयुक्त लोग हमारे पास हैं, वे क्या कर रहे हैं? क्या वे भ्रष्टाचार को बढ़ा नहीं रहे हैं? यदि हां तो सोचने की बात है कि ऐसा क्यों है? एक उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति भ्रष्टाचार को क्यों बढ़ावा दे रहा है? इसका सीधा कारण है कि उसकी शिक्षा में धर्मानुसार आचरण करना, सत्य बोलना आदि शामिल नहीं है।

संस्कृति का एक सुभाषित है। लालयेत् पञ्चवर्षानि, दशवर्षानि ताड़येत। प्राप्ते तु षोडसे वर्षे, पुत्रं मित्रं वदाचरेत।। इसका अर्थ है कि पांच वर्ष तक बच्चे को लाड़-प्यार की आवश्यकता रहती है। उसके बाद के दस वर्ष तक उसे थोड़ा बहुत ताड़ना अर्थात् दंड भी दिया जाना आवश्यक होता है। परंतु सोलह वर्ष का हो जाने पर उसके साथ मित्र जैसा आचरण करना चाहिए। ध्यान से देखें तो अभिभावकत्व के इस सूत्र में शिक्षा के स्वरूप का भी सूत्र छिपा हुआ है। पांच वर्ष तक के बालक को विद्यालय में डालना उसे लाड़-प्यार से दूर करना है। पांच वर्ष तक बच्चे की शिक्षक माता को ही होना चाहिए।

कंप्यूटर की शिक्षा निजी शिक्षा संस्थान दूसरी, तीसरी कक्षा से ही देने लगते हैं। परंतु बारहवीं उत्तीर्ण विद्यार्थी भी यदि छह माह का एक कंप्यूटर पाठ्यक्रम की पढ़ाई कर ले तो वह कंप्यूटर का उससे कहीं अधिक जानकार हो जाता है, जितना कि तीसरी कक्षा से इसकी पढ़ाई करने वाला व्यक्ति। इसी प्रकार हम अन्य प्रशिक्षणों के बारे में भी समझ सकते हैं। कौशल विकास और प्रशिक्षण शिक्षा के साथ-साथ तो चल सकते हैं, परंतु ये कभी भी शिक्षा का स्थान नहीं ले सकते।

आज सरकार ने पहली कक्षा में प्रवेश की न्यूनतम आयु पांच वर्ष कर दी है। परंतु बाज़ार आधारित विद्यालयों ने इसमें रास्ता निकाल कर नर्सरी, के.जी. आदि कक्षाएं बना दी हैं और उसमें वे दो-ढाई वर्ष के बच्चे का प्रवेश लेते हैं। इस पर रोक लगाने का उपाय नई शिक्षा नीति में होना ही चाहिए। पांच वर्ष से सोलह वर्ष की आयु तक बच्चे को ताड़ना यानि कि ज्ञानोपार्जन करने के लिए सतर्क करते रहना चाहिए। इसका अभिप्राय है कि यह दस वर्ष का काल बालक के लिए सीखने के लिहाज से अति महत्वपूर्ण होता है। इस कालखंड में वह जो कुछ भी सीख-समझ लेता है, सारा जीवन उसके अनुसार ही व्यवहार करता है। इसलिए इस कालखंड में उसे चरित्रनिर्माण की और ज्ञान की अन्यान्य बातें सिखाई जानी चाहिए।

सोलह वर्ष के उपरांत उसे कौशल विकास की शिक्षा दी जानी चाहिए। सुदृढ़ चरित्र और श्रेष्ठ ज्ञान से परिपूर्ण और विकसित मस्तिष्क के साथ वह किसी भी कौशल को सरलता से हस्तगत कर लेगा। और तब उसके उस कौशल का उपयोग केवल बाज़ार नहीं, संपूर्ण समाज भी कर सकेगा। वर्तमान में यदि कौशल प्राप्त किया जा रहा है तो केवल और केवल व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि के लिए। यहां तक कि चिकित्सक भी इतने पेशेवर हो गए हैं कि वे रोगी के स्वास्थ्य से अधिक महत्व पैसे को देते हैं। यह हुआ है ज्ञानोपार्जन और कौशल विकास में से शिक्षा को बाहर कर दिए जाने के कारण। आज की शिक्षा व्यवस्था में ज्ञानोपार्जन और कौशल विकास तो है, परंतु शिक्षा ही नहीं है। इसे ही ठीक किए जाने की आवश्यकता है।

हमें समझना होगा कि शिक्षा कोई समय के साथ बदलने वाली चीज नहीं है। प्रशिक्षण अवश्य समय के साथ बदलता है। नई तकनीकों के साथ प्रशिक्षण भी बदलता रहता है। परंतु शिक्षा हमेशा स्थिर रहती है। यदि सच बोलना चाहिए, तो यह हमेशा के लिए लागू होता है। ईमानदारी हरेक समय में अपेक्षित होती है। समाज और देश के हित में कार्य करना हरेक कालखंड में आवश्यक होता है। इसलिए शिक्षा के जो मापदंड, स्वरूप और नीतियां भारत के मनीषियों ने निर्धारित की थीं, वे आज से पांच हजार वर्ष पहले भी प्रासंगिक थीं और आज भी प्रासंगिक हैं। आवश्यकता है उन्हें पढ़-समझ कर उनका समुचित उपयोग करने की। ❑

योजना के पुराने अंक

योजना के पुराने अंकों के लिए पाठकों की जिज्ञासाएं लगातार मिलती रहती हैं। हम आपकी इस उत्सुकता का स्वागत व सम्मान करते हैं। योजना की सभी 13 भाषाओं की पुरानी प्रतियां योजना की वेबसाईट पर www.yojana.gov.in पर उपलब्ध हैं जहां से इन्हें डाउनलोड किया जा सकता है। वेबसाइट पर हमारे विशेष web exclusive आलेख भी उपलब्ध हैं। **–संपादक**

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में मूल्यपरकता की आवश्यकता

बरुण कुमार सिंह

शिक्षा का अर्थ केवल वस्तुओं का विभिन्न विषयों का ज्ञान मात्र नहीं है। अगर शिक्षा का उद्देश्य केवल किसी तरह उत्तीर्ण होकर पदवी प्राप्त कर लेने तक सीमित रहा तो परिणाम भयावह होगा और इस परिस्थिति के जिम्मेदार विद्यार्थी नहीं बल्कि यह शिक्षा पद्धति और इसे चलाने वाले होंगे। जो शिक्षा साधारण व्यक्ति को जीवन संघर्ष हेतु समर्थ नहीं बना सकती, मनुष्य को चरित्रवान नहीं बना सकती, परहित भावना तथा सिंह जैसा साहस नहीं ला सकती वह कोई शिक्षा नहीं है। जिस शिक्षा के द्वारा जीवन में अपने पैरों पर खड़ा हुआ जा सकता है और दूसरों को भी आगे बढ़ने की सीख दी जा सकती है, वही सच्ची शिक्षा है, वही मूल्यपरक शिक्षा है, वही गुणवत्ता वाली शिक्षा है

मूल्यपरक शिक्षा के लिए नीचे से लेकर ऊपर तक अर्थात प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक की शिक्षा को परस्पर जोड़ना होगा। बच्चों को विज्ञान एवं उसके अनुसंधान के प्रति ललक पैदा करनी होगी। आज हम देख रहे हैं कि जिस प्रकार गरीबी और अमीरी में फासला बढ़ता जा रहा है। ठीक वही स्थिति सरकारी शिक्षा और निजी शिक्षा की है। पहले शिक्षा केंद्र को ज्ञान का मंदिर कहा जाता था लेकिन आज ऐसा लगता है कि वह शिक्षा की दुकान हो गई है। आज शिक्षा तो मिल रही है लेकिन शिक्षा का असली अर्थ ही गौण हो गया है। सबसे बड़ी बात तो 'शिक्षा का अधिकार' कानून लागू होने के पश्चात भी बच्चे स्कूल तक पहुंचने से वंचित है।

जब हम यह मान रहे हैं कि शिक्षा रोजगारपरक नहीं रह गई है तो सबसे पहले इसे रोजगारपरक बनाइए, समय की यही मांग है, साथ ही वह क्या शिक्षा पा रहा है उसे उसकी मूल्यवत्ता का अहसास भी होना चाहिए। इसके साथ पाठ्यक्रम के दायरे से बाहर उसे नैतिक शिक्षा दी जानी चाहिए कि समाज एवं राष्ट्र के प्रति उसकी जिम्मेदारी बनती है, उसका भी उसे बोध होना चाहिए। 10वीं या 12वीं तक की शिक्षा पूरी करने तक उसे तीन महीने/छह महीने/एक वर्ष की रोजगारपरक शिक्षा मिल जाए। अगर किसी कारणवश आगे की पढ़ाई वह जारी नहीं रख सकता तो कुछ-न-कुछ रोजगार अवश्य मिल जाए।

हम सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र में विश्व के अग्रणी देशों में गिने जाते हैं और हमारे ही बच्चों को सूचना, नए अद्यतन जानकारी के साथ समय पर नहीं मिल पाती है। इससे बड़ी विडंबना क्या होगी?

मूल्यपरक एवं गुणात्मक शिक्षा के लिए आदान-प्रदान की प्रणाली अपनानी चाहिए। ऐसा अगर हम प्राथमिक स्तर से शुरू कर दें तो बच्चे में एक नई प्रकार की जिज्ञासा उत्पन्न होगी। आज हर राज्य में शिक्षकों से गैर शिक्षक कार्य लिए जा रहे हैं लेकिन शिक्षकों को नवीन जानकारी एवं सूचना से अद्यतन करने के लिए कोई सार्थक प्रयास नहीं किया जा रहा है। त्रैमासिक/अर्द्धवार्षिक/वार्षिक अर्थात शिक्षकों के लिए 'तीन महीने पर दो-तीन दिन का प्रखण्ड स्तर पर', 'छह महीने पर तीन-चार दिन का अनुमंडल स्तर पर' एवं 'वर्ष में एक सप्ताह का जिला स्तर पर' 'शिक्षक प्रशिक्षण कार्यशाला' का आयोजन हो। अर्थात साल में कम-से-कम पंद्रह दिन शिक्षकों के 'प्रशिक्षण कार्यशाला' के लिए निर्धारित होने चाहिए या जो अपेक्षित समझा जाए। जिसमें अपने-अपने क्षेत्र के विषय विशेषज्ञ नई-नई जानकारियों को शिक्षकों के साथ साझा कर सकें। इससे शिक्षकगण भावी पीढ़ी को नए-नए ज्ञान एवं सूचना से ओत-प्रोत कर सकेंगे। इसी प्रकार बच्चों में शुरू से ही छोटी-छोटी प्रतियोगिता को अपने ही स्कूल में बढ़ावा दें। आस-पास के स्कूल से समन्वय करके प्रखण्ड, अनुमंडल एवं जिला स्तर पर क्रियात्मक गतिविधि एवं प्रतियोगिता का आयोजन किया जाना चाहिए।

आज हमें फिर से अक्षर ज्ञान के साथ-साथ सद्गुणों की क्रियात्मक शिक्षा देने की जरूरत है जिससे वह सांसारिक जीवन में अपनी बाकी कठिनाइयों से संघर्ष कर सके। आज इतनी सुविधाएं होते हुए भी पाणिनी की तरह व्याकरण, पतंजलि की तरह योग, चरक

लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं। ईमेल: barun@live.in

और सुश्रुत की तरह औषध शास्त्र, मनु और याज्ञवल्क्य के मानव आचार शास्त्रों में आंतरिक सूक्ष्म तत्वज्ञान और बौद्धिक भावों का अवतरण क्यों नहीं हो पा रहा है? प्रो. यशपाल कहते हैं- ''वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था लोगों को बांट रही है। हर कोई फर्स्ट नहीं आ सकता।''

सैनिक कितना ही बलवान हो अगर उसे सुरक्षा के लिए नई तकनीक की बंदूक/मशीनगन एवं गोली नहीं दी जाए तो वही अपनी रक्षा एवं देश की सुरक्षा कैसे कर पाएगा। उसी प्रकार शिक्षकों को सिर्फ एक बार शिक्षक बन जाने के बाद जब तक उन्हें नए-नए ज्ञान से रू-ब-रू नहीं कराया जाएगा, हमारी आने वाली युवा पीढ़ी को वह जानकारी नहीं मिल पाएगी जिसकी वे हकदार हैं।

शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने के लिए अकादमिक एवं क्रियात्मक गतिविधि दोनों को एक-दूसरे के पूरक के रूप में लेकर चलना चाहिए। ऐसा न हो कि उसे ज्ञान तो तोता रटंत वाला हो लेकिन समय व स्थिति के अनुसार वह उसका निर्णय लेकर अवलोकन न कर सके। इससे बच्चे में जो झिझक होती है, वह समाप्त हो जाएगी, जब उसकी झिझक समाप्त हो जाएगी तो यही शिक्षा उसे बोझ नहीं लगेगी, बल्कि उसे पढ़ने में रुचिकर एवं आनंददायक लगेगी। बच्चों को जिस क्षेत्र में रुचि हो उसे उसके प्रति प्रेरित किया जाना चाहिए। समाज एवं राष्ट्र को हर क्षेत्र के लोगों की आवश्यकता है। उसे अधकचरा ज्ञान नहीं बल्कि संपूर्ण ज्ञान विविधता के साथ मिलना चाहिए।

जिस प्रकार सैनिक सीमा पर देश की सुरक्षा करता है उसे नई टेक्नोलॉजी की बंदूक/मशीनगन एवं कारतूस देश की सुरक्षा के लिए दी जाती है। सैनिक कितना ही बलवान हो अगर उसे सुरक्षा के लिए नई तकनीक की बंदूक/मशीनगन एवं गोली नहीं दी जाए तो वही अपनी रक्षा एवं देश की सुरक्षा कैसे कर पाएगा। उसी प्रकार शिक्षकों को सिर्फ एक बार शिक्षक बन जाने के बाद जब तक उन्हें नए-नए ज्ञान से रू-ब-रू नहीं कराया जाएगा, हमारी आने वाली युवा पीढ़ी को वह जानकारी नहीं मिल पाएगी जिसकी वे हकदार हैं। शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन लाने एवं गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लिए हमें एक क्रमबद्धता बनाए रखनी होगी तभी बच्चों को मूल्यपरक शिक्षा मिल पाएगी।

सभी बच्चे तो शहर जाकर नहीं पढ़ सकते हैं, जिसे खाने को ही लाले पड़ रहे हैं, जो मनरेगा में 100 दिन के कार्य के लिए भटक रहे हैं वे अपने बच्चे को कैसी शिक्षा दे पाएंगे, इसका आप अनुमान लगा सकते हैं? बहुत सारे ऑनलाइन शैक्षिक कार्यक्रम हैं। कहीं-कहीं विश्वविद्यालयों एवं शैक्षणिक संस्थानों का अपना रेडियो स्टेशन है एवं कम्युनिटी रेडियो के माध्यम से भी शिक्षा दी जा रही है और शैक्षिक कार्यक्रम चल रहे हैं लेकिन इन सबका सार है कि यह उच्च शिक्षा एवं तकनीकी शिक्षा तक ही सीमित है। जिस गांव में बिजली नहीं आती, वहां सारी की सारी ऑनलाइन शिक्षा धरी-की-धरी रह जाती है।

इसलिए हमें प्रयोग के तौर पर 'मोबाइल शिक्षा' की तरफ भी ध्यान देना चाहिए। जो विद्यार्थी शिक्षण संस्थान तक नहीं पहुंच सकते, संस्थान खुद उसके पास पहुंचे। जो विद्यार्थी तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा चाहता है और जिला मुख्यालय या राज्य की राजधानी या मेट्रो सिटी में नहीं आ सकता है या अफोर्ड नहीं कर सकता, उनके लिए हमें 'मोबाइल शिक्षा' बहुत ही कारगार सिद्ध होगी। ग्राम, अंचल, प्रखण्ड, अनुमंडल एवं जिला स्तर पर आपसी समन्वय करके एक सार्वजनिक स्थान को चुना जा सकता हैं जहां मोबाइल शैक्षिक वैन आए एवं तय समय एवं दिन के अनुसार दो घंटे/चार घंटे की शिक्षण-प्रशिक्षण कार्यशाला हो सकती है।

हर जिले में ऐसे शुरुआती दौर में कम-से-कम पांच मोबाइल शैक्षिक वैन हो जिसे बाद में परिणाम आने के बाद बढ़ाया जा सकता है। हर मोबाइल वैन अलग-अलग शैक्षिक कार्यक्रम से लैस हो। जैसे हमारे पास पांच मोबाइल वैन है तो उसमें एक प्रकार की नहीं अलग-अलग पांच शैक्षिक एवं तकनीकी शिक्षा के तौर पर डिजाइन किया जा सकता है एवं इसे एक-दूसरे क्षेत्र में भी तय समय सीमा के अंदर भेजा जा सकता है। जिस कार्यक्रम में प्रैक्टिकल की व्यवस्था हो उसे संभव हो तो मोबाइल वैन में व्यवस्था की जाए नहीं तो ऐसी व्यवस्था की जाए कि सैद्धांतिक अध्ययन के बाद में इन्हें जिला स्तर पर या समीप जो भी क्षेत्र हो उन्हें प्रायोगिक अनुभव कराया जाए। जिसमें प्रोजेक्टर के माध्यम से एवं हर विषय के दो विषय विशेषज्ञ हो जिसे 50-50 का ग्रुप बनाकर अलग-अलग लड़के एवं लड़कियां या साथ-साथ शिक्षा दी जा सकती है। इसे पॉयलेट प्रोजेक्ट के तौर पर चलाया जा सकता है। अगर यह व्यवस्था सफल होती है तो एक मील का पत्थर साबित होगी।

शिक्षा का मतलब यह नहीं कि सिर्फ हम छोटे बच्चे को ही शिक्षा दें। ज्ञान का दरवाजा सभी उम्र के लोगों के लिए खुला होना चाहिए। सोचिए अगर एक कृषि मोबाइल वैन हो तो इसके माध्यम से किसान भाइयों को भी एक जगह एकत्रित करके उन्हें फसल के बारे में तकनीकी जानकारी दी जा सकती है कि वे ज्यादा पैदावार उतने ही क्षेत्र में कैसे कर सकते हैं?

किसान मेहनत तो करते हैं लेकिन क्रमबद्धता न होने के कारण उन्हें या तो उपज कम होती है, फसल की गुणवत्ता प्रभावित होती है। इसी प्रकार स्वास्थ्य मोबाइल वैन के माध्यम से महिलाओं को स्वास्थ्य संबंधी जानकारी दी जा सकती है कि वे अपना खुद का स्वास्थ्य एवं बच्चे को छोटी-छोटी बीमारियों से कैसे बचाव कर सकते हैं। बच्चे को कौन सा टीका कब और किस समय लगवाना चाहिए। इसी प्रकार शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए भी मोबाइल शिक्षा वैन का प्रयोग किया जा सकता है। ढेर सारे क्षेत्र पड़े हैं, जिसे नई-नई तकनीक से लैस किया जा सकता है और उनमें निखार लाया जा सकता है।

शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने के लिए अकादमिक एवं क्रियात्मक गतिविधि दोनों को एक-दूसरे के पूरक के रूप में लेकर चलना चाहिए। ऐसा न हो कि उसे ज्ञान तो तोता रटंत वाला हो लेकिन समय व स्थिति के अनुसार वह उसका निर्णय लेकर अवलोकन न कर सके। इससे बच्चे में जो झिझक होती है, वह समाप्त हो जाएगी, जब उसकी झिझक समाप्त हो जाएगी तो यही शिक्षा उसे बोझ नहीं लगेगी,

स्वामी विवेकानंद ने कहा है, ''मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाली प्रक्रिया का नाम ही शिक्षा है।'' शिक्षा के क्षेत्र में यह सर्वमान्य तथ्य है कि बच्चे अपने परिवेश से खुद सीखते हैं बशर्ते कि उन्हें समृद्ध परिवेश मिले। शिक्षा का तात्पर्य मूलत: व्यक्तित्व के समग्र विकास से है। ❑

रेडियो व प्रसारण शिक्षा

विकास चंद्र

परंपरागत शिक्षा के साथ-साथ प्रसारण शिक्षा के माध्यम से भी वयस्कों और युवकों को एक अलग ढंग से शिक्षा प्रदान की जा रही है। इस कार्य में रेडियो प्रसारण की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण है। रेडियो द्वारा अलग-अलग विषयों पर लगातार कई कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है। रेडियो के माध्यम से प्रसारण शिक्षा का लाभ यह है कि इससे जहां लोगों को नई जानकारियों और तथ्यों से रूबरू होने का मौका मिलता है, वहीं यह काम काफी रोचकता के साथ किया जाता है, जिससे लोगों का अधिकाधिक जुड़ाव हो सके

शिक्षा जीवनभर चलने वाली एक सतत् प्रक्रिया है। यह एक महत्वपूर्ण और सर्वव्यापी विषय है। शिक्षा मानव की एक विशेष उपलब्धि है। शिक्षा एक कला है। यह भावनाओं को प्रकट करने की एक रीति है। मानव का संपूर्ण जीवन ही शिक्षा का काल है। शिक्षा विकास की प्रक्रिया है। सुकरात, प्लेटो, अरस्तू, इत्यादि विद्वानों के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान का अर्जन करना है। प्राचीन भारत में भी ज्ञान के संचय पर सम्यक बल दिया जाता था। लेकिन शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान अर्जन करने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उत्तम चरित्र का निर्माण करना भी है। शिक्षा मनुष्य को जीवन के सभी कार्यों को सुचारू रूप से करने के लिए तैयार करती है। शिक्षा मनुष्य की स्वाभाविक विशेषता रही है, जिसने सामाजिक विकास के हर युग में समाज को दिशा और स्वरूप देने में सहायता दी है।

प्रसारण शिक्षा की अवधारणा

शिक्षा का जीवन में घनिष्ठ संबंध होने के कारण शिक्षा के उद्देश्य वास्तविक जीवन पर आधारित होते हैं। भारत में शिक्षा के कई माध्यम हैं। परंपरागत शिक्षा के साथ-साथ दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से भी विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान की जा रही है। प्रसारण शिक्षा आज के समय में शिक्षा का एक उपयोगी एवं रचनात्मक विस्तार है। यह वयस्कों और युवाओं के लिए एक अनौपचारिक शिक्षा पद्धति है। यह स्कूल से बाहर दी जाने वाली शिक्षा का एक प्रकार है। प्रसारण शिक्षा को मूलत: ग्रामीण भारत के लिए ज्यादा उपयोगी माना जा रहा है। इसका प्रमुख उद्देश्य लोगों के विचारों में समुचित बदलाव लाना है। प्रसारण शिक्षा में रेडियो की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। रेडियो द्वारा अलग-अलग विषयों पर निरंतर कई कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है। ग्रामीण भारत को ध्यान में रखकर भी रेडियो के द्वारा कई प्रकार के कार्यक्रमों का निर्माण किया जाता है। इसके तहत ज्ञानवाणी से प्रसारित होने वाले कार्यक्रम, राष्ट्रीय विज्ञान पत्रिका, कृषि से संबंधित कार्यक्रम, ग्रामीण संसार, जैसे कार्यक्रमों को शामिल किया जा सकता है।

रेडियो की भूमिका

रेडियो के माध्यम से शिक्षा का लाभ यह है कि इससे जहां लोगों को नई जानकारियों और तथ्यों से रूबरू होने का मौका मिलता है, वहीं यह काम काफी रोचकता के साथ किया जाता है। यही वजह है कि ग्रामीण आधारभूत संरचनाओं के विकास, समृद्धि और विस्तार में शैक्षिक रेडियो प्रसारण की महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रसारण शिक्षा का उद्देश्य लोगों के ज्ञान, कौशल तथा विचारों में परिवर्तन लाना है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो प्रसारण से आशय लोगों को नए विचारों को ग्रहण करने के लिए तैयार करना है, जिससे वे उन्हें प्रयोग में लाकर ज्ञान प्राप्त कर सकें। प्रसारण शिक्षा एक धीमी गति का प्रक्रम है। ग्रामीण पृष्ठभूमि से ताल्लुक रखने वाले लोग आज भी रीति-रिवाजों पर चलना ज्यादा पसंद करते हैं। वे किसी नई पद्धति को अपनाने का जोखिम लेने के कम इच्छुक होते हैं। प्रसारण शिक्षा का कार्य पुराने विचारों को पूरी तरह से खत्म करना नहीं है बल्कि लोगों के बीच धीरे-धीरे नए विचारों को अपनाने के लिए वातावरण बनाना है।

लेखक महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा में जनसंचार विषय के पीएच.डी. शोधार्थी हैं। ईमेल: chandravikash7@gmail.com

रेडियो के जरिए रोचक और सरल शिक्षा

संचार के आधुनिक माध्यमों में रेडियो ने अपने वर्चस्व और महत्त्व को बरकरार रखा है। रेडियो अपनी विकास यात्रा के स्वर्णिम चरणों को पूरा करता हुआ आज एक नए मुकाम को हासिल कर चुका है। रेडियो पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों का श्रोताओं पर सबसे ज्यादा और सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अशिक्षित लोगों के लिए तो रेडियो को वरदान माना जाता है। एक अनपढ़ व्यक्ति भी इस माध्यम का इस्तेमाल आसानी से कर सकता है। रेडियो मूलत: एक श्रव्य माध्यम है। इसपर दृश्य देखने की सुविधा उपलब्ध नहीं है। रेडियो की यही बात इसे अन्य जनसंचार माध्यमों की तुलना में विशेष या सबसे हटकर साबित करती है। रेडियो पर समाचार या मनोरंजन परोसने का भी एक अलग तरीका है। प्रस्तुतीकरण की भिन्नता इसे अन्य माध्यमों की तुलना में रूचिकर माध्यम बनाता है। भारत जैसे विकासशील देश में आज भी जहां कुल आबादी का एक बड़ा हिस्सा गांवों में निवास करता है, वहां रेडियो ही ज्ञान, सूचना और मनोरंजन का सबसे सुलभ, सस्ता और आसान साधन है। इस माध्यम को प्रसारण शिक्षा के एक कारगर संवाहक के रूप में देखा जा रहा है।

भारत जैसे विकासशील देश में आज भी जहां कुल आबादी का एक बड़ा हिस्सा गांवों में निवास करता है, वहां रेडियो ही ज्ञान, सूचना और मनोरंजन का सबसे सुलभ, सस्ता और आसान साधन है। इस माध्यम को प्रसारण शिक्षा के एक कारगर संवाहक के रूप में देखा जा रहा है।

शैक्षणिक प्रसारण और रेडियो

भारत में रेडियो प्रसारण की शुरुआत 23 जुलाई, 1927 से मानी जाती है। शुरुआत से ही आकाशवाणी में शैक्षणिक प्रसारण पर जोर दिया गया। बंबई स्टेशन से पहली बार 1929 में स्कूल प्रसारण किया गया। बाद में जाकर मद्रास (अब चेन्नई) और कलकत्ता (अब कोलकाता) रेडियो स्टेशनों से भी नियमित रूप से स्कूल प्रसारण की शुरुआत की गई। सन् 1936 में भारत में रेडियो प्रसारण सेवा का नाम ऑल इंडिया रेडियो (एआईआर) कर दिया गया। सन् 1938 ई. के बाद से ऑल इंडिया रेडियो ने शैक्षणिक प्रसारण पर विशेष ज़ोर देना शुरू किया। शैक्षणिक प्रसारण को समृद्ध बनाने के लिए आकाशवाणी में एक केंद्रीय शिक्षा योजना इकाई भी है। इसका काम लोगों के सम्यक विकास के लिए कार्यक्रमों के निर्माण तथा उसके स्वरूप व संरचना को ध्यान में रखते हुए विविध विषयों से संबंधित विकास कार्यक्रमों के निर्माण की दिशा में काम करना है, जिससे रेडियो माध्यम से भी वंचितों एवं पिछड़ों को समाज की मुख्यधारा से जोड़ा जा सके।

यूनेस्को और रेडियो रूरल प्रोजेक्ट

सन् 1956 ई. में यूनेस्को ने भारत को अपने रेडियो रूरल प्रोजेक्ट के लिए चुना। इस तरह का प्रोजेक्ट पहले कनाडा में सफल रूप में लागू किया जा चुका था। इस ऐतिहासिक प्रोजेक्ट के लिए महाराष्ट्र स्थित पूना के आस-पास के 144 गांवों का चयन किया गया। इन गांवों में रेडियो रूरल फोरम बनाए गए और आकाशवाणी द्वारा कार्यक्रमों के प्रसारण के बाद वहां के ग्रामीणों के साथ वार्तालाप किया गया। इस परियोजना के लिए एक नारा भी दिया गया था- 'सुनो, चर्चा करो और उसके बाद उसे लागू करो।' इस अध्ययन के माध्यम से यह बात निकलकर सामने आई कि पूना के ग्रामीणों में रेडियो फोरम ने विभिन्न मुद्दों पर आम राय बनाने में योगदान किया और ग्राम पंचायतों को मजबूती प्रदान की।

प्रसारण शिक्षा के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए कई कार्यक्रमों को रेडियो के जरिए श्रोताओं तक पहुंचाने का क्रम वर्तमान में भी जारी है। लोगों के लिए कार्यक्रम बनाना, निर्णय लेने की क्षमता का विकास, स्थायी परिवर्तन, स्थानीय नेतृत्त्व का विकास, ग्रामीण समूह तथा संस्थाओं का विकास, आदि प्रसारण शिक्षा से संबंधित कुछ प्रमुख मुद्दे हैं। इन बिंदुओं को लेकर आकाशवाणी के द्वारा भी शैक्षणिक प्रसारण किए जा रहे हैं, जिनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण प्रसारण निम्नलिखित हैं-

1. **ग्रामीण संसार:** ग्रामीण क्षेत्र में रहनेवाले लोगों के लिए प्रस्तुत इस कार्यक्रम में खेती-बाड़ी एवं ग्रामीण समस्याओं की चर्चा की जाती है। इस कार्यक्रम का प्रसारण सभी अंचलों में स्थानीय विशेषताओं के साथ अलग ढंग से किया जाता है। इसके लिए साक्षात्कार, फीचर, वार्ता, आदि के जरिए ग्रामीणों को नई तकनीकियों के बारे में बताए जाने के साथ-साथ गीत-संगीत भी सुनाया जाता है, जिससे श्रोताओं का मन लगा रहे तथा उन तक विभिन्न विषयों से संबंधित जानकारियों का भी संचार हो सके।
2. **तिनका:** ग्रामीण मुद्दों को उठाने वाला आकाशवाणी का यह कार्यक्रम काफी लोकप्रिय रहा। गांवों के चहुंमुखी विकास को ध्यान में रखकर बनाए गए इस कार्यक्रम श्रृंखला की शुरुआत पहले तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम में की गई। बाद में उड़िया और पंजाबी में भी इस कार्यक्रम को तैयार किया गया।
3. **वयस्क शिक्षा एवं सामुदायिक विकास परियोजना:** सन् 1956 ई. में प्रारंभ की गई इस योजना को यूनेस्को की मदद से शुरू किया गया। इसके तहत पूना के आस-पास स्थित 144 गांवों को चुना गया। इसके लिए ग्रामीण रेडियो फोरम बनाए गए। इसमें सामुदायिक विकास एवं कृषि संबंधी कार्यक्रम प्रसारित किए जाते थे और प्रसारण के बाद उनपर चर्चा भी की जाती थी।
4. **विश्वविद्यालय प्रसारण परियोजना:** आकाशवाणी द्वारा इस परियोजना की शुरुआत सन् 1965 ई. में की गई। इसके तहत विभिन्न विश्वविद्यालयों में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं की शैक्षणिक जरूरतों को ध्यान में रखकर कार्यक्रम प्रसारित किए गए। ये कार्यक्रम विशेषकर दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से पढ़ रहे विद्यार्थियों के लिए काफी उपयोगी साबित हुए।
5. **इग्नू के लिए प्रसारण:** विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले छात्रों को ध्यान में रखकर आकाशवाणी ने इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (इग्नू) के सहयोग से शैक्षिक कार्यक्रम का प्रसारण शुरू किया।

प्रसारण शिक्षा के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए कई कार्यक्रमों को रेडियो के जरिए श्रोताओं तक पहुंचाने का क्रम वर्तमान में भी जारी है। लोगों के लिए कार्यक्रम बनाना, निर्णय लेने की क्षमता का विकास, स्थायी परिवर्तन, स्थानीय नेतृत्त्व का विकास, ग्रामीण समूह तथा संस्थाओं का विकास, आदि प्रसारण शिक्षा से संबंधित कुछ प्रमुख मुद्दे हैं।

इसकी शुरुआत जनवरी, 1992 में मुंबई, हैदराबाद और शिलांग से की गई। इग्नू के साथ मिलकर ऐसे और भी शैक्षिक प्रसारण आकाशवाणी ने जारी रखे हैं।

6. **भाषा अध्ययन कार्यक्रम:** 'रेडियो पायलट प्रोजेक्ट' के नाम से विख्यात इस परियोजना की शुरुआत 1979-80 में की गई। इसके लिए आकाशवाणी एवं राजस्थान के शिक्षा विभाग ने मिलकर इस योजना पर काम करना आरंभ किया। इसके तहत जयपुर और अजमेर जिलों के प्राथमिक विद्यालयों को लक्ष्य बनाकर परियोजना को अंजाम दिया गया। इससे बच्चों को शब्दों का ज्ञान बढ़ाने में मदद मिली। इस परियोजना को ध्यान में रखते हुए बाद में जाकर इसी तरह की एक परियोजना मध्य प्रदेश में भी शुरू की गई। इसके लिए होशंगाबाद जिले का चयन किया गया।
7. **राष्ट्रीय विज्ञान पत्रिका:** आम लोगों को विज्ञान संबंधी तथ्यों एवं धारणाओं के प्रति जागरूक बनाने के लिए भी आकाशवाणी द्वारा कार्यक्रम प्रसारित किए जाते रहे हैं। इसी के तहत आकाशवाणी द्वारा 'विज्ञान भारती' के नाम से राष्ट्रीय विज्ञान पत्रिका प्रसारित की जाती है। इस कार्यक्रम का अंग्रेजी रूप 'रेडियो स्कोप' के नाम से प्रसारित होता है। परिवार कल्याण एवं स्वास्थ्य संबंधी अंधविश्वासों को विज्ञान सम्मत ढंग से दूर करने में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।
8. **इग्नू आकाशवाणी इंटरएक्टिंग रेडियो काउंसलिंग:** शिक्षण संस्थानों और विद्यार्थियों के बीच एक परस्पर संवादहीनता की स्थिति बनी हुई थी। इससे उबरने के लिए इग्नू आकाशवाणी इंटरएक्टिंग रेडियो काउंसलिंग कार्यक्रम का प्रसारण प्रारंभ किया गया। पहली बार इस कार्यक्रम का प्रसारण 1998 में किया गया। इसे भोपाल के आकाशवाणी केंद्र ने शुरू किया। अपने तरह का एक नया प्रसारण और जानकारी युक्त होने की वजह से छात्रों के बीच यह कार्यक्रम खासा लोकप्रिय हुआ। इसकी सफलता को देखते हुए बाद में जाकर इसे पटना, लखनऊ, जयपुर, शिमला, रोहतक, जालंधर, दिल्ली और जम्मू केंद्रों से भी प्रसारित किया गया।
9. **शैक्षिक रेडियो प्रसारण ज्ञानवाणी:** ज्ञानवाणी चैनल भारत का पहला शैक्षिक रेडियो चैनल है। इसकी शुरुआत सन् 2001 ई. में की गई थी। ज्ञानवाणी के आने के पहले भी आकाशवाणी के द्वारा कई शैक्षिक प्रसारण किए जाते रहे थे लेकिन पूरी तरह से एक शिक्षा आधारित चैनल का अभाव था। इसी को दूर करने के लिए ज्ञानवाणी चैनल का प्रारंभ किया गया। विभिन्न शैक्षणिक संस्थानों, स्वयंसेवी संगठनों, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) और भारतीय तकनीकी संस्थान आदि के कार्यक्रमों का प्रसारण इस चैनल के जरिए किया जाता है। ज्ञानवाणी चैनल का उद्देश्य शिक्षा को सुलभता प्रदान करना है।
10. **कुष्ठ निवारण परियोजना:** देश में कुष्ठ रोग के प्रति लोगों को जागरूक बनाने और इसके खिलाफ अभियान चलाने के मकसद से एक परियोजना प्रारंभ की गई। इसके लिए आकाशवाणी द्वारा बीबीसी के साथ मिलकर इसपर काम शुरू किया गया। कुष्ठ निवारण की इस परियोजना के तहत लोगों में जागरूकता का संचार करने के लिए प्रसारित कार्यक्रमों के निर्माण हेतु संगीत एवं नाटकों का सहारा लिया गया। मनोरंजन से भरपूर इन कार्यक्रमों को बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल और उड़ीसा के सभी केंद्रों से प्रसारित किया गया। इस प्रकार कुष्ठ निवारण की इस परियोजना के माध्यम से इन प्रदेशों के लोगों को कुष्ठ रोग की रोकथाम से संबंधित जानकारियां रोचक ढंग से प्राप्त हुई।
11. **सामुदायिक रेडियो:** सामुदायिक रेडियो किसी समुदाय विशेष की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए चलाया जाने वाला ऐसा रेडियो चैनल है, जिसमें कार्यक्रम निर्माण एवं प्रस्तुति का काम भी उस समुदाय विशेष के लोग स्वयं करते हैं। आज के समय में विभिन्न स्वयंसेवी संगठनों, शैक्षिक संस्थाओं, आदि के द्वारा सामुदायिक रेडियो के माध्यम से प्रसारण किया जा रहा है। लोगों को जागरूक बनाने में शिक्षा की अहम भूमिका है। कई सामुदायिक रेडियो केंद्र आज प्रमुखता के साथ शैक्षिक प्रसारण कर रहे हैं।

उपरोक्त शिक्षा केंद्रित और शैक्षणिक वातावरण निर्माण से जुड़ी हुई परियोजनाओं के अलावा भी समय-समय पर ग्रामीण श्रोताओं के लिए रेडियो प्रसारण के माध्यम से विभिन्न विषयों से संबंधित ज्ञान के प्रसारण के लिए कार्यक्रमों का निर्माण किया जाता है। रेडियो द्वारा प्रसारित इन कार्यक्रमों के माध्यम से प्रसारण शिक्षा के क्षेत्र में लगातार गुणात्मक परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं।

निष्कर्ष

शिक्षा एक सामाजिक आवश्यकता है। शिक्षा के अनेक उद्देश्य हो सकते हैं। देश, काल व परिस्थिति के अनुसार इसके रूप में परिवर्तन देखने को मिलता है। किसी देश के जीवन दर्शन, राजनीतिक आदर्श और सामाजिक-आर्थिक स्थितियां, उस देश के शैक्षिक उद्देश्यों को प्रभावित करते हैं। वस्तुत: शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण का प्रमुख आधार व्यक्ति तथा समाज है। शिक्षा का जीवन से घनिष्ठ संबंध होने के कारण शिक्षा के उद्देश्य वास्तविक जीवन पर आधारित होते हैं। भारत में शिक्षा के कई माध्यम हैं। परंपरागत शिक्षा के साथ-साथ दूर प्रसारण शिक्षा के माध्यम से भी वयस्कों और युवकों को एक अलग ढंग से शिक्षा प्रदान की जा रही है। इस कार्य में रेडियो प्रसारण की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण है। रेडियो द्वारा अलग-अलग विषयों पर लगातार कई कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है। रेडियो के माध्यम से प्रसारण शिक्षा का लाभ यह है कि इससे जहां लोगों को नई जानकारियों और तथ्यों से रूबरू होने का मौका मिलता है, वहीं यह काम काफी रोचकता के साथ किया जाता है, जिससे लोगों का अधिकाधिक जुड़ाव हो सके। यही वजह है कि अन्य श्रोताओं के साथ-साथ विशेषकर ग्रामीणों के लिए प्रसारण शिक्षा से संबंधित रेडियो प्रसारण का विशेष महत्व है। ❑

पाठकों से

योजना में प्रकाशनार्थ आलेख व प्रतिक्रियाएं yojanahindi@gmail.com पर ईमेल के द्वारा प्रेषित की जा सकती हैं। आप हमारे फेसबुक पेज **योजना हिंदी** पर भी हमसे जुड़ सकते हैं। आपकी राय, सुझाव व सहयोग का इंतजार रहेगा।

–संपादक

शिक्षण में मातृभाषा की भूमिका और महत्त्व

अभिनव श्रीवास्तव

मातृभाषा के उपयोग या शिक्षा के माध्यम के तौर पर उसके इस्तेमाल का अर्थ ये बिलकुल नहीं होता कि कोई व्यक्ति बाकी भाषाओं के ज्ञान और उनमें हो रहे विमर्श से अनजान रहे। मातृभाषा तो वास्तव में वह बुनियाद तैयार करती है, जिस पर कोई व्यक्ति ज्ञान के विविध क्षेत्रों और संस्थानों के साथ ज्यादा सहज महसूस कर सके। बाकी भाषाओं के साथ भी उसका रिश्ता तभी प्रगाढ़ हो पाता है, जब वह मातृभाषा में सहज महसूस करता है। इसके साथ-साथ मातृभाषा और अपने परिवेश की भाषा के जरिए मिलने वाली संस्कृति से ही उसमें सांस्कृतिक और सामाजिक चेतना आती है

आधुनिक युग सूचना क्रांति का युग है। डिजिटल क्रांति और कंप्यूटर तकनीक ने हमारे जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित किया है। शिक्षा का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है। देखा जाए तो एक समय में आधुनिक विज्ञान और ज्ञानोदय का आधार अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार और पश्चिमी जीवन मूल्यों को माना गया था। कहने की आवश्यकता नहीं है कि सूचना क्रांति का युग भी इस पूरी धारणा का विस्तार ही है। इस क्रांति की जड़ में अंग्रेजी शिक्षा का दबदबा ही काम कर रहा है। इस दबदबे और वर्चस्व ने भारत जैसी प्राचीन सभ्यताओं के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक संस्थानों को अपनी गिरफ्त में ले लिया है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण शिक्षा के माध्यम के तौर पर मातृभाषा की सिमटती भूमिका और उसके बरक्स अंग्रेजी भाषा की बढ़ती हुई स्वीकार्यता में मिल जाता है।

शिक्षा के माध्यम की भाषा कौन सी हो, आम तौर पर ये बहस दो बिंदुओं के इर्द-गिर्द घूमती है। एक पक्ष मानता है कि मातृभाषा का ज्ञान और शिक्षा के माध्यम के रूप में उसका उपयोग किसी व्यक्ति की राजनीतिक और सांस्कृतिक चेतना के विकास के लिए आवश्यक है, वहीं दूसरा पक्ष मानता है कि मातृभाषा के प्रति रूमानी, तंग नजरिया त्यागकर और बदलती दुनिया की आवश्यकताओं के साथ कंधे से कंधे मिलाकर चलने के लिए अंग्रेजी भाषा का ज्ञान आवश्यक है। कई बार ये बहस बहुचर्चित 'अंग्रेजी बनाम हिंदी' विवाद में भी तब्दील हो जाती है। वास्तव में, सिर्फ अंग्रेजी ही नहीं, बल्कि दुनिया की किसी भी भाषा के प्रति तंग नजरिया हमारे लिए घातक होता है। ज्यादा से ज्यादा भाषाओं का ज्ञान हमें सांस्कृतिक और सामाजिक तौर पर संपन्न बनाता है लेकिन जब किसी एक भाषा का विकास दूसरी भाषा की कीमत पर हो, तब स्थिति बदल जाती है। तब बात सिर्फ भाषा की ही नहीं रह जाती, बल्कि उससे निकलने वाले जीवन मूल्यों और प्रणाली की भी हो जाती है। बीते कुछ दशकों में इस विचार ने शैक्षिक जगत में भी काफी जोर पकड़ा है कि बाल्यावस्था में ही बच्चों को अंग्रेजी शिक्षा के ज्ञान में प्रवीण बनाया जाना चाहिए। अगर यह मान भी लिया जाए कि रोजगार और बदलती दुनिया की आवश्यकताओं के लिए अंग्रेजी शिक्षा का ज्ञान आवश्यक है, तब भी बाल मनोवैज्ञानिकों और सामाजशास्त्रियों की इस बात को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि बच्चों को आरंभिक शिक्षा परिवेश की भाषा या मातृभाषा में ही दी जानी चाहिए, क्योंकि इसका संबंध उनके व्यक्तित्व के विकास से होता है।

मातृभाषा: भूमिका और मनोविज्ञान

देखा जाए सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में मातृभाषा या परिवेश की भाषा की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। आम तौर पर कोई भी बच्चा अपने चारों ओर के वातावरण, प्रकृति और लोगों से संवाद स्थापित करने के लिए भाषा का सहारा लेता है। भाषा की बुनियादी आवश्यकता उसे यहीं से महसूस होती है। जानकारों ने ऐसा माना है कि बच्चे बोलकर, पूछकर, सोचकर और फिर खुद को लिखित रूप में अभिव्यक्त कर ही सबसे ज्यादा

लेखक स्वतंत्र पत्रकार व शोधकर्ता हैं। प्रमुख दैनिक समाचार पत्रों में समसामयिक विषयों पर लेखन व शोध। पूर्व में राजस्थान पत्रिका से जुड़े रहे। सेंटर फॉर पॉलिसी रिसर्च 'सिटिज ऑफ देल्ही' से भी संबद्ध। ईमेल: abhinavas30@gmail.com

सीखते हैं। भाषाई अर्थ से पहले उनके दिमाग में अवधारणाएं बैठती हैं।[1] यह स्वाभाविक है कि इन कार्यों के लिए वे अपने परिवेश की भाषा या मातृभाषा में ही सबसे सहज महसूस करते हैं। स्कूली बच्चों के मनोविज्ञान पर हुए शोध यह दिखाते हैं कि स्कूल में प्रवेश करते समय किसी बच्चे के दिमाग में जो ढेर सारी अवधारणाएं होती हैं, वे मातृभाषा में ही होती हैं। ऐसा भी सामने आया है कि अगर बच्चों को स्कूल में प्रवेश के समय इसी भाषा में शिक्षा दी जाए तो अपने विषय के प्रति उनमें कहीं गहरी समझ होती है। वास्तव में, कोई भी व्यक्ति बाल्यावस्था में स्वयं से सवाल कर अपनी रचनात्मकता और सृजनात्मक क्षमता विकसित करता है और ऐसा करने के लिए वह सबसे ज्यादा अपनी मातृभाषा या परिवेश की भाषा पर ही निर्भर रहता है। वैसे बहुत से बाल मनोवैज्ञानिकों ने यह भी माना है कि बच्चों की रचनात्मक क्षमता को विकसित होने देने के लिए उनके अनुभवों को स्वीकार करना भी आवश्यक होता है।

ऐसा करने का अर्थ अंतत: उनकी मातृभाषा या परिवेश की भाषा को स्वीकार करना ही है। अगर उनके अनुभवों को सीधे-सीधे नकारा जाए तो धीरे-धीरे उनका रचनात्मक और मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। वहीं जिस बच्चे के पास बोलने, सुनने और समझने के जितने अवसर होते हैं, उसकी चिंतन प्रक्रिया उतनी ही गहरी होती है। संभवत: इसीलिए बाल्यावस्था में बच्चों को बोलने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य किसी व्यक्ति के मन में समग्र चिंतन पद्धति विकसित करना भी होता है। इस लिहाज से किताबी ज्ञान को बाहरी दुनिया के ज्ञान से जोड़कर देखना भी बहुत आवश्यक माना जाता है। बगैर मातृभाषा के ज्ञान के यह संभव ही नहीं है। अंत में इस बात पर जोर देना भी आवश्यक है कि जिस व्यक्ति की अपनी मातृभाषा पर पकड़ और अधिकार हो, उसके लिए ज्ञान की अन्य धाराओं में प्रवेश करना आसान हो जाता है। अवधारणाओं के संबंध में उसके मन में जो परिपक्वता मातृभाषा से आती है, वह उसे दूसरे अनुशासनों में भी सहज बना देती है। यहां तक कि अन्य भाषाओं को सीखने की उसकी क्षमता भी काफी बेहतर होती है।

मातृभाषा की प्रासंगिकता पर सवाल: कितना उचित?

मातृभाषा के उपयोग और शिक्षा के माध्यम के तौर पर उसके विकास के खिलाफ सबसे प्रचलित तर्क यही है कि भूमंडलीकरण के युग में मातृभाषा की कोई प्रासंगिकता नहीं बची है और अगर सिर्फ मातृभाषा के ज्ञान पर ही निर्भर रहा जाए तो कोई भी समाज आधुनिक युग के साथ कदम से कदम मिलाकर नहीं चल सकता। देखने-सुनने में यह तर्क बहुत मजबूत नहीं लगता, लेकिन आज शिक्षा नीतियों और शिक्षा प्रणाली में भी इस विचार की स्वीकार्यता काफी तेजी से बढ़ रही है। वास्तव में, मातृभाषा या परिवेश की भाषा के प्रति ऐसी सोच दुनिया भर में शिक्षा के उद्देश्य की विकृत हो रही समझ की झलक देती है। खास तौर पर, सूचना क्रांति और भूमंडलीकरण के दौर में इस सोच ने अपने पांव तेजी से पसारे हैं।

कोई भी व्यक्ति बाल्यावस्था में स्वयं से सवाल कर अपनी रचनात्मकता और सृजनात्मक क्षमता विकसित करता है और ऐसा करने के लिए वह सबसे ज्यादा अपनी मातृभाषा या परिवेश की भाषा पर ही निर्भर रहता है। वैसे बहुत से बाल मनोवैज्ञानिकों ने यह भी माना है कि बच्चों की रचनात्मक क्षमता को विकसित होने देने के लिए उनके अनुभवों को स्वीकार करना भी आवश्यक होता है।

सबसे पहले यह समझना आवश्यक है कि मातृभाषा के उपयोग या शिक्षा के माध्यम के तौर पर उसके इस्तेमाल का अर्थ ये बिलकुल नहीं होता कि कोई व्यक्ति बाकी भाषाओं के ज्ञान और उनमें हो रहे विमर्श से अनजान रहे। मातृभाषा तो वास्तव में वह बुनियाद तैयार करती है, जिस पर कोई व्यक्ति ज्ञान के विविध क्षेत्रों और संस्थानों के साथ ज्यादा सहज महसूस कर सके। बाकी भाषाओं के साथ भी उसका रिश्ता तभी प्रगाढ़ हो पाता है, जब वह मातृभाषा में सहज महसूस करता है। इसके साथ-साथ मातृभाषा और अपने परिवेश की भाषा के जरिए मिलने वाली संस्कृति से ही उसमें सांस्कृतिक और सामाजिक चेतना आती है। भारत के प्रसिद्ध वैज्ञानिक जगदीश चंद्र बसु अपनी मां से पेड़-पौधों के जीवन के किस्से-कहानी सुनते हुए ही बड़े हुए और यहीं से उनके मन में वनस्पति जगत के प्रति उत्सुकता और संजीदगी पैदा हुई। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने तो देसी प्रतीकों और भाषा का व्यापक स्तर पर इस्तेमाल कर देश के हजारों-हजार लोगों को अंग्रेजी शासन के खिलाफ सड़कों पर उतार दिया था।[2]

मातृभाषा से जुड़े भ्रम

जाहिर है कि मातृभाषा की भूमिका सिर्फ रोजगार प्रदान करने या कैरियर बना देने तक ही सीमित नहीं होती है। फिर जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि मातृभाषा का ज्ञान तो किसी बुनियाद की तरह होता है, वह ज्ञान के अन्य संस्थानों के लिए अवसरों को खोलता है। खुद भारत के अकादमिक और राजनीतिक जगत में ऐसी शख्सियतों की कमी नहीं रही है, जिन्होंने बहुभाषी होते हुए अपनी मातृभाषा में महान रचनाएं लिखीं। भारत के महान और प्रखर समाजशास्त्री रजनी कोठारी ने तो विमर्शी और अकादमिक रचनाएं हिंदी में लिखने के लिए विशेष प्रयास किए और अपनी प्रसिद्ध किताब 'पालिटिक्स इन इंडिया' का हिंदी संस्करण स्वयं लिखा। उन्होंने अपनी समाजशास्त्रीय अवधारणाएं मंचों से हिंदी में अभिव्यक्त करने में कभी झिझक नहीं दिखाई। हिंदी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार अज्ञेय भी हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं पर सामान अधिकार रखते थे।

अंग्रेजी पर अच्छा अधिकार रखने वाले लोहिया ने 'सामंती भाषा बनाम लोकभाषा' शीर्षक निबंध में देसी भाषाओं की महत्ता रेखांकित की है। उन्होंने तो एक कदम आगे बढ़कर ये तक कहा कि अंग्रेजी और अंग्रेजियत की बढ़ती स्वीकार्यता हमारी औपनिवेशिक सोच का परिणाम है।[3] वास्तव में, आज यह बात भी एक मिथक ही है कि देसी या लोक भाषाओं का अपना कोई बाज़ार नहीं है। आज भारत में हिंदी समेत तमाम लोक भाषाएं सिर्फ निजी दायरों में ही बोले जाने वाली भाषा से आगे बढ़कर संवाद की भाषा बन चुकी है। इनमें रोजगार सृजन की असीम क्षमताएं हैं।

क्या है वैश्विक परिप्रेक्ष्य

इस लिहाज से यह समझना भी आवश्यक है कि जिन देशों ने मातृभाषा के महत्त्व को पहचाना, उन्होंने सामाजिक, शैक्षिक और राजनीतिक क्षेत्र में कई अनुकरणीय मानक स्थापित किए। चीन, जापान, कोरिया, रूस,

जर्मनी, फ्रांस जैसे देश अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा के बिना भारत से काफी आगे हैं। जर्मनी ने तो उच्च शिक्षा क्षेत्र में बाहरी विद्यार्थियों के लिए जर्मन भाषा के ज्ञान को आवश्यक बना दिया है। अमेरिका, कनाडा, न्यूजीलैंड जैसे अंग्रेजी भाषी देशों में भी बच्चे को उसकी मातृभाषा में स्कूली शिक्षा देने का प्रयास किया जाता है। अमेरिका में बोस्टन का उदाहरण बीते सालों में चर्चा में आया था। यहां एक स्कूल में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी नहीं थी, बल्कि उस क्षेत्र के अफ्रीकी मूल के निवासियों की स्थानीय भाषा थी। जब प्रशासन ने माध्यम अंग्रेजी किया तो आने वाले सालों में वहां काफी औसत दर्जे के परिणाम आए। प्रशासन ने सबक लेते हुए स्थानीय भाषा को ही शिक्षा का माध्यम बना दिया। आज स्थिति ये है दक्षिण एशिया के क्षेत्र में अंग्रेजी को उच्च शिक्षा के माध्यम के तौर पर बढ़ावा मिल रहा है जबकि कुछ देश (नाइजीरिया, फिलीपींस) इस सोच से किनारा कर रहे हैं।

अंतर्राष्ट्रीय मातृभाषा दिवस

मातृभाषा के संबंध में यूनेस्को के निष्कर्षों पर भी ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। मातृभाषा के महत्त्व को ध्यान में रखकर साल 1999 में यूनेस्को ने मातृ भाषाओं को संरक्षित और विकसित करने की जरुरत पर बल दिया और 21 फरवरी को अंतर्राष्ट्रीय मातृभाषा दिवस के रूप मनाने का प्रस्ताव पारित किया था। यूनेस्को ने बार-बार यह रेखांकित किया है कि सफल शिक्षा मातृभाषा में ही संभव है।

''स्वत: सिद्ध है कि बच्चे की शिक्षा का सबसे बढ़िया माध्यम मातृभाषा है। मनोवैज्ञानिक आधार पर यह सार्थक चिन्हों की ऐसी प्रणाली है जो संप्रेषण और समझ के लिए उसके दिमाग में स्वचालित रूप में काम करती है, सामाजिक आधार पर जिस जनसमूह के सदस्यों से उसका संबंध होता है उसके साथ एकात्मक होने का साधन है, शैक्षिक आधार पर वह मातृभाषा के माध्यम से एक अनजाने माध्यम की अपेक्षा तेजी से सीखता है।''

(यूनेस्को, 1953, द यूज आफ वर्नाक्लर्ज़ इन एजुकेशन)

निष्कर्ष

वास्तव में दुनिया भर में शिक्षा के मूल उद्देश्य पर ही आज सबसे ज्यादा प्रहार हो रहे हैं। इस विचार की स्वीकार्यता दिनों-दिन बढ़ रही है कि शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य 'कैरियर' बनाना है। ये एक बाज़ारवादी विचार है और यही वह प्रस्थान बिंदु है जहां से मातृभाषा समेत भारत की तमाम बोलियां और देशज भाषाएं हाशिए पर चली जाती हैं।[4] भारत और एशियाई समाजों की संरचना ज्यादा विविधता वाली है। इस समय दुनिया में कुल 6800 भाषाएं हैं जिनमें से 3200 भाषाएं तो एशियाई समाजों में ही बोली जाती हैं। यानि कि ये समाज पश्चिमी और यूरोपीय समाजों की तरह समरूप नहीं है। फिर भारत जैसे समाजों में मातृभाषा का इस्तेमाल और भाषाई विविधता की भूमिका कहीं व्यापक है। हमारे समाज को परंपरागत रूप से समृद्ध और सचेतन बनाने का कार्य इस विविधता ने ही किया है। आज इस बात पर चिंतन-मनन करने की आवश्यकता है कि शिक्षा के उद्देश्य के प्रति हमने जो समझदारी बनाई है, वह हमें कहां लेकर जा रही है? ❑

संदर्भ

1. महेश पुनेठा, परिवेश की भाषा का महत्व
2. रजनी कोठारी, भारत में राजनीति
3. राम मनोहर लोहिया, सामंती भाषा बनाम लोकभाषा
4. एथोनोलाग, केवल जे कुमार

(पृष्ठ 57 से जारी ...)

पढ़ाने के अवसर नहीं मिलते। बाल गणना, जनगणना, बालिका गणना, भोजन वितरण, वजीफा बांटने जैसे अनुत्पादक और असृजनात्मक कामों में लगाए जाने का विरोध एक प्रतिबद्ध शिक्षक विरोध करता आया है। हालांकि डाइस की रिपोर्ट देखें तो पाएंगे कि पूरे साल में शिक्षकों से महज 12, 16 और 22 दिन ही इस तरह के कामों में लगाए जाते हैं[4] लेकिन वास्तविकता तो कुछ और ही है। दर्ज न हुए कामों जो कहीं दस्तावेजों में नहीं होते, साल भर चलते रहते हैं और शिक्षक स्कूल में पढ़ाना छोड़ कर अन्य कामों में जोत दिए जाते हैं।

शिक्षण बतौर व्यवसाय चुनने वालों में लगातार गिरावट भी देखी गई है। आज के युवा जिस शिद्दत से मैनेजमेंट, आईआईटी एवं मल्टी नेशनल कंपनियों को ध्यान में रखते हुए विषयों और स्कूलों का चुनाव करते हैं। शिक्षा के हिस्से में बचे हुए, छटे हुए व कहें जीवन की अंतिम ख़्वाहिश के तौर पर मजबूरन अपनाया जाने वाला व्यवसाय के तौर पर उभरा। यही वजह कि शिक्षण कर्म में आने वाले शिक्षकों की रूचि शिक्षा में बहुत बाद में पैदा होती है। ऐसे शिक्षकों की संख्या कम है जिन्होंने अध्यापन कर्म को प्रथमदृष्टया चुना हो। इस पर कृष्ण कुमार लिखते हैं कि कैरियर की दृष्टि से स्कूली शिक्षण को सिर्फ वे युवक अपनाते थे, जिन्हें कोई और काम नहीं मिला सका होता था, और जब भी उन्हें किसी और काम में जाने का मौका मिलता था, मसलन किसी दफ्तरी नौकरी में, तो वे तुरंत उसमें चले जाया करते थे।

गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले कारणों में निश्चिततौर पर शिक्षक प्रशिक्षण प्रक्रिया करीब से देखी समझी जानी चाहिए। डी पी पटनायक शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में भाषा को दिए जा रहे महत्व की ओर सुधि पाठकों का ध्यान अपनी पुस्तिका *शिक्षा संदर्भ और भाषा* में खींचते हैं कि शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों को देखने से पता चलता है कि इसमें भाषा से अधिक पद्धति पर ज्यादा जोर दिया गया है। मान लीजिए कि 6 घंटों में से 2 घंटे वास्तविक भाषा के लिए है और 4 घंटे भाषा पढ़ाने की पद्धति के लिए, जिसमें भाषा की भाषा तथा उपेक्षित और बेकार की विधियों की चर्चा ही अधिक लेती है। कहना होगा कि छात्रों की कमजोरी दूर करने में अक्षम शिक्षक ही हमें शिक्षा व्यवस्था से प्राप्त होंगे।

शिक्षक का व्यवयासिक प्रशिक्षण कितना अहम है, इस ओर दवे *शिक्षा में नवचिंतन* में जिक्र करते हैं कि टीचर प्रतिदिन अपने को नया करने तथा नए अंदाज में प्रस्तुत करने की मांग करता है। इसलिए एक टीचर को टीचिंग के लिए सदैव नवीनता की खोज करते रहना होगा। नवीनता के लिए जरूरी है कल्पना, कौतुक, जिज्ञासा और आनंददायी भावना। इसका अर्थ यह हुआ कि शिक्षण एक आनंददायी काम है। इस आनंद का प्रतिदिन अन्वेषण करते रहना ही एक शिक्षक का कर्म और धर्म है। ❑

संदर्भ

1. नाईक, जे पी, शिक्षा आयोग और उसके बाद, पेज नंबर 45
2. नाईक, जे पी, शिक्षा आयोग और उसके बाद, पेज नंबर 25
3. शर्मा, प्रेमपाल, शिक्षा कुशिक्षा, पेज 80
4. डाईस फ्लैस रिपोर्ट 2014-15, नीपा
5. कुमार, कृष्ण, गुलामी की शिक्षा और राष्ट्रवाद, पेज नंबर 90
6. डी पी पाट्टनायक, शिक्षा संदर्भ और भाषा, पेज 11
7. दवे, रमेश, शिक्षा में नवचिंतन, पेज 143

शिक्षा के प्रसार के लिए गैर-सरकारी प्रयास

सुभाष सेतिया

व्यक्तियों और संस्थाओं के छोटे बड़े प्रयास इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि समाज और देश में जागृति तथा प्रगति लाने का काम केवल सरकार पर नहीं छोड़ा जा सकता। शिक्षा की तरह ही अन्य क्षेत्रों में भी सरकारी योजनाओं और कार्यक्रमों के साथ-साथ गैर-सरकारी प्रयासों से देश को विकसित राष्ट्रों की पंक्ति में खड़ा करने का राष्ट्रीय संकल्प पूरा किया जा सकता है

शिक्षा मानव प्रगति का मुख्य आधार है। शिक्षा जहां हमें संस्कारित करके अच्छा इंसान बनने की दिशा देती है, वहीं आर्थिक एवं भौतिक विकास की सीढ़ियां चढ़ने में भी सहायक होती है। सरकार के मुख्य लक्ष्य 'सबका साथ सबका विकास' की प्राप्ति में शिक्षा का अमूल्य योगदान हो सकता है। साक्षरता तथा शिक्षा को प्रोत्साहन देने के सरकारी प्रयास स्वतंत्रता के पश्चात् से ही निरंतर चल रहे हैं। सभी भारतीयों तक शिक्षा की ज्योति पहुंचाने के लिए शिक्षा संस्थाओं की संख्या बढ़ाने के साथ-साथ नई शिक्षा नीति तैयार की जा रही है। किंतु इस सच्चाई से इंकार नहीं किया जा सकता कि अनेक प्रयासों के बाद भी साक्षरता दर संतोषजनक नहीं है। 2011 की जनगणना के अनुसार देश में 65 प्रतिशत लोग साक्षर थे जिनमें पुरुषों की साक्षरता दर 75 प्रतिशत तथा महिलाओं की केवल 54 प्रतिशत थी। ज़ाहिर है शिक्षा विशेषकर, महिला शिक्षा के क्षेत्र में स्थिति चिंताजनक है। यह तो तब है जब केंद्र और राज्य सरकारों के अलावा अनेक स्वयंसेवी संस्थाएं तथा व्यक्ति भी शिक्षा प्रसार के यज्ञ में अपनी आहूति डाल रहे हैं। ये संस्थाएं और व्यक्ति अपने-अपने ढंग से जरूरतमंद वर्गों को शिक्षा की सुविधाएं उपलब्ध कराके उन्हें समाज की मुख्यधारा से जोड़ते रहे हैं और उनमें आर्थिक स्वावलंबन लाकर देश के आर्थिक विकास को गति देने में सहायता कर रहे हैं। ऐसे ही कुछ कर्मठ संगठनों एवं व्यक्तियों के त्याग, लगन व परिश्रम की कहानियां हम यहां प्रस्तुत कर रहे हैं। इस विवरण का एक सुखद पहलू यह है कि ज्ञान प्रसार के इस गैर-सरकारी अभियान में महिलाएं अग्रणी भूमिका निभा रही हैं।

कमालगंज में मधु का कमाल

'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' कार्यक्रम में लड़कियों को शिक्षित करने पर विशेष बल देने का आग्रह है। इसलिए स्वयंसेवी प्रयासों में भी लड़कियों की शिक्षा को प्राथमिकता मिल रही है। हम जानते हैं कि गांवों, कस्बों और शहरों में स्कूल खुल जाने के बावजूद बहुत सी लड़कियां विभिन्न कारणों से स्कूलों में नहीं जा पातीं या शिक्षा पूरी किए बिना ही स्कूल छोड़ देती हैं। उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद ज़िले के कमालगंज इलाके की लड़की मधु ने ऐसी ही लड़कियों को शिक्षित करने का बीड़ा उठाया है। वह न केवल लड़कियों को शिक्षित कर रही हैं बल्कि समाज में बेटियों के साथ होने वाले भेदभाव पर भी चोट कर रही हैं। मध्यवर्गीय परिवार में जन्मी मधु बचपन से ही पढ़ाई में निपुण थी। उसने देखा कि पांचवीं कक्षा में उसके साथ 100 लड़कियां पढ़ती थीं लेकिन जब वह छठी में गई तो 30-40 लड़कियां ही रह गईं। जब वह आठवीं में थी तो लड़कियों की संख्या 18 रह गई। जब उसने मैट्रिक की परीक्षा दी तो उसके साथ केवल 8 लड़कियां ही रह गईं। यह देखकर उसने मन ही मन संकल्प किया कि वह इस प्रवृत्ति को दूर करेगी। उसने दसवीं पास करते ही अपनी बस्ती में मां दुर्गा शिक्षण संस्थान नाम से स्कूल खोला और साथ ही अपनी पढ़ाई जारी रखी।

लेखक आकाशवाणी से अपर महानिदेशक (समाचार) के पद से सेवानिवृत हैं। कहानी, कविता और स्त्री विमर्श पर कई पुस्तकें: भारतीय नारी, कितनी जीती कितनी हारी, स्त्री अस्मिता के प्रश्न, हार में जीत, पानी की लकीर आदि प्रकाशित। ईमेल: setia_subhas@yahoo.co.in

मधु की ख्याति आस-पास के गांवों में फैल गई और उसे आर्थिक सहायता मिलने लगी। उसने शादी-ब्याह नहीं किया और अपनी पढ़ाई तथा स्कूल का काम जारी रखा। अब वह पीएच.डी कर रही हैं। इस बीच, 2003 में मां दुर्गा शिक्षण संस्थान को जूनियर हाई स्कूल, 2006 में हाई स्कूल तथा 2013 में इंटर कॉलेज की मान्यता मिल गई। मधु के प्रयासों से वे लड़कियां शिक्षित हो रही हैं जो सामान्य स्कूलों में नहीं पढ़ पाई थीं।

सेवानिवृति के बाद समाजसेवा

मधु की तरह स्नेहलता भी शिक्षा प्रसार के माध्यम से समाज सेवा कर रही हैं। हरियाणा के गुड़गांव शहर में स्नेहलता हुड्डा गरीब बच्चों को अच्छी शिक्षा की सुविधा उपलब्ध करा रही हैं। स्नेहलता दिल्ली में अध्यापिका के रूप में कार्यरत थीं। रिटायर होने के बाद उन्होंने घर में बैठने या ट्यूशन आदि के जरिए पैसा कमाने की बजाए सेवा का रास्ता चुना और 2005 में 'गौरव निकेतन' नाम से स्कूल खोल लिया। स्नेहलता हुड्डा ने स्वयं शहर के विभिन्न गली-मुहल्लों में घूम कर उन गरीब बच्चों की पहचान की, जिन्हें पढ़ाई-लिखाई की जरूरत थी और बच्चों के मां-बाप को उन्हें स्कूल भेजने को तैयार किया। शुरू में उन्होंने बच्चों को अलग-अलग ग्रुप में पढ़ाया, फिर एक जगह की तलाश की और पेड़ के नीचे कक्षाएं लगाने लगीं। अब यह स्कूल एक टिन शेड में चल रहा है जिसमें झुग्गी-झोंपड़ी कालोनियों के बच्चों को स्कूल ड्रेस, पुस्तकें आदि मुफ्त दी जाती हैं और उन्हें सांस्कृतिक गतिविधियों में शामिल होने के अवसर भी दिए जाते हैं।

स्कूल पहुंचाने के लिए मुश्तैद 'टीम बालिका'

शिक्षा देने वालों का समाज के विकास में जितना महत्व है उतना ही महत्व बच्चों को स्कूल तक ले जाने और उन्हें स्कूलों में बनाए रखने का है। जैसा कि पहले बताया गया है, बहुत से मां-बाप अपने बच्चों, विशेषकर लड़कियों को स्कूल नहीं भेजते। राजस्थान के पाली तथा जालौर जिलों में कुछ उत्साही महिलाओं ने 'टीम बालिका' नाम की संस्था बनाई है जिसका उद्देश्य लड़कियां को सरकारी स्कूलों में अच्छी शिक्षा दिलाना है। यह संस्था जहां एक ओर लड़कियों तथा उनके मां-बाप को बालिका शिक्षा के लिए प्रेरित करती है वहीं सरकारी स्कूलों के अधिकारियों तथा प्रिंसिपलों व शिक्षिकाओं को लड़कियों की शिक्षा पर पूरा ध्यान देने का दबाव बनाती है। इस संस्था में अधिकतर समाज सेविकाएं ऐसी छात्राएं या महिलाएं हैं जो स्वयं बड़ी कठिनाइयों के बाद उच्च शिक्षा प्राप्त कर पाईं। संस्था द्वारा दोनों जिलों के विभिन्न हिस्सों में बाल सभाएं आयोजित की जाती हैं जिनमें लड़कियों को शिक्षा का महत्व और फायदे बताए जाते हैं। लड़कियों की माताओं को भी पढ़ाई-लिखाई से जीवन में आने वाले परिवर्तन की जानकारी दी जाती है। टीम बालिका ने जब यह अद्भुत प्रयास शुरू किया था तो इसने 50 सरकारी स्कूलों में लड़कियों की शिक्षा का कार्य हाथ में लिया था किंतु धीरे-धीरे इसका कार्यक्षेत्र बढ़ता गया और इस समय 500 सरकारी स्कूलों में लड़कियों को दाखिला दिलाने तथा उन्हें स्कूल छोड़ने से रोकने की दिशा में संस्था की कार्यकर्ता सक्रिय हैं।

सामाजिक कुरीतियों से लड़ता आईपीएस

केरल के एक आईपीएस अधिकारी पी. विजयन भी गरीब बच्चों को शिक्षित करने में लगे हैं। विजयन का अपना बचपन गरीबी में बीता था। उन्हें एक समय स्कूल की पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी थी। लेकिन बाद में मेहनत और लगन से उन्होंने फिर से पढ़ाई शुरू की और आईपीएस अधिकारी बनने में कामयाब हुए। पुलिस में वरिष्ठ पदों पर काम करते हुए उन्हें अनेक जरूरतमंद बच्चे मिले पर वे उनके लिए कुछ नहीं कर पाते थे। इसलिए उन्होंने कोज़ीकोड में 'नान्मा' संस्था बनाई। यह संस्था स्कूल में पढ़ाई जारी न रख पाने वाले बच्चों को पढ़ने-लिखने के अवसर देती है। इस समय 1,000 से अधिक गरीब बच्चे इस संस्था से मदद लेकर पढ़ाई कर रहे हैं। विजयन ने एक और दिशा में भी कदम बढ़ाया है। उन्होंने युवकों को सामाजिक कुरीतियों से लड़ने का प्रशिक्षण देने के लिए स्टूडेंट्स पुलिस कैडेट प्रोजेक्ट नाम से अभिनव कार्यक्रम शुरू किया है।

मां की याद में शुरू की बेटियों की सेवा

महाराष्ट्र में पुणे की बेगम अशरफ मुल्ला ने अपने इलाके के मुस्लिम समुदाय की औरतों को साक्षर तथा सशक्त बनाने का बीड़ा उठाया है। बेगम अशरफ एक स्कूल में अध्यापिका थीं। सरकारी स्कूल में पढ़ाते हुए उन्हें घर-बार भी संभालना पड़ता था जिससे वह अपने समुदाय की औरतों की जिंदगी बदलने का अपना सपना पूरा करने के लिए समय नहीं निकाल पाती थीं। 1985 में अपनी मां की मृत्यु के बाद उनके मन में अपनी मां की याद में कुछ करने की इच्छा बलवती हुई और उन्होंने गरीब और अनपढ़ मज़दूरों की लड़कियों के लिए सिलाई स्कूल खोला। बाद में उन्होंने मुस्लिम समाज प्रबोधन संस्था का गठन किया और 1990 में एक प्राइमरी स्कूल शुरू कर दिया। तभी गांव के किसी नेक इंसान ने उनकी संस्था के लिए 3000 वर्ग फुट जमीन दान में दी।

इसके बाद अशरफी मुल्ला के नाम से पुकारी जाने वाली इस महिला के कदम और तेजी से बढ़ने लगे। उन्होंने 1993 में लड़कियों के लिए अनाथालय खोला जिसमें अब 100 से अधिक लड़कियों को सहारा मिला हुआ है। रिटायर होने के बाद बेगम अशरफ अपना पूरा समय सेवा कार्य में लगाने लगीं। एक और परिवार ने 2003 में उन्हें जमीन दान में दी जहां उन्होंने लड़कियों के लिए जूनियर कॉलेज खोल दिया। इस समय उनकी 6 संस्थाएं चल रही हैं जहां लड़कियां शिक्षा व प्रशिक्षण प्राप्त करके अपने परिवार तथा समुदाय का जीवन बेहतर बना रही हैं।

खानाबदोश परिवारों को पढ़ाने में जुटी प्रोफेसर

महाराष्ट्र की ही एक अन्य महिला रजनी परांजपे भी बाल शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय काम कर रही हैं। ये स्वयं सेवानिवृत्त प्रोफेसर हैं और अपनी एक बाल मनोवैज्ञानिक मित्र बीना शेठ लश्करी के साथ मिल कर उन्होंने 1988 में मुंबई में खानाबदोश परिवारों के बच्चों को शिक्षित करने के लिए एक स्वयंसेवी संस्था 'डोर स्टेप स्कूल' का गठन किया। पुणे में विभिन्न स्थानों पर निर्माणाधीन इमारतों में काम करने वाले मजदूरों के बच्चों को 'डोर स्टेप स्कूल' में शिक्षा दी जाती है। मुंबई के स्लम क्षेत्र के बच्चों को भी शिक्षित किया जा रहा है। बाद में इन बच्चों को सामान्य स्कूलों में दाखिल कराया जाता है ताकि उपेक्षित बच्चे समाज की मुख्यधारा में शामिल हो सकें।

केवल 30 बच्चों से शुरू हुई इस संस्था की विभिन्न परियोजनाओं में इस समय कई हजार बच्चे शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। ज़ाहिर है इस संस्था के बिना हर साल हज़ारों गरीब बच्चे शिक्षा के वरदान से वंचित रह जाते।

पंजाब का शांति निकेतन

पंजाब के गुरदासपुर जिले के तुगलवाला गांव में चलने वाला बाबा आया सिंह रियाड़की कॉलेज अपने आप में एक अनूठी शिक्षा संस्था है। नाम इसका भले ही कॉलेज है लेकिन यहां पहली से लेकर एम.ए. तक की पढ़ाई होती है। इस संस्था की विशेषता यह है कि यह गांव के लोगों द्वारा ही संचालित होता है। इसे 'पंजाब का शांति निकेतन' भी कहा जाता है। इस संस्था की शुरुआत बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने के उद्देश्य से हुई किंतु बाद में इसमें लड़कों को भी प्रवेश दिया जाने लगा। इस समय 3500 विद्यार्थी हैं जिनमें से 2500 लड़कियां हैं। केवल 34 लड़कियों को लेकर 1975 में शुरू हुए कॉलेज के संचालन का दायित्व मुख्य रूप से लड़कियों के कंधों पर रहता है। यहां पढ़ने वाले बच्चों से बहुत मामूली फीस ली जाती है। इसके अनूठेपन का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि कॉलेज में प्रशासन या शिक्षण के लिए किसी बाहरी व्यक्ति की नियुक्ति नहीं की जाती। बड़ी कक्षाओं के बच्चे ही छोटी कक्षाओं के बच्चों को पढ़ाते हैं।

कॉलेज के होस्टल की देख-रेख और भोजन पकाने के लिए छात्र-छात्राओं के समूह बने हुए हैं जो बारी-बारी से अपनी ज़िम्मेदारी निभाते हैं। कॉलेज में बिजली तथा ईंधन की आवश्यकता पूरी करने के लिए सौर ऊर्जा संयंत्र तथा गोबर गैस संयंत्र है। आटा चक्की, मसाला चक्की और तेल तथा गन्ने का रस निकालने जैसी सभी तरह की मशीनें भी यहां मौजूद हैं। इन सभी पर छात्र-छात्राएं ही काम करती हैं। इस तरह बाबा आया सिंह रियाड़की कॉलेज जहां हमारे प्राचीन गुरुकुलों की परंपरा की याद दिलाता है, वहीं व्यावहारिक शिक्षा के माध्यम से कौशल विकास यानी स्किल इंडिया योजना को भी बढ़ावा देता है जिस पर नई सरकार रोजगार के अवसर बढ़ाने की दृष्टि से विशेष बल दे रही है। यह संस्था सरकार या किसी भी अन्य स्रोत से वित्तीय मदद नहीं लेती।

हाशिए की मधुर तानः म्यूजिक बस्ती

शिक्षा का दायरा अक्षर ज्ञान तथा इतिहास, विज्ञान और गणित जैसे विषयों की पढ़ाई तक सीमित नहीं है। कला और संस्कृति भी शिक्षा के अभिन्न अंग हैं। इसी तथ्य को पहचानते हुए दिल्ली की फेथ गोंज़ालवेस नाम की युवती ने गरीब के बेसहारा बच्चों को संगीत शिक्षा देने के रूप में समाज सेवा का रास्ता चुना है। फेथ ने लेडी श्रीराम कॉलेज से शिक्षा लेने बे बाद किसी बहुराष्ट्रीय कंपनी में नौकरी करने की बजाय संगीत के माध्यम से झुग्गी-झोंपड़ी कालोनियों के बच्चो के बदरंग जीवन में संगीत का रंग भरने का फैसला किया। 'म्यूजिक बस्ती' नाम की संस्था बना कर वह कुछ अन्य संगीत प्रेमी कार्यकर्ताओं के सहयोग से बच्चों को संगीत सिखा रही हैं।

फेथ का कहना है कि अपने दोस्तों व घरवालों के मज़ाक तथा तानों की परवाह किए बिना उसने यह चुनौती भरी राह इसलिए चुनी क्योंकि आर्ट एंड मैनेजमेंट की परियोजनाओं में भाग लेते हुए गांवों और शहरों के गरीब बच्चों के बीच काम करने के दौरान उनके बाल जीवन में संगीत व कला की कमी को दूर करने का निश्चय जागृत हुआ था। फेथ म्यूजिक बस्ती से संगीत सीखने वाले बच्चों की आवाज में गाए गीतों के एलबम भी तैयार कर चुकी हैं। इन उपेक्षित बच्चों का संगीत सोशल नेटवर्किंग पर भी लोकप्रिय है।

लगन से खड़ा किया पुस्तकालय

अंत में गरीब बच्चों को पुस्तकें पढ़ने की सुविधा उपलब्ध कराके शिक्षा प्रसार में योगदान के अदभुत प्रयास की कहानी। उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के भोआपार गांव में श्याम लाल शुक्ल तथा उसके कुछ साथियों की पहल पर एक भरा-पूरा पुस्तकालय इस गांव तथा आस-पास के गांवों में बच्चों की सेवा कर रहा है। लाइब्रेरी के शुरू होने के समय 1964 में इसमें केवल 50-60 किताबें थीं जबकि इनकी संख्या अब हजारों में पहुंच चुकी है। श्याम लाल शुक्ल जब इंटर में पढ़ रहा था तो गरीबी के कारण वह पुस्तकें नहीं खरीद पाता था और गांव के आस-पास ऐसा कोई स्रोत नहीं था जहां से उसे किताबें मिल सकें। तभी उनके मन में अपने गांव में लाइब्रेरी खोलने के संकल्प ने जन्म दिया। उसने अपने जैसी मुफलिसी में पढ़ने वाले दोस्तों के साथ अपने इरादे के बारे में चर्चा की तो उनके साथियों ने, जो बाद में सभी शिक्षक बने, गांव-गांव जाकर पुस्तकें मांगी। इस तरह करीब 250 पुस्तकें जमा हुईं लेकिन बिना हिम्मत हारे वे अपने अभियान में लगे रहे और सरकार की मदद से वे पुस्तकालय का विस्तार करते रहे। कई वर्षों तक पुस्तकालय किराए के मकान में चलता रहा लेकिन बाद में ग्राम पंचायत ने कुछ भूमि आवंटित की जिस पर दो कमरे बनाए गए। इस तरह एक व्यक्ति के मन में उगा अंकुर पूरे गांव और समुदाय के लिए ज्ञान वृक्ष में बदल चुका है।

व्यक्तियों और संस्थाओं के ये सभी छोटे बड़े प्रयास इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि समाज और देश में जागृति तथा प्रगति लाने का काम केवल सरकार पर नहीं छोड़ा जा सकता। शिक्षा की तरह अन्य क्षेत्रों में भी सरकारी योजनाओं और कार्यक्रमों के साथ-साथ गैर-सरकारी प्रयासों से देश को विकसित राष्ट्रों की पंक्ति में खड़ा करने का राष्ट्रीय संकल्प पूरा किया जा सकता है। ❑

(पृष्ठ 52 से जारी ...)

की मांग के स्थान पर स्वयं को समान बनने योग्य साबित करना होगा, समाज में व्याप्त रूढ़ियों, कुरीतियों और अंधविश्वासों को जड़ से समाप्त करना होगा। समस्त सामाजिक संदर्भों से जुड़ी स्त्रियों की सक्रियता को अब न केवल पुरूष वरन् परिवार, समाज एवं राष्ट्र ने भी स्वीकारा है। ❑

संदर्भ

1. **सबके लिए शिक्षा आकलन (वर्ष 2000)** मानव संसाधन विकास मंत्रालय एवं राष्ट्रीय शैक्षिक योजना और प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली
2. अनुसूचित जनजाति की महिलाओं में शिक्षा का विकास-रिपोर्ट, राष्ट्रीय महिला आयोग, नई दिल्ली
3. **भारत-2006** (वार्षिक संदर्भ ग्रंथ), प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2006
4. **भारत की जनगणना-2011**, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2012
5. **शर्मा, राकेश** : भारत में महिला साक्षरता- एक परिदृश्य (लेख), प्रतियोगिता दर्पण, आगरा, 2007
6. **पालीवाल, सुभाषिणी:** भारत में महिला शिक्षा और साक्षरता, कल्याणी शिक्षा परिषद, दिल्ली
7. **पांथरी, प्रो. शैलेंद्र व सिंह, डॉ. अमरेंद्र प्रताप:** आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास, मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी, 2000
8. **Mittal, Mukta (1995):** "Women Power in India", Anmol Publications, New Delhi.

हमारे बाल प्रकाशन

प्रकाशन विभाग

सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार

सी जी ओ काम्पलेक्स लोधी रोड, नई दिल्ली-110003

फोन- 011 24367260, 24365609

वेबसाइट : publicationsdivision.nic.in

www.facebook.com/publicationsdivision

ग्राहक बनने के लिए व्यापार शाखा से सम्पर्क करें

011-24365609 or e-mail: dpd@sb.nic.in, businesswng@gmail.com

प्रकाशक व मुद्रक: डॉ. साधना राउत, अपर महानिदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय (भारत सरकार) द्वारा प्रकाशन विभाग के लिए ब्रजबासी आर्ट प्रेस लिमिटेड, ई-46/11, ओखला औद्योगिक क्षेत्र, फेस-2, नयी दिल्ली-110020 से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सी.जी.ओ. परिसर, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110003 से प्रकाशित। संपादक: ऋतेश पाठक

रजि.सं.डीएल (एस)-05/3231/2015-17
Reg.No. D.L.-05/3231/2015-17 at RMS, Delhi
23 दिसंबर, 2015 को प्रकाशित • 29-30 दिसंबर, 2015 को डाक द्वारा जारी

Licenced under U (DN)-55/2015-17
आर.एन.आई. 951/57
R.N.I. 951/57

बाजार में उपलब्ध

संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण 2015

संघ एवं राज्य सिविल सेवा परीक्षाओं के सामान्य अध्ययन हेतु अत्यन्त लाभदायक सामग्री.
विभिन्न विश्वविद्यालयों के भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रश्न-पत्र एवं अन्य परीक्षाओं के लिए भी उपयोगी.

Code No. 791
₹ 315/-

Code No. 790
₹ 350/-

टॉपर्स की राय में...

- .....मुझे इतिहास व अर्थव्यवस्था के अतिरिक्तांक काफी अच्छे लगे. —सूरज सिंह
  सिविल सेवा परीक्षा, 2014 में हिन्दी माध्यम से चयनित
- .....प्रतियोगिता दर्पण के अर्थशास्त्र व राजव्यवस्था अतिरिक्तांक काफी अच्छे लगे. —संतोष कुमार राय
  सिविल सेवा परीक्षा, 2013 में हिन्दी माध्यम से प्रथम स्थान पर चयनित
- .....मैंने प्रतियोगिता दर्पण का उपयोग किया और विशेषतः इसके अर्थव्यवस्था वाले भाग से तैयारी में मुझे बहुत मदद मिली. —मेधा रूपम
  सिविल सेवा परीक्षा, 2013 में 10वें स्थान पर चयनित
- मैंने अर्थव्यवस्था के अतिरिक्तांक का उपयोग समय के सदुपयोग के लिए किया. —प्रियंका निरंजन
  सिविल सेवा परीक्षा, 2012 में हिन्दी माध्यम से द्वितीय स्थान
- प्रतियोगिता दर्पण का अर्थव्यवस्था अतिरिक्तांक प्रतियोगियों के लिए अत्यंत सहायक सिद्ध हुआ है इसके अतिरिक्त मैंने इतिहास का अतिरिक्तांक भी काफी उपयोगी पाया। —विवेक कुमार यादव
  उ.प्र. पी.सी.एस. परीक्षा, 2014 में प्रथम स्थान
- ....मैंने प्रतियोगिता दर्पण अतिरिक्तांकों की सीरीज का उपयोग किया. ये तथ्यों का एक ही स्थान पर समग्र संकलन, परीक्षा के लिए उपयोगी एवं समय को बचाने वाली सिद्ध होती है. —राधिका देवी
  आर.ए.एस./आर.टी.एस. परीक्षा, 2012 में सर्वोच्च स्थान

मुख्य आकर्षण

✸ भारतीय अर्थव्यवस्था–प्रमुख विशेषताएँ ✸ राष्ट्रीय आय : 2014-15 ✸ जनांकिकी परिदृश्य एवं जनगणना 2011 ✸ कृषि, उद्योग, बैंकिंग, विदेशी व्यापार एवं यातायात ✸ नई विदेश व्यापार नीति : 2015-20 ✸ गरीबी पर रंगराजन समिति की रिपोर्ट (2014) ✸ भारत पर विदेशी ऋण (मार्च 2015) ✸ मौद्रिक नीति (4 अगस्त, 2015) ✸ प्रमुख रोजगारपरक एवं गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम ✸ नीति आयोग एवं पंचवर्षीय योजनाएं ✸ आर्थिक समीक्षा 2014-15 ✸ केन्द्रीय एवं रेलवे बजट 2015-16 ✸ प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय संगठन ✸ आर्थिक शब्दावली ✸ नवीनतम आर्थिक तथ्यों पर आधारित बहुविकल्पीय प्रश्न

प्रतियोगिता दर्पण | 2/11 ए, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा-282 002 फोन : (0562) 4053333, 2530966; फैक्स : (0562) 4053330
• E-mail : care@pdgroup.in • Website : www.pdgroup.in
• नई दिल्ली 23251844/66 • हैदराबाद 66753330 • पटना मो. 9334137572 • कोलकाता 25551510 • लखनऊ 4109080 • हल्द्वानी मो. 7060421008

YH-249/2016